झालावाड़ जिले में व्यापारिक कृषि का स्वरूप व नवीन प्रवृत्तियां – एक भौगोलिक विश्लेषण

NEW TRENDS AND NATURE OF COMMERCIAL AGRICULTURE IN JHALAWAR DISTRICT

- A GEOGRAPHICAL ANALYSIS

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा की

पीएच.डी. (भूगोल) उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध प्रबंध

सामाजिक विज्ञान संकाय

शोधार्थी

दीपचन्द बैरवा

पर्यवेक्षक

डॉ. हमीद अहमद

विभागाध्यक्ष

भूगोल विभाग

राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, झालावाड़

कोटा विश्वविद्यालय कोटा

2018

Certificate

I feel great pleasure in certifying that the thesis entitled **"New Trends And Nature of Commercial Agriculture In Jhalawar District- A Geographical Analysis"** by **Deepchand Bairwa** under my guidance. He has completed the following requirement as per **Ph. D.** regulations of the University.

(a) Course work as per the university rules.

(b) Residential requirement of the university (200 days)

(c) Regularly submitted annual progress report.

(d) Presented his work in the departmental committee.

(e) Published/accepted minimum of one research paper in a referred research journal,

I recommend the submission of thesis.

Date **Dr. Hameed Ahmad**

Supervisor

ABSTRACT

कृषि क्षेत्र का विकास कृषि एवं उसमें लगने वाले लोगो की आर्थिक स्थिति में तो सुधार करता ही है, साथ ही यह गैर कृषि क्षेत्र के लिये खाद्यान्न, कच्चा प्रदार्थ, बाजार और श्रम शक्ति की आपूर्ति करता है। भारत जैसे विशाल भू–भाग वाले देश में कृषि भूमि के समुचित उपयोग से राष्ट्रीय समृद्वि तथा व्यक्तिगत विकास सम्भव है। इन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु भूमि की क्षमता, उर्वरता तथा इसके समुचित उपयोग का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। कृषि प्रक्रिया को मात्र खाद्यान्न उत्पादन तक ही सीमित नही रखना चाहिये अपितु इसमे बदलाव लाकर इसे नया स्वरूप प्रदान करने की जरूरत है, कृषक अपनी कृषि कार्य में विभिन्न प्रकार की व्यापारिक (नगदी) फसलों का उत्पादन कर अपनी आर्थिक स्थिति को मजबूत कर सकता है तथा सम्पन्न कृषक की श्रेणी में आ सकता है।

अतः आवश्यकता इस बात की है कि कृषि को उद्योग का दर्जा दिया जाये ताकि कृषि को एक उत्पादक क्षेत्र के रूप में पहचाना जा सके। यह तभी सम्भव है जब कृषि में परम्परागत तकनीक एवं फसलीय ढांचा को बदलकर अधिक लाभ कमाने वाली उपज प्राप्त की जाये।

जहां तक झालावाड़ जिले का प्रश्न है यहां विभिन्न प्रकार की व्यापारिक कृषि फसलों (सोयाबीन, सरसों, धनियां, लहसुन, संतरा, अफीम) आदि का उत्पादन अधिक मात्रा में किया जाता है। ऐसे में आवश्यकता इस बात की है कि जिले के कृषिगत ढांचे व नितीयों में आवश्यक परिवर्तन किये जाये तथा वैश्वीकरण व उदारीकरण के लाभ लिये जाये।

जिले की व्यापारिक कृषि में क्या परिवर्तन परिलक्षित हुए हैं तथा आगे भी इसके विकास की क्या सम्भावनायें मोजुद है इन समस्त बिन्दुओं का अध्ययन करने के लिये मेरे द्वारा "झालावाड़ जिले में व्यापारिक कृषि का स्वरूप एवं नवीन प्रवत्तियां एक भौगोलिक विश्लेषण" का अध्ययन किया गया है। जिससे जिले के साथ–साथ अन्य समकक्ष क्षेत्रों के कृषकों के जीवन स्तर, आर्थिक स्थिति तथा कृषि सम्बन्धित रोजगार के क्षेत्र में लाभदायक सहभागिता प्राप्त हो सके। अतः प्रस्तुत शोध प्रबन्ध से जिले के कृषकों के हित में कोई लाभ पहुंचता है तो मैं इस शोध प्रबन्ध के प्रयास को सार्थक समझूंगा।

Candidate's Declaration

I hereby, certify that the work, which is being presented in the thesis, entitled **"New Trends And Nature of Commercial Agriculture In Jhalawar District- A Geographical Analysis"** in partial fulfillment of the requirement for the award of the Degree of Doctor of Philosophy, carried under the supervision of Dr. Hameed Ahmad and submitted to the Department of Geography in the faculty of social science,Government College Jhalawar represented my ideas in my own words and where others ideas or words have been included. I have adequately cited and referenced the original sources. The work presented in this thesis has not been submitted elsewhere for the award of any other degree or diploma from any Institutions. I also declare that I have adhered to all principles of academic honesty and integrity and have not misrepresented or fabricated or falsified any idea/data/fact/source in my submission. I understand that any violation of the above will cause for disciplinary action by the University and can also evoke penal action from the sources which have thus not been properly cited or from whom proper permission has not been taken when needed.

Deepchand Bairwa

Date

This is to certify that the above statement made by **Deepchand Bairwa** Registration **No.RS/578/10** is correct to the best of my knowledge.

Date **Dr. Hameed Ahmad**

Supervisor

आभार

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में अपने पूज्य दादाजी स्व. श्री भैरूलाल गोमे एवं स्व. दादी पारा देवी के श्री चरणों में समर्पित करता हूँ।

मानव व भूमि का सम्बन्ध प्रकृति प्रदत्त है क्योंकि मानव ने अपने जीवन का विकास इसी भूमि पर रहकर प्रकृति के संसाधनों के द्वारा ही किया है तथा उसमें कृषि कार्य एक प्रमुख भूमिका रखता है। कृषि के द्वारा उसे भोजन की प्राप्ति होती है और उसके अलावा जीवन निर्वाह के लिये उस फसल को विक्रय करके अन्य वस्तुओं को प्राप्त करने के लिये धन की प्राप्ति होती है।

मानव कृषि के द्वारा अपनी जीविका का निर्वाह करने के साथ–साथ जब वह आय प्रदान करने वाली फसलों का भी उत्पादन करने लगता है तो कृषि का स्वरूप परवर्तित होने लगता है और वह व्यापारिक कृषि के नाम से जानी जाती है। झालावाड जिले में अनेक व्यापारिक फसलों का उत्पादन होता है तथा इसका व्यापारिक कृषि परिदृश्य उभरकर सामने आया है। अतः इस दिशा में शोध कार्य अपेक्षित है।

इस शोध प्रबन्ध के लिये मेरे शोध निर्देशक एवं प्रारम्भिक गुरू डॉ. हमीद अहमद (विभागाध्यक्ष भूगोल) राजकीय महाविद्यालय झालावाड़ का तहेदिल से आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होने इस सम्पूर्ण शोध प्रबन्ध को पूर्ण करने में लगातार उच्च मार्गदर्शन प्रदान किया। उन्ही के स्नेह एवं प्रोत्साहन से मैं इस शोध कार्य को पूर्ण कर सका हूँ। मेरा सोभाग्य है कि मुझे अपने प्रारम्भिक गुरू के सानिध्य में ही शोध कार्य करने का मौका मिला उनका व्यक्तित्व मेरे लिये जीवन पर्यन्त स्मरणीय एवं प्रेरणास्पद रहेगा।

आदरणीय डॉ. विक्रम सिंह (व्याख्याता भूगोल) एवं डॉ. सीमा चौहान, (व्याख्याता भूगोल) राजकीय महाविद्यालय कोटा का भी मुझे शोध कार्य पूर्ण करने में पूर्ण समर्थन एवं सहयोग प्राप्त हुआ। मेरा सोभाग्य है कि मुझे ऐसे गुरूजनो का सानिध्य एवं स्नेह मिला।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को समग्र रूप देने में, मैं अपने पूज्य पिताजी श्री प्रभूलाल गोमे, माता सुशीला देवी, धर्मपत्नि गायत्री तथा परिवार के सभी सदस्य भाई राजकुमार, सत्येन्द्र, भाभी प्रमिला, सृजन व बहिन मंजुलता के स्नेह एवं प्रेरणा हेतु उनका सदा अनुग्रहित हूँ।

मैं अपने सभी सहपाठी मित्रो डॉ. लक्ष्मीचन्द मालवीय, डॉ. सतीश कुमार, तनवीर, बन्टेश, रविन्द्र का भी आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होने मुझे हमेशा सहयोग एवं समर्थन प्रदान किया। साथ ही मैं गौतम कम्प्यूटर के प्रति विशेष रूप से आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने इस शोध कार्य को कम्प्यूटर तकनीक द्वारा टंकण कार्य पूर्ण करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

अनुक्रमणिका

अध्याय	विषय वस्तु	पृष्ठ संख्या
1.	**प्रस्तावना**	1—24
1.1	अध्ययन विषय का सामान्य परिचय	1
1.2	अध्ययन के उद्देश्य	9
1.3	आंकड़ों का संकलन व आधार	12
1.4	अध्ययन विधि तंत्र	14
1.5	अध्ययन विषय का महत्व	17
1.6	अध्ययन विषय साहित्य पर पूर्व में किये गए कार्य	21
1.7	अध्यायनुसार योजना	24
2.	**जिला झालावाड़ का भौगोलिक परिदृश्य, सामाजिक—आर्थिक, जनसांख्यकीय परिदृश्य**	25—53
2.1	ऐतिहासिक परिचय	25
2.2	भौतिक परिचय	27
	(क) स्थिति	27
	(ख) उच्चावच	27
	(ग) अपवाह तंत्र	30
	(घ) मृदा	31
	(च) प्राकृतिक वनस्पति	34

	(म) जलवायु	37
2.3	जिले का सामाजिक, आर्थिक, जनसांख्यिकीय परिदृश्य	45
	(क) जनसांख्यकीय पक्ष	45
	(ख) आर्थिक पक्ष	50
	(ग) आधारभूत सुविधाएं	52
3.	**जिला झालावाड़ में व्यापारिक कृषि परिदृश्य**	54—109
3.1	संतरा की व्यापारिक कृषि	54
3.2	सोयाबीन की व्यापारिक कृषि	61
3.3	सरसों की व्यापारिक कृषि	67
3.4	अफीम की व्यापारिक कृषि	73
3.5	अन्य व्यापारिक फसलों की कृषि	84
3.6	व्यापारिक कृषि के लिए आधारभूत संरचना	104
4	**व्यापारिक कृषि विकास की संभावनाएं व प्रवृत्तियां**	110—136
4.1	स्थान व काल के अनुसार परिवर्तन	110
4.2	कुल फसली क्षेत्र में व्यापारिक फसलों का अनुपात	120
4.3	सरकारी, सहकारी एवं गैर सरकारी संस्थाओं का योगदान	122
4.4	विपणन प्रणाली	129
4.5	कृषि नवाचार	132
5.	**व्यापारिक कृषि के विकास से जुड़ी समस्याएं व समाधान**	137—147
5.1	भूमि सम्बन्धी समस्याएँ	138

5.2	कृषि शिक्षा	139
5.3	बीज की समस्या	140
5.4	साख सुविधा	142
5.5	क्रय विक्रय व्यवस्था	144
5.6	खाद / उर्वरक	145
5.7	सिंचाई	146
5.8	अन्य	147
6	**सारांश, समीक्षा, सुझाव**	148—167
6.1	सारांश	148
6.2	समीक्षा	149
6.3	सुझाव	164
	संदर्भ ग्रन्थ सूची	168—173
	Summary	174—182

तलिकाओं की सूची

तालिका संख्या	विषय वस्तु	पृष्ठ संख्या
2.1	झालावाड़ जिले में वनों का वितरण (2016 के अनुसार)	35
2.2	झालावाड़ जिले जिले में 10 वर्षीय वर्षा का वितरण	38
2.3	जिला मुख्यालय व अन्य रेल्वे स्टेशन की दूरी (किमी.)	40
2.4	सड़क मार्ग एवं सड़कों की लम्बाई	41
2.5	झालावाड़ जिले में जनसंख्या वृद्धि (प्रतिशत में)	43
2.6	जिले में तहसीलवार जनसंख्या वितरण एवं घनत्व	45
2.7	जिले में तहसीलवार लिंगानुपात (2011)	48
2.8	झालावाड़ जिले में तहसीलवार पुरूष व महिला साक्षरता (प्रतिशत में)	49
2.9	जिले में तहसीलवार कार्यरत जनसंख्या का वितरण (2011)	50
3.1	खाद एवं उर्वरक मात्रा प्रति पौधा (किलोग्राम में)	57
3.2	झालावाड़ जिले में संतरा का क्षेत्रफल एवं उत्पादन वर्ष 2005–06 से 2014–15 तक	58
3.3	झालावाड़ जिले में सोयाबीन का क्षेत्रफल एवं उत्पादन वर्ष 2005–06 से 2014–15 तक	64
3.4	झालावाड़ जिले में बोई जाने वाली सरसों की किस्में	68

3.5	झालावाड़ जिले में सरसों का क्षेत्रफल एवं उत्पादन वर्ष 2005—06 से 2014—15 तक	71
3.6	झालावाड़ जिले में अफीम का क्षेत्रफल एवं उत्पादन वर्ष 2005—06 से 2014—15 तक	81
3.7	जिलें में बोई जाने वाली लहसुन की प्रमुख किस्में	86
3.8	झालावाड जिले में लहसुन का वर्षवार क्षेत्र एवं उत्पादन वर्ष 2005—06 से 2014—15 तक	93
3.9	जिले में बोई जाने वाली धनियें की किस्में	96
3.10	झालावाड जिले में धनियें का वर्षवार क्षेत्र एवं उत्पादन 2005—06 से 2014—15 तक	102
3.11	झालावाड़ जिले में मिट्टियों का वितरण तहसील अनुसार	106
3.12	झालावाड़ जिले में रासायनिक खाद का वितरण (मेट्रिक टन में) वर्ष 2005—06 से 2014—15 तक	108
4.1	झालावाड़ जिले में व्यापारिक फसलों का वितरण (क्षेत्र0 है0 में)	111
4.2	झालावाड़ जिले में व्यापारिक फसलों का उत्पादन (मेट्रिक टन में)	113
4.3	झालावाड़ जिले में कुल फसलीय क्षेत्र में व्यापारिक फसलों का अनुपात	120
4.4	कृषकों को सिंचाई संयंत्र देय सुविधाऐं	126
4.5	परम्परागत कृषि विकास योजना (पीकेवीवाई) के तहत प्रथम वर्ष में कम्पोनेन्ट / गतिविधिवार	127

4.6	परम्परागत कृषि विकास योजना (पीकेवीवाई) के तहत द्वितीय वर्ष में कम्पोनेन्ट / गतिविधिवार	128
6.1	प्रमुख व्यापारिक फसलों की क्षेत्रानुसार क्रमबद्वता वर्ष 2014—15	151
6.2	जिले का कृषि विकास स्तर में क्षेत्रीय भिन्नता तहसील अनुसार	155
6.3	जिले में शक्ति चालित सिंचाई के साधन	163

आरेख तालिका

आरेख संख्या	विषय वस्तु	पृष्ठ संख्या
2.1	झालावाड़ जिले में वनों का वितरण (2016 के अनुसार))	36
2.2	झालावाड़ जिले में 10 वर्षीय वर्षा का वितरण	39
2.3	झालावाड़ जिले में जनसंख्या वृद्धि (प्रतिशत में)	44
2.4	जिले में तहसीलवार कार्यरत जनसंख्या	51
3.1	झालावाड़ जिले में संतरा का क्षेत्रफल एवं उत्पादन वर्ष 2005–06 से 2014–15 तक	59
3.2	झालावाड़ जिले में सोयाबीन का क्षेत्रफल एवं उत्पादन वर्ष 2005–06 से 2014–15 तक	65
3.3	झालावाड़ जिले में सरसों का क्षेत्रफल एवं उत्पादन वर्ष 2005–06 से 2014–15 तक	72
3.4	झालावाड़ जिले में अफीम का क्षेत्रफल एवं उत्पादन वर्ष 2005–06 से 2014–15 तक	82
3.5	झालावाड जिले में लहसुन का वर्षवार क्षेत्र एवं उत्पादन वर्ष 2005–06 से 2014–15 तक	94
3.6	झालावाड जिले में धनियें का वर्षवार क्षेत्र एवं उत्पादन 2005–06 से 2014–15 तक	103
4.1	झालावाड़ जिले में व्यापारिक फसलों का वितरण (क्षेत्र0 है0 में)	112
4.2	झालावाड़ जिले में व्यापारिक फसलों का उत्पान (मेट्रिक टन में)	114
6.1	प्रमुख व्यापारिक फसलों का क्षेत्रफल वर्ष–2014–15	152

मानचित्र तालिका

क्रम संख्या	मानचित्र	पृष्ठ संख्या
1	Location Map of Jhalawar	28
2	Jhalawar District Drainage System	31
3	Jhalawar District Distribution of Soil	33
4	Jhalawar District Transport	42
5	Jhalawar District Population Density	46
6	Jhalawar District Distribution of Populaton	47
7	Jhalawar District Area Condtion according to Soyabeen Production in Tehsil	154
8	Jhalawar District Area Condtion according to Coriander Production in Tehsil	157
9	Jhalawar District Area Condtion according to Busterd Production in Tehsil	158
10	Jhalawar District Area Condtion according to Garlic Production in Tehsil	160
11	Jhalawar District Area Condtion according to Orange Production in Tehsil	161
12	Jhalawar District Area Condtion according to Opium Production in Tehsil	162

अध्याय प्रथम

प्रस्तावना

आर्थिक विकास का ऐतिहासिक अनुभव और आर्थिक विकास की सेद्धान्तिक व्याख्या यह स्पष्ट करते है कि आर्थिक विकास की प्रारम्भिक अवस्था में प्रत्येक अर्थव्यवस्था में कृषि क्षेत्र का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान होता है। विकसित अर्थव्यवस्थाओं के विकास अनुभव की पुष्टि करते हैं। विकासशील अर्थव्यवस्थाओं के राष्ट्रीय उत्पाद, रोजगार और निर्यात की संरचना में कृषि क्षेत्र का योगदान उद्योग और सेवा क्षेत्र की तुलना में अधिक होता है। ऐसी स्थिति में कृषि का पिछड़ापन सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था को पिछड़ेपन में बनाये रखता है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था में कमजोर वर्ग के लोग जिनमें लघु व अति लघु कृषक और कृषि श्रमिक सम्मिलित हैं, अधिकांश कृषक गरीबी के दुश्चक्र में फंसे रहते हैं साथ ही इनके पास स्थायी उत्पाद परिसम्पत्ति की कमी बनी रहती हैं। इनकी गरीबी कृषि अर्थव्यवस्था के पिछड़ेपन का मुख्य कारण होती हैं।

विभिन्न कृषि विकसित क्षेत्रों का आर्थिक इतिहास यह स्पष्ट करता है कि कृषि विकास ने ही उनके औद्योगिक क्षेत्रों के तीव्र विकास का मार्ग प्रशस्त किया है। आज के विकसित पूंजीवादी और समाजवादी अर्थव्यवस्थाओं के विकास के आरम्भिक चरण में कृषि क्षेत्र ने वहाँ के गैर कृषि क्षेत्र के विकास हेतु श्रमशक्ति, कच्चा पदार्थ, भोज्य सामग्री और पूंजी की आपूर्ती की है। यहाँ के किसानों ने तकनीकी परिवर्तन द्वारा कृषि विकास का मार्ग अपनाया और इस तकनीकी को गैर कृषि क्षेत्र के विकास में प्रयोग किया गया।

कृषि क्षेत्र का विकास कृषि एवं सम्बद्ध क्रियाओं में लगे हुए लोगों कि आर्थिक स्थिति में तो सुधार करता ही है, साथ ही यह गैर कृषि क्षेत्र के लिए खाद्यान्न, कच्चा पदार्थ, बाजार और श्रम शक्ति की आपूर्ति करता है। इस प्रकार कृषि उत्पादन किसानों के आर्थिक विकास में कई प्रकार से सहायता प्रदान करता है।

किसानों के आर्थिक विकास के साथ कृषि उत्पादन विशेषकर खाद्यान्नों की मांग भी बढ़ती है। किसानों को कृषि उत्पादन के बेचने पर आय की प्राप्ति होती है। किसानों के आर्थिक विकास की प्रारम्भिक अवस्था में उत्पादन से आय की प्राप्ति आवश्यक होती है।

कृषि विकास किसी भी क्षेत्र की अर्थव्यवस्था के समग्र विकास में कई रूपों में सहायक है। अतः कृषि क्षेत्र में उत्पादन से आय की प्राप्ति को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। भारतीय

कृषि प्रक्रिया में विभिन्न प्रकार की आर्थिक कठिनाईयाँ उत्पन्न हो जाती है। अतः यह कहा जा सकता है कि आज भी भारत का आर्थिक ढ़ांचा कृषि क्रिया पर निर्भर है। भारत जैसे विशाल भू–भाग वाले देश में कृषि भूमि के समुचित उपयोग से ही राष्ट्रीय समृद्धि तथा किसानों का व्यक्तिगत विकास संभव है। इसलिए कृषि कार्य को सिर्फ खाद्यान्न प्राप्ति तक ही निर्भर नहीं रहना है अपितु उसे व्यापारिक स्वरूप प्रदान करना भी प्रमुख कार्य होना चाहिए। जिससे किसानों को खाद्यान्न प्राप्ति के साथ–साथ कृषि से अपनी आय के स्त्रोत भी प्राप्त हो। इन उद्देश्यों की पूर्ति करने के लिए किसानों की भूमि की क्षमता, उर्वरता तथा उसके समुचित उपयोग का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। क्योंकि ऐसे अध्ययनों से ही कृषि उत्पादन सम्बन्धी तथ्यों का ज्ञान प्राप्त होता है जिसके आधार पर ही आगे समय के लिए किसानों के लिए कृषि सम्बन्धी विकास की योजनाऐं बनायी जा सकती हैं।

कृषि को आय का स्त्रोत बनाने के लिए इसके स्वरूप में भी परिवर्तन करना अत्यन्त आवश्यक है। कृषि क्रिया को मात्र खाद्यान्न उत्पादन को छोड़कर इसे व्यापारिक स्वरूप प्रदान करना पड़ेगा तभी किसान अपनी कृषि को व्यापारिक ढंग से करेगा और अपने आर्थिक विकास को मजबूत बनायेगा। इसके लिए किसानों को कृषि सम्बन्धी विभिन्न अवयव जैसे– भू–स्वामित्व, विपणन, भण्डारण, कृषि में निवेश, उत्पादन और उत्पादकता, उन्नत किस्म के बीज, सहकारी संस्थाओं को पुनर्जीवित करना, कृषि अनुसंधान, कृषि मशीनरी, फसल बीमा, कृषि उत्पादनों का प्रसंस्करण, कृषि का औद्योगीकरण, जल संसाधन तथा कृषि का विविधीकरण आदि का निदान कर कृषि व्यवस्था को एक व्यापारिक स्वरूप प्रदान किया जा सकता है। जिससे किसान अपना उत्पादन बेचकर उन्नत किसान की श्रेणी में आ सकें।

जिन मसौदो से कृषक तथा कृषि अत्यधिक लाभान्वित होंगे उनमें दो मसौदे अधिक महत्वपूर्ण है – प्रथम का सम्बन्ध किसानों की फसल व पशुधन बीमा योजना से है और दूसरे का सम्बन्ध कृषि को सामान्य कृषि को छोड़कर व्यापारिक कृषि का दर्जा दिया जाये। प्राचीन कृषि व्यवस्था को नया जामा पहनाने की आवश्यकता है इसे व्यापारिक स्वरूप प्रदान किया जाना चाहिए जिससे किसान अपनी फसल स्वयं उपयोग करने के अलावा भी उसके व्यापारिक स्वरूप को समझ सके किसानों को उन फसलों की कृषि करने की प्रेरणा प्रदान करनी चाहिए

जिससे कृषि का व्यापारिक स्वरूप सामने आये। किसानों को अधिक से अधिक व्यापारिक कृषि करने की जानकारी दी जाये तथा जिससे किसान अपने आर्थिक विकास को भी मजबूत बना सके।

आदिकाल से ही मानव जीवन में कृषि का महत्व समझा जाता रहा है। प्रारम्भिक काल से ही मानव ने अपने पेट की भूख शांत करने के लिए कृषि कार्य को अपनाया है एवं खाद्यान्नों की आवश्यकता की पूर्ति की है। कृषि का अर्थ व्यापक है, इसके अन्तर्गत मानव की उन समस्त क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है जिनकी सहायता से खाद्यान्न प्राप्ति के लिए मिट्टी का उपयोग होता है। इसके अन्तर्गत भूमि की जुताई से लेकर कृत्रिम साधनों से सिंचाई, उर्वरकों की आपूर्ति मिट्टी संरक्षण हानिकारक तत्वों से पौंधों की रक्षा आदि अनेक विस्तृत कार्यक्रमों को अपनाया जाता है। जिनका उद्देश्य मिट्टी की उत्पादकता में वृद्धि करना है।

भारत की अर्थव्यवस्था में कृषि का स्थान अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है। देश के कुल निर्यात व्यापार में कृषि उत्पादित वस्तुओं का प्रतिशत काफी अधिक रहता है। भारत में आवश्यक खाद्यान्न की लगभग सभी पूर्ति कृषि के माध्यम से ही की जाती है। वर्तमान समय में एक बहुत बड़ी आबादी को कृषि के माध्यम से रोजगार प्राप्त हैं। भारतीय कृषि को 'देश की रीढ़' माना गया है। क्योंकि यही वह उपाय है जो देश की खुशहाली के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

मानव विकास की प्राथमिक अवस्था में कृषि जीवनयापन का माध्यम थी लेकिन आज कृषि केवल खाद्यान्न का ही उत्पादन नहीं करती बल्कि मानव द्वारा अपने जीवन स्तर को उच्च स्तर का बनाने के लिए भी किया जा रहा है। मानव द्वारा की जाने वाली कृषि क्रिया उसके जीवन निर्वाहन स्तर से लेकर व्यापारिक अवस्था तक कई सीढ़ियाँ पार कर चुकी है। कृाि एक अत्यन्त व्यापक आर्थिक कार्य है तथा इसके विविध रूप है। विस्तृत अर्थों में इसके अन्तर्गत कुदाल पर आधारित जीवन निर्वाहन खेती से लेकर मशीनों द्वारा वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग करके व्यापारिक उद्देश्य से की जाने वाली कृषि आती है। व्यापारिक कृषि अवस्था में कृषक का मूल उद्देश्य लाभ कमाना होता है।

व्यापारिक कृषि क्षेत्र को अधिक लाभप्रद बनाने के लिए शोधकर्ता के दृष्टिकोण से निम्नलिखित कार्यक्रमों को प्रोत्साहित ही नहीं करना अपितु वास्तविकता का भी जामा पहनाना होगा।

1. मृदा सर्वेक्षण तथा मृदा संरक्षण
2. अधिकतम कृषकों को कृषि की नवीनतम तकनीक का ज्ञान कराना।
3. जल संसाधन के दुरूपयोग को रोकना।
4. कृषकों को समुचित प्रशिक्षण प्रदान करना।
5. व्यापारिक कृषि के क्षेत्र में विस्तार करना।
6. व्यापारिक कृषि का परम्परागत फसलों के साथ समायोजन।
7. जैविक उर्वरकों के प्रयोग को प्रोत्साहन।

कृषि की दृष्टि से झालावाड़ जिले का राज्य में प्रमुख स्थान है। खाद्यान्न, तिलहन व संतरा उत्पादन में झालावाड़ जिला अग्रणी है। समग्र कृषि विकास के लिए उद्यानिकी कृषि विपणन व पशुपालन के क्षेत्र में सूक्ष्म स्तर पर वर्तमान स्थिति का आंकलन कर आने वाले वर्षों के लिए जिले में कई योजनाऐं बनाई जा रही है। झालावाड़ जिले में आय के प्रमुख स्त्रोतों में कृषि उत्पादन का प्रमुख स्थान है। अतः कृषि यहाँ पर महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती है।

झालावाड़ जिले में व्यापारिक कृषि का अवलोकन करें तो हम पाते हैं कि इस जिले का भी व्यापारिक कृषि में विकास बहुत अधिक हुआ है। किन्तु इसका सम्पूर्ण विकास भी नहीं हो पाया है। झालावाड़ जिला व्यापारिक कृषि की दृष्टि से बहुत अधिक सम्पन्न जिला है। व्यापारिक कृषि के अन्तर्गत जिले में बोई जाने वाली फसलों एवं उद्यानिकी में सन्तरे की कृषि का विशेष स्थान है। राजस्थान में सर्वाधिक सन्तरों का उत्पादन इसी जिले से होता है। यहाँ पर इसके भावी उद्यानिकी विकास की अत्यधिक सम्भावनाऐं विद्यमान है। सन्तरे के साथ–साथ अन्य व्यापारिक फसलों में सोयाबीन सरसों, अफीम, धनियाँ, लहसुन आदि फसलों का भी प्रमुख स्थान हैं। यह राजस्थान का सुदुर दक्षिण में स्थित जिला है इस जिले का एवं यहाँ उत्पन्न

होने वाली व्यापारिक फसलों के विकास के लिए राज्य सरकार कृत संकल्प है। इसलिए यह आवश्यक है कि यहाँ व्यापारिक कृषि से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं को लेकर गहन क्षेत्रीय अध्ययन किये जाये और उन्हीं अध्ययनों के माध्यम से भावी व्यापारिक कृषि विकास के लिए योजनाऐं तैयार की जाये। किसान व्यापारिक फसलों के अधिक से अधिक मात्रा में कृषि करने के लिए प्रेरित हो सके।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के माध्यम से शोधार्थी ने यह अनुभव किया कि इस जिले के लिए भावी व्यापारिक कृषि विकास की योजना तैयार करने के लिए जिले का वर्तमान व्यापारिक कृषि स्वरूप एवं इसके भावी विकास के लिए इसकी नवीन प्रवृत्तियों का मापन कर यह ज्ञात किया है कि लि का कौनसा भाग व्यापारिक कृषि का उत्पादन अधिक करता है तथा किस भाग में कम उत्पादन होता है। इस जिले में व्यापारिक फसलों की कृषि एवं उत्पादन के लिए उचित वैज्ञानिक कृषि विकास योजना का निर्माण करना ही प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य है। जिससे जिले में उत्पादित हो रही प्रमुख व्यापारिक फसलें प्रकाश में आ सके।

अध्ययन क्षेत्र का चयन –

किसी भी क्षेत्र की जनसंख्या तभी प्रगतिशील होती है जब उसका भरपूर पोषण होता है। अतः क्षेत्र की जनसंख्या के पोषण स्तर में सुधार लाने हेतु कृषि उत्पादन में वृद्धि करना आवश्यक हो जाता है जो दो विधियाँ अपनाकर किया जा सकता है।

(अ) कृषिगत क्षेत्र में वृद्धि करके।

(ब) वर्तमान कृषिगत क्षेत्र की उत्पादकता में वृद्धि करके।

कृषिगत क्षेत्र में वृद्धि करके उत्पादन बढ़ाने की संभावना झालावाड़ जिले में अब लगभग समाप्त सी हो गयी है। अतः अजले में उत्पादकताओं में वृद्धि करके ही बढ़ती हुई जिले की जनसंख्या की मांग की पूर्ति की जा सकती है एवं कृषि क्रिया को व्यापारिक स्वरूप भी प्रदान करना होगा तभी किसानों के आय में वृद्धि होगी एवं किसानों का आर्थिक विकास भी होगा। अतः व्यापारिक कृषि उत्पादन तथा जनसंख्या के सहसम्बन्ध के सन्दर्भ में भूमि संसाधन पर

जनसंख्या भार का मूल्यांकन करना आवश्यक हो जाता है। तभी झालावाड़ जिले में व्यापारिक कृषि विकास की ठोस योजना तैयार किया जाना संभव है।

सामान्यतः यह देखा गया है कि कृषि कार्य में अधिकांशतः ग्रामीण जनसंख्या का अधिक भार होता है तथा शहरी जनसंख्या का कृषि कार्य में कोई योगदान नहीं रहता है। झालावाड़ जिले में कुल जनसंख्या में से कृषि कार्य में लगने वाली जनसंख्या को निम्न तालिका द्वारा समझा जा सकता है।

झालावाड़ जिले में की जा रही व्यापारिक कृषि ग्रामीण समुदाय का प्रमुख व्यवसाय है। यहाँ के कृषक कृषि कार्य को मात्र जीवन निर्वाह के लिए न कर रहे हैं बल्कि उसे लाभ कमाने के साधन के रूप में देखा जा रहा हैं। इस काम को व्यवसायीकरण का नाम दिया गया है। जिले में विभिन्न प्रकार की फसलों का उत्पादन कार्य किया जा रहा हैं जो व्यापारिक कृषि की श्रेणी में आती है। व्यवसायीकरण के लिए उत्तरदायी प्रमुख कारण निम्नलिखित है –

- पिछले कुछ वर्षों से कृषि व्यापारिक कृषि उत्पादन के उत्पादन के तरीकों में कई महत्वपूर्ण सुधार हुए हैं। परिणामस्वरूप व्यापारिक कृषि उत्पदकता पहले की तुलना में बहुत अधिक बढ़ी है।
- व्यापारिक कृषि उत्पादन में सुधार के लिए उन्नत किस्म के बीज, रासायनिक उर्वरक, कीटनाशक दवाईयाँ, सिंचाई सुविधाओं का विकास उत्तरदायी है। जिसमें न केवल फसलों का उत्पादन बढ़ा है बल्कि जिले के किसानों में व्यापारिक कृषि करने की रूची भी बढ़ी हैं।
- जिले के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में सड़क एवं परिवहन के साधनों के विकास के कारण कृषि उत्पादन को मण्डी तक ले जाना सरल हो गया है। जिससे व्यापारिक कृषि बहुत अधिक बढ़ावा मिला है।
- वित्तिय संस्थाओं सहकारिता तथा वाणिज्य बैंकों तथा नियंत्रित मण्डियों के विकास के कारण अब किसान साहुकारों के ऋणी से मुक्त हो रहे हैं। इस मुक्त वातावरण के कारण किसान जिले में व्यापारिक कृषि को करने के लिए प्रेरित हुआ है।

- जिले में की जा रही विभिन्न प्रकार की व्यापारिक फसलों के उत्पादन के साथ–साथ कृषि के व्यवसायीकरण से पैकिंग व्यवसाय का भी विस्तार हुआ है।

सरकार ने भी जिले में व्यापारिक कृषि करने वाले किसानों को प्रोत्साहित करने के लिए विभिन्न प्रकार के कार्यक्रम कृषि विभाग द्वारा विकास की सारी जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली है। जिसके लिए सरकार ने व्यापारिक कृषि विकास के लिए कई प्रकार के कार्यक्रम संचालित किये हैं।

सरकार द्वारा चलित विभिन्न विकास कार्यक्रमों का ही परिणाम है कि जिले में सामान्य कृषि करने वाले किसानों का रूझान भी व्यापारिक कृषि करने के प्रति बढ़ा है। आज जिले के किसान खाद्यान्न उत्पादन तक ही सीमित नहीं है अपितु कृषि को आय के स्त्रोत के रूप में व्यापारिक प्रकार से करने लगा हैं।

संक्षेप में पिछले कुछ वर्षों में झालावाड़ की कृषि व्यवस्था में अनेक प्रकार के परिवर्तन देखने को मिले है। निःसन्देह ये परिवर्तन जिले के किसानों के विकास के परिचायक हैं। परन्तु जिले में व्यापारिक कृषि विकास के साथ–साथ इसमें किसानों को कई प्रकार की समस्याओं का भी सामना करना पड़ रहा हैं। इसकी ओर किसानों के साथ–साथ कृषि विभाग सरकार की नितियों आदि का किसानों की समस्याओं की ओर ध्यान आकर्षित करना होगा जिससे भविष्य में आने वाली सभी प्रकार की समस्याओं का निदान किसान कर सके। अन्यथा जिले की व्यापारिक कृषि विकास में भविष्य में एक गम्भीर समस्या उत्पन्न हो सकती है।

व्यापारिक कृषि में कृषकों को आने वाली समस्याओं में प्रमुख समस्या निम्न है –

जिले की बढ़ती हुई जनसंख्या के परिणामस्वरूप यहाँ की कृषि भूमि पर भी दबाव पड़ा है जिसके कारण भूमि का उपविभाजन व अखण्डन हुआ है। जिससे कृषि जोतो का आकार छोटा होता जा रहा है। यह व्यापारिक कृषि विकास के लिए अच्छी खबर नहीं है।

जिले की व्यापारिक कृषि में नई तकनीको के प्रयोग से कृषि आय व विकास में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है किन्तु इसकी आय का एक बड़ा भाग ग्रामीण समुदाय के उन्नत व समृद्ध वर्ग के हाथों में केन्द्रित होता जा रहा है। निर्बल और कमजोर वर्ग के किसान इस नई

तकनीकी के प्रयोग से अभी अछूते है इसका उनकों अभी तक कोई विशेष लाभ नहीं मिल पाया है जिसके परिणामस्वरूप किसानों के मध्य आर्थिक विषमताएँ उत्पन्न हुई हैं।

अधिकांश व्यापारिक कृषि करने वाले किसान कृषि कार्य में प्रयुक्त आने वाले सामानों को प्राप्त करने में पूर्णतः बाजार पर निर्भरता बढ़ती जा रही है। किसानों की बाजार के प्रति परनिर्भरता अत्यधिक जोखिम पूर्ण होती है। परनिर्भरता के कारण ही बाजार की शक्तियाँ किसानों के शोषण का माध्यम बनती जा रही है।

स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि जिले में व्यापारिक कृषि उत्पादन की मात्रा प्रति हैक्टेयर बढ़ी है परन्तु इसका अधिकांश लाभ सम्पन्न वर्ग के किसानों को ही प्राप्त हुआ है। इसी प्रकार के अनेक तथ्यों को ध्यान में रखकर ''झालावाड़ जिले में व्यापारिक कृषि का स्वरूप एवं नवीन प्रवृतियों का अध्ययन'' क्षेत्र का चयन किया गया है। झालावाड़ जिले में की जा रही व्यापारिक कृषि फसलों का वर्तमान समय में किसानों को आने वाली कृषि सम्बन्धी समस्याओं के अध्ययन की नितान्त आवश्यकता है। जिससे इन समस्याओं के समाधान तथा व्यापारिक फसलों के विकास की प्रभावी योजनाएँ बनायी जा सके। प्रस्तुत अध्ययन में व्यापारिक कृषि से जुड़ी विभिन्न प्रकार की समस्याओं का विश्लेषण एवं समाधान के उपायों का वर्णन किया गया हैं।

प्रस्तुत अध्ययन क्षेत्र राजस्थान का संतरा एवं प्रमुख व्यापारिक फसलों का सर्वाधिक उत्पादक क्षेत्र है। साथ ही स्वयं झालावाड़ जिले का निवासी होने के कारण प्राथमिक व द्वितीयक आंकड़ें प्राप्त करने में सफलता होना भी इस क्षेत्र का चयन करना रहा है। इस अध्ययन के माध्यम से जिले में भावी व्यापारिक फसलों के स्वरूप एवं इसकी नवीन प्रवृत्तियों को आंकना भी विशेष महत्वपूर्ण है। यहाँ व्यापारिक फसलों के उत्पादन एवं विकास की भावी संभावनाऐं विद्यमान है।

आज हमारे योजना निर्माताओं का विशेष ध्यान योजना का निर्धारण ऊपर से न होकर नीचे के स्तर से ही शुभारम्भ की जाये जिससे कि किसी भी क्षेत्र की छोटी से छोटी जटिलता को समझा जा सके। इसी तथ्य को मध्य नजर रखते हुए इस क्षेत्र को अध्ययन के लिए चुना गया है। इस अध्ययन के माध्यम से जिले में व्यापारिक कृषि के लिए भावी सम्भावनाओं का

सहज अन्दाजा लगाते हुए यहाँ के लिए भावी व्यापारिक कृषि स्तर मापना विशेष महत्वपूर्ण है। जिले में आगामी समय के लिए व्यापारिक कृषि विकास की संभावनाऐं विद्यमान है।

इस क्षेत्र की व्यापारिक कृषि का अध्ययन निम्न तथ्यों को ध्यान में रखकर किया है।

1. प्रमुख व्यापारिक फसलों के उत्पादन की दृष्टि से यह जिला प्रदेश में अपना विशिष्ठ स्थान रखता है। यहाँ की अधिकांश जनसंख्या व्यापारिक कृषि कार्य में लगी हुई है।

2. व्यापारिक फसलों पर आधारित सहायक धन्धों का विकास किया जाना भी यहाँ संभव है।

3. व्यापारिक कृषि के लिए यहाँ अनुकूल भौगोलिक परिस्थितियाँ विद्यमान है। जैसे पर्याप्त वर्षा के साथ–साथ सिंचाई के साधन उपजाऊ एवं अनुकूल भूमि तथा तापमान आदि।

4. व्यापारिक कृषि के साथ–साथ कृषि से सम्बन्धित व्यवसाय भी जिले में किया जा सकता है।

उपयुक्त सभी कारणों ने जिले में ''व्यापारिक कृषि के स्वरूप एवं इसकी नवीन प्रवृत्तियों का अध्ययन'' करने के लिए प्रोत्साहित किया है।

अध्ययन का उद्देश्य –

झालावाड़ जिले में व्यापारिक फसलों की कृषि एवं उत्पादन दिखाना अध्ययन का मुख्य उद्देश्य रहा है। इसके अलावा व्यापारिक कृषि का वर्तमान स्वरूप ज्ञात करना एवं इसमें आ रही समस्याओं को खोजकर समाधान करना तथा जिले के उन स्थानों को प्रमुख रूप से प्रकट करना जो व्यापारिक फसलों का उत्पादन अधिक करते हैं।

इनके अलावा भी प्रस्तुत शोध प्रबन्ध अध्ययन के कुछ प्रमुख उद्देश्य रहे हैं –

1 झालावाड़ जिले की व्यापारिक कृषि एवं उत्पादन का वर्तमान स्तर ज्ञात करना जिससे अध्ययन क्षेत्र के भावी विकास हेतु लाभकारी योजना का निर्धारण हो सके।

2 विभिन्न कृषि संसाधनों का सामयिक एवं क्षेत्रिय विश्लेषण एवं विवेचन करना।

3 उपर्युक्त संसाधनों पर आधारित कृषि फसल प्रारूप का जिले की भौगोलिक परिस्थितियों में विवेचन करना।

4 कृषि विकास संतुलन की पिछली प्रवृत्तियों के आधार पर वर्तमान के लिए कृषि विकास स्तर का मापन करना।

5 कृषि विकास के विभिन्न स्तरों वाले क्षेत्रों के लिए भावी कृषि विकास योजना निर्धारण के हेतु उपयुक्त सुझाव प्रकट करना।

6 झालावाड़ की प्रमुख व्यापारिक फसलों के क्षेत्रफल, उत्पादन एवं उत्पादकता में अध्ययन अवधि के दौरान हुए परिवर्तनशीलता एवं इनकी प्रवृत्तियों का अध्ययन करना।

7 जिले की व्यापारिक फसलों के उत्पादन का इनके क्षेत्रफल एवं उत्पादकता के साथ सम्बन्ध का विश्लेषण कर उसकी सार्थकता की जाँच करना।

8 फसलों के उत्पादन पर इसके क्षेत्रफल एवं उत्पादकता के प्रभाव का विश्लेषण करके यह जानना कि उत्पादन वृद्धि हेतु क्षेत्रफल तथा उत्पादकता इनमें से कौनसा कारक अधिक प्रभावशाली है।

उपरोक्त प्रमुख उद्देश्यों के अतिरिक्त निम्नलिखित बिन्दुओं का भी अवलोकन करने का प्रयास किया गया हैं।

- अध्ययन के विश्लेषण से प्राप्त प्रमुख निष्कर्ष के आधार पर सुझाव प्रस्तुत करना।
- झालावाड़ में व्यापारिक कृषि में अपनायी जाने वाली विभिन्न कृषि पद्धतियों की व्याख्या करना।
- जिले में व्यापारिक कृषि उत्पादन को बढ़ाने के लिए अपनाये गये उपायों को बताना।
- व्यापारिक कृषि विशेषताओं का वर्णन करना।

- साल दर साल व्यापारिक कृषि में हुए बदलाव को प्रकट करना शोध का प्रमुख उद्देश्य रहा है।
- जिले के कृषि तंत्र में व्यापारिक कृषि को आत्मसात करने से कृषकों को फसल विविधता का विकल्प मिलेगा तथा उनकी आय में वृद्धि करना।
- झालावाड़ जिले की भौगोलिक, आर्थिक व सामाजिक दशाओं का अध्ययन करना।

प्रस्तुत शोध पत्र के अध्ययन में उक्त आँकड़ों को व्यवस्थित रूप से प्रकट किया गया है। प्रयुक्त किये गये आँकड़ों के द्वारा जिले की व्यापारिक फसलों की कृषि के क्षेत्र में कई शोधकर्ता सामाजिक कार्यकर्ता एवं कृषि उत्पादन के विकास कार्यों में सभी संरचनाए लाभ उठा सकेगी।

परिकल्पना –

उपयुक्त तथ्यों की प्राप्ति हेतु शोध कार्य हेतु निम्न परिकल्पनाओं को आधार बनाया गया है।

- अध्ययन क्षेत्र में खाद्यान्न फसलों के साथ–साथ व्यापारिक फसलों का उत्पादन की प्रधानता है।
- व्यापारिक कृषि में वैज्ञानिक कृषि पद्धति, रासायनिक उर्वरक, कीटनाशक तथा उन्नतशील बीजों का प्रयोग सीमित किसानों द्वारा किया जाता है।
- अध्ययन क्षेत्र में कृषि भूमि उपयोग में आवश्यक सुधार कर प्रति हैक्टेयर उत्पादन में वृद्धि करके क्षेत्रवासियों के आर्थिक स्तर को ऊँचा उठाया जा सकता है।
- कृषि फसलों में रोगों के लिए किसानों की निर्धनता और अज्ञानता प्रमुख रूप से उत्तरदायी है।

झालावाड़ जिले में कृषि के विकास हेतु सरकारी प्रयासों द्वारा कृषकों की आय में वृद्धि, मूल्य संवर्धन में निवेश को प्रोत्साहन युवाओं को रोजगार के अवसर तथा जिले में उपलब्ध प्राकृतिक संसाधन यथा मिट्टी व पानी के समुचित प्रबन्धन के प्रयास किये जा रहे हैं। वैश्वीकरण के इस युग में झालावाड़ जिले में इस व्यापारिक कृषि के परिदृश्य पर शोध कार्य द्वारा इसके स्वरूप अवस्था व स्तर का विस्तृत विवेचन, इससे जुड़ी समस्याओं का अध्ययन करके इस दिशा में और अधिक प्रयास किये जा सकते है। इन तथ्यों को दृष्टिगत रखते हुए इस शोध कार्य का सृजन किया जा रहा है।

आँकड़ों के स्त्रोत एवं विधि तंत्र –

किसी भी शोध अध्ययन या समस्या के सम्यक प्रस्तुतीकरण में तथ्यों की भूमिका अत्यंत ही महत्वपूर्ण होती है। तथ्यों के एकत्रीकरण हेतु शोध कार्य में मुख्यतया दो प्रकार के स्त्रोत काम में लिये गये हैं।

प्राथमिक स्त्रोत –

प्रस्तुत शोध में तथ्यों का प्राथमिक स्त्रोत साक्षात्कार अनुसूची है। साक्षात्कार अनुसूची में समस्या के सभी विस्तृत पक्षों को सम्मिलित किया गया है। इसके अतिरिक्त व्यापारिक कृषि की भौतिक दशायें व पर्यावरण के तथ्यों को संग्रहित कर उनकी प्रतिक्रियाये ग्रहण की गयी हैं। इसके अतिरिक्त मीडिया कृषक समुदाय व्यापारिक कृषि में प्रयासरत सरकारी व गैर सरकारी संस्थाओं की भूमिका से सम्बन्धित तथ्यों का भी संकलन किया गया है।

द्वितीयक स्त्रोत –

द्वितीयक स्त्रोतों के अन्तर्गत पूर्ववर्ती शोध प्रबन्ध ग्रन्थ, शैक्षणिक अभिलेख तथा राज्य व केन्द्र सरकार के लिखित अभिलेख आदि का सहारा लेकर द्वितीयक सामग्री का उपयोग प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में किया गया है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के लिए प्राथमिक व द्वितीयक प्रकार के आँकड़ों की सहायता ली गई है। प्राथमिक प्रकार के आँकड़ों का संकलन सेम्पल सर्वे द्वारा प्रस्तुत अध्ययन क्षेत्र से एकत्रित किये गये हैं तथा द्वितीयक प्रकार के आँकड़ें विभिन्न प्रकार के स्त्रोतों से लिये गये हैं।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के अध्ययन क्षेत्र के परिणामों को स्पष्ट करने के लिए शोधार्थी ने विभिन्न स्थानों से एकत्रित किये गये आँकड़ों का संक्षेपण क्षेत्रीय एवं संरचनात्मक परिवर्तन देखने के लिए व आँकड़ों को अधिक प्रभावी बनाने के लिए मानचित्रों एवं आरेखों की सहायता ली गई हैं।

प्रस्तुत अध्ययन का वर्तमान स्वरूप तैयार करने के लिए राज्य एवं जिले के विभिन्न सरकारी विभागों से विभिन्न सूचनाएँ आँकड़ें प्राप्त किये गये हैं। अध्ययन क्षेत्र में महत्वपूर्ण सूचनाएँ एकत्रित करने में निम्न विभागों से सहायता ली हैं –

1. कार्यालय जिला कलेक्टर (भू–अभिलेख), झालावाड़
2. कार्यालय जिला सांख्यिकी विभाग, झालावाड़
3. जियोलोजीकल सर्वे ऑफ इण्डिया (G.S.I.), जयपुर
4. कार्यालय जिला वन मण्डल अधिकारी, झालावाड़
5. कार्यालय अधिशाषी अभियंता, सिंचाई खण्ड, झालावाड़
6. कार्यालय कृषि विज्ञान केन्द्र, झालावाड़
7. कार्यालय उद्यान विभाग, झालावाड़
8. कार्यालय कृषि उपजमण्डी, भवानीमण्डी, झालावाड़

संक्षेप में अध्ययन क्षेत्र के लिए परिणाम प्रकट करने के लिए शोधार्थी ने विभिन्न स्थानों से एकत्रित किये आँकड़ों का संकलन, संक्षेपण, सारणीयन एवं परिवर्तन करने के लिए विभिन्न सांख्यकीय विधियों का प्रयोग किया है। क्षेत्र का सामयिक, क्षेत्रीय एवं संरचनात्मक परिवर्तन देखने के लिए आँकड़ों को अधिक प्रभावी बनाने के लिए मानचित्रों एवं आरेखों की सहायता ली गई है।

सीमाएँ –

जहाँ तक संभव हो सका है समंक अथवा आँकड़ों में शुद्धता का पूरा–पूरा ध्यान रखा गया है और पूर्व सावधानियों सहित प्राथमिक एवं द्वितीयक समंकों का संग्रहण किया गया है।

आँकड़ों अथवा समंकों के संग्रहण में ऐसी कठिनाइयों का उपस्थित होना सांख्यिकीय की लगभग एक अनिवार्यता है कृषि विज्ञान के अध्ययन की एक सीमा है।

शोध प्रविधि –

शोध कार्य में प्रयुक्त द्वितीय समंकों को मुख्य रूप से दो भागों में विभक्त किया हैं।

(अ) **प्रकाशित समंक** – प्रकाशित समंकों के अन्तर्गत सरकारी और गैर सरकारी संस्थाओं के कार्यालयों के प्रकाशनों, कार्य योजनाओं, पुस्तकों एवं पत्र पत्रिकाओं, विविध समितियों आदि को आधार मानकर प्रकाशित समंकों को शोध कार्य में काम में लिया गया है।

(ब) **अप्रकाशित समंक** – अप्रकाशित समंक वे समंक है जिनका संकलन सरकारी कार्यालयों और कृषि अधिकारियों तथा क्षेत्र में विशेष अनुभव रखने वाले व्यक्तियों के माध्यम से किया जाता हैं।

प्रस्तुत शोध कार्य में तथ्यों एवं समंकों का एक बड़ा भाग द्वितीयक स्त्रोतों से प्राप्त किया गया हैं। द्वितीयक समंकों के स्त्रोत मुख्य रूप से निम्नानुसार हैं –

- जिला सांख्यिकी कार्यालय, झालावाड़ द्वारा प्रकाशित पुस्तिकाओं द्वारा।
- सरकारी एवं गैर सरकारी प्रकाशनों द्वारा।
- आर्थिक एवं वाणिज्यिक पत्र पत्रिकाओं एवं संदर्भित ग्रन्थों द्वारा।
- जिले के सरकारी एवं गैर सरकारी कार्यालयों द्वारा।
- जिला भू–अभिलेख कार्यालय, झालावाड़।

प्रत्येक शोध का एक निश्चित लक्ष्य एवं उद्देश्य होता है। एक निश्चित लक्ष्यों व उद्देश्यों को पाने के लिए शोधकर्ता को शोध प्रचनाएँ या शोध अभिकल्प तैयार करना होता है। प्रस्तुत अध्ययन हेतु प्रमुख आधुनिक शोध प्रणालियों का अध्ययन किया गया है जो अध्ययन क्षेत्र की मानक प्रणालियाँ है। इसका विवरण इस प्रकार है–

पुस्तकालय कार्य –

अनुसंधान कार्य की सफलता बहुत कुछ पुस्तकालय कार्य पर निर्भर करती है। बिना पुस्तकालय कार्य के सफल अनुसंधान असंभव है। पुस्तकालय में उपलब्ध विषय सम्बन्धी साहित्य, सामयिक प्रकाशन ज्ञान कोष और मूल सन्दर्भ ग्रन्थों का अध्ययन शोध कार्य में सहायक होता है। प्रस्तुत शोध के उद्देश्यों और निर्धारित परिकल्पनाओं को दृष्टिगत रखते हुए शोध प्रविधि को ऐसा स्वरूप प्रदान करने का प्रयत्न किया गया है जिससे समस्या पर मौलिक बहुकोषीय गहन अध्ययन संभव हो सके। शोधकर्ता द्वारा विभन्न पुस्तकालयों में जाकर उपलब्ध शोध साहित्य का अध्ययन कर जिले की व्यापारिक कृषि के सम्बन्ध में आवश्यकतानुसार वांछित जानकारियाँ प्रस्तुत की है जिसमें प्रमुख रूप से –1. कृषि विज्ञान केन्द्र झालावाड़ (पुस्तकालय), 2. सरकारी पुस्तकालय, झालावाड़ 3. कोटा विश्व विद्यालय, कोटा (पुस्तकालय) 4. कोटा महाविद्यालय, कोटा की भागीदारी रही हैं। जहाँ से कुछ विषय से सम्बन्धित महत्वपूर्ण जानकारियाँ प्राप्त हुई है, जिसमें मुझे अपने शोधकार्य करने एवं समझने में महत्वपूर्ण सहायता मिली हैं।

अनुसूची द्वारा सर्वेक्षण –

अनुसूची प्रश्नों की एक लिखित सूची है जो अध्ययनकर्ता द्वारा अध्ययन विषय को ध्यान में रखकर बनाई जाती है। इसमें अनुसंधानकर्ता स्वयं घर–घर जाकर प्रश्नों के उत्तर अनुसूचियों द्वारा प्राप्त करता है।

प्रविधि के प्रयोजन अथवा उद्देश्यों को स्पष्ट करते हुए गुडे एवं हॉट ने लिखा हे कि ''अनुसूची प्रायः प्रश्नों के एक समूह के लिए उपयोग में लाये जाने वाला नाम है जो एक साक्षात्कारकर्ता द्वारा अन्य व्यक्तियों के आमने–सामने की स्थिति में पूछे और भरे जाते हैं।''

वास्तविकता यह है कि अनुसूची के द्वारा जहा एक ओर अधिक प्रमाणिक और वस्तुनिष्ठ सूचनाएँ प्राप्त की जा सकती है तो दूसरी ओर इसकी सहायता से अपूर्ण सूचनाओं के दोष को दूर करके सूचनाओं का सत्यापन करना भी संभव हो जाता है।

प्रस्तुत शोधकार्य में प्रत्यक्ष रूप से तथ्यों का संकलन करने के लिए (अनुसूची में प्रयोग द्वारा) झालावाड़ जिले के तहसीलानुसार प्रमुख रूप से व्यापारिक कृषि करने वाले किसानों से व्यक्तिगत सम्पर्क द्वारा अनुसूचियाँ भरवाई गई तथा उनके अनुसार ही प्रस्तुत शोध के निष्कर्ष निकाले गये हैं।

साक्षात्कार –

गुडे एवं हॉट ने लिखा है कि ''मौलिक रूप से साक्षात्कार भौगोलिक अन्त क्रिया की एक प्रक्रिया है।'' इसका अर्थ है कि साक्षात्कार का अभिप्रायः केवल अध्ययनकर्ता और विषय के पारस्परिक सम्बन्ध से ही नहीं, बल्कि इन दोनों पक्षों के बीच एक अर्थपूर्ण अथवा उद्देश्यपूर्ण अन्त क्रिया होती है।

सिनपाओ यंग ने बताया है कि ''साक्षात्कार क्षेत्रीय कार्य की एक विधि है जिसका प्रयोग व्यक्ति या व्यक्तियों के व्यवहार को देखने कथनों को लिखने और सामाजिक या सामूहिक अन्तःक्रिया के वास्तविक परिणामों का निरीक्षण करने के लिए किया जाता है।

प्रस्तुत शोधकार्य में मेरे द्वारा ऐसे तथ्यों का संकलन जो प्रश्नावली, अनुसूची व अवलोकन से संभव नहीं था का संकलन साक्षात्कार द्वारा एकत्रित करने का प्रयास किया गया है। कृषि अधिकारियों, विपणन प्रबन्धनों, सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थानों आदि से व्यक्तिगत सम्पर्क करके उनके कार्य में आने वाली कठिनाइयों, उनकी समस्याओं एवं निराकरण सम्बन्धी सुझाव साक्षात्कार द्वारा प्राप्त किये गये हैं।

अवलोकन –

किसी तथ्य अथवा घटना की वास्तविकता का ज्ञान तभी संभव हो सकता है जब उसे अपने सामने घटित होता हुआ देखा जाए।

अवलोकन अनुसंधान कार्य का एक ऐसा उपकरण है जिसका सम्बन्ध व्यक्ति के बाह्य व्यवहार से होता है। अतः अवलोकन प्रविधि प्राथमिक सामग्री के संग्रहण की प्रत्यक्ष प्रविधि है जिसमें नेत्रों द्वारा नवीन अथवा प्राथमिक तथ्यों का विचारपूर्वक संकलन किया जाता है। सत्य ही इस प्रविधि में शोधकर्ता अध्ययन के अन्तर्गत आए समूह के दैनिक जीवन में भाग लेते हुए

अथवा उनसे दूर बेठकर उनके द्वारा की जाने वाली व्यापारिक कृषि का अपनी ज्ञानेन्द्रियों द्वारा निरीक्षण या अवलोकन करता है।

शोधार्थी द्वारा सर्वेक्षण के दौरान कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता सम्बन्धी विभिन्न पहलुओं का प्रत्यक्ष अवलोकन किया गया है तथा कृषकों के सामाजिक तथा व्यक्तिगत व्यवहार को भी अनुभव किया है।

तथ्यों का विश्लेषण –

अनुसंधान या शोधकार्य में केवल तथ्यों का एकत्रित कर लेने से ही अध्ययन विषय का वास्तविक अर्थ, कारण तथा परिणाम स्पष्ट नहीं हो सकता जब तक कि उन एकत्रित तथ्यों को सुव्यवस्थित करके उनका विश्लेषण व व्याख्या न की जाए।

विश्लेषण कार्य की सफलता शोधकर्ता की क्षमता, व्यक्तित्व तथा आंतरिक विशेषताओं पर आधारित होता है जो शोधकर्ता के ज्ञान, अनुभव, साहस, ईमानदारी तथा अभिव्यक्ति पर निर्भर होती है। शोधकर्ता में एक आलोचनात्मक कल्पना शक्ति होनी चाहिए ताकि वह तथ्यों के मध्य अन्तर्सम्बन्धों को समझ सकें।

प्रस्तुत शोधकार्य में शोधार्थी द्वारा अध्ययन में आए विभिन्न प्रकार के तथ्यों का संकलन एवं वर्गीकरण कर कृषि उत्पादन को सारणीयन द्वारा विश्लेषित कर निष्कर्ष तक पहुँचाने का प्रयास किया है।

अध्ययन विषय के महत्व –

किसी भी क्षेत्र के किसानों द्वारा फसलों का चयन करते समय सदैव अपनी आवश्यकताओं को ध्यान में रखा जाता है। इसलिए वह अपने खेत में उन फसलों का चयन अधिक करता है जिससे उसे अन्य फसलों की तुलना में कम समय में अधिक उत्पादन प्राप्त हो सके। इसलिए वह खाद्य फसलों की तुलना में व्यापारिक फसलों को अधिक प्राथमिकता देता है। जिले के किसानों द्वारा भी अधिकांश व्यापारिक कृषि की ओर रूझान बढ़ा है। इसका प्रमुख कारण यहाँ की व्यापारिक कृषि के लिए अनुकूल भौगोलिक परिस्थितियों का विद्यमान होना है। खाद्यान्न फसलों के उत्पादन के साथ–साथ व्यापारिक कृषि फसलों की मांग पूरी करने के लिए

जिले में पर्याप्त भूमि उपलब्ध है परन्तु जिले में व्यापारिक फसलों के उत्पादन में समस्या भी आ गई है। विशेष रूप से अफीम का उत्पादन पहले की तुलना में कम हो गया है। इसका प्रमुख कारण अफीम पट्टों का सीमित किसानों को जारी करना है। इसलिए सरकार ने भी जिले में व्यापारिक कृषि के उत्पादन को बढ़ाने के लिए प्रोत्साहन देने हेतु अनेक योजनाओं को संचालित किया है। जिले की व्यापारिक फसलों में धनियाँ, लहसुन, सोयाबीन का प्रमुख स्थान है परन्तु दूसरी फसलों सन्तरा, सरसों का उत्पादन भी काफी महत्व रहा हैं।

अध्ययन क्षेत्र व्यापारिक कृषि प्रधान क्षेत्र है जहाँ अब अधिकांश जनसंख्या कृषि कार्य में लगी हुई है। कृषि पर अयधिक निर्भरता के कारण यहाँ के किसानों की आय का स्तर नीचा है। यद्यपि कुछ सालों में व्यापारिक कृषि का उत्पादन बढ़ा है परन्तु फिर भी उपलब्ध कृषि क्षेत्र पर परम्परागत तरीके से फसलों का उत्पादन परम्परागत कृषि प्रणाली, कृषि में अपेक्षित पूंजी निवेश का अभाव के कारण कृषि उत्पादन अपेक्षित गति से नहीं बढ़ा है। उत्पादन वृद्धि का अधिकांश लाभ धनी वर्ग को ही प्राप्त हुआ है जिससे आर्थिक विषमाताऐं भी बढ़ी है। जबकि व्यापारिक कृषि विकास की परिधि में समृद्धि और वितरण की प्रक्रियाऐं निहित होती हैं। किसानों के हितों का लाभ अधिकांश उन लोगों या उन क्षेत्रों को मिलना चाहिए जो अपेक्षाकृत अधिक गरीब और पिछड़े हो समृद्धि और वितरणात्मक न्याय का पारस्परिक समन्वय किसी भी क्षेत्र के आय वर्ग के लोगों को खुशहाल बना सकता है। इसलिए प्रत्येक कृषि सम्बन्धी कल्याणकारी योजना का मुख्य उद्देश्य किसानों के आर्थिक विकास की ऐसी प्रक्रिया को प्रोत्साहित करना होना चाहिए जिससे सभी कमजोर क्षेत्रों और वर्गों के किसान अपेक्षाकृत अधिक लाभान्वित हो सके।

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि सरकार द्वारा संचालित कृषि विकास योजनाओं से ग्रामीण क्षेत्र अपेक्षित लाभ प्राप्त नहीं कर सके हैं। अध्ययन क्षेत्र भी पूर्णतया खाद्यान्न कृषि के साथ–साथ व्यापारिक कृषि क्षेत्र है। जिले की व्यापारिक कृषि करने वाली अधिकांश जनसंख्या का अपनी आय का एक बड़ा भाग परिवार के भरण–पोषण पर व्यय करने के लिए बाध्य है। कृषि की न्यून उत्पादकता, सिंचाई सुविधाओं की अपर्याप्तता, नवीन तकनिकी का कृषि क्षेत्र में अत्यन्त कम प्रयोग आदि समस्याओं के कारण कृषि का उत्पादन किसान अपने आशानुरूप नहीं कर पाते हैं। इसी स्थिति में यह नितान्त आवश्यक प्रतीत होता है कि कृषि भूमि का उपयोग

सर्वोत्तम विधि से सम्पन्न किया जाये जिससे क्षेत्र की जनसंख्या की न केवल अपनी उदरपूर्ती कर सके अपितु वर्तमान आर्थिक युग में एक सम्पन्न कृषक के रूप में अपनी पहचान बना सके। इसलिए वर्तमान समय में जिले की व्यापारिक कृषि एवं किसानों की सम्बन्धित समस्याओं का अध्ययन नितान्त आवश्यक है। जिले में व्यापारिक कृषि से सम्बन्धित विभिन्न प्रकार की समस्याऐं होते हुए भी यहाँ पर कृषि कार्य एवं उत्पादन अधिक सम्पन्न हैं। जिले में विभिन्न प्रकार की व्यापारिक फसलों की कृषि एवं उत्पादन किया जाता है। जिससे इस जिले का व्यापारिक कृषि उत्पादन में महत्वपूर्ण स्थान है।

कृषि की दृष्टि से झालावाड़ जिले का राज्य में प्रमुख स्थान है। खाद्यान्न, तिलहन व सन्तरा उत्पादन में झालावाड़ जिला अग्रणी है। समग्र कृषि विकास के लिए कृषि उद्यानिकी, कृषि विपणन व पशुपालन के क्षेत्र में सुक्ष्म स्तर पर वर्तमान स्थिति का आकलन कर आने वाले वर्षों के लिए जिले में कई योजनाऐं बनाई जा रही है। झालावाड़ जिले में आय के प्रमुख स्त्रोतों में कृषि उत्पादन का प्रमुख स्थान है। अतः कृषि यहाँ पर महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती है। आगामी दशकों में क्षेत्र में व्यापारिक फसलों के उत्पादन व उत्पादकता में वृद्धि की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। इसके साथ–साथ इस कृषि की कई समस्याऐं भी उभरकर सामने आती हैं। जिसके द्वारा कई बार उत्पादन प्रक्रिया, उत्पादकता में कमी आती है।

कृषि मानव विकास का सूचक है इसके साथ जीवन स्तर में वृद्धि, आय में वृद्धि, देश की समृद्धि आदि पक्ष कृषि के साथ–साथ जुड़े हुए हैं। किसी शोध सम्बन्धित साहित्य की समीक्षा से अनुसंधानकर्ता को इसके द्वारा किये जाने वाले शोधकार्य की सीमा के निर्धारण करने में सहायता मिलती है। सम्बन्धित साहित्य के ज्ञान से अनुसंधानकर्ता को अन्य के द्वारा किये गये कार्य के बारे में जानकारी प्राप्त होती है, जिससे वह अलाभप्रद व अनुपयोगी समस्याओं तथा उसी क्षेत्र में फिर से शोध करने से बच सकता है। इसके द्वारा इस सम्बन्ध में भी जानकारी प्राप्त होती है कि पूर्व में किये गये अनुसंधान में किस प्रकार की अनुसंशाऐं की गई थी।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के महत्व को हम निम्नानुसार रूपों में समझ सकते हैं –

- शोधार्थी का जिले की व्यापारिक कृषि से सम्बन्धी जानकारी प्राप्त करना।
- शोध समस्या को सिमित रखने व आगे व्यापारिक कृषि करने वाले किसानों को सही दिशा देने में सहायता प्रदान करेगा।
- प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को लिखने में एकत्र की गई सामग्री प्राप्त करने में उपयुक्त साधनों, कारणों विधियों एवं परिक्षणों को खोजने में सहायता मिलती है।
- प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के माध्यम से व्यापारिक कृषि में आने वाली समस्याओं का उचित मार्गदर्शन किया गया है जिससे व्यापारिक कृषि करने वाले किसानों को लाभ एवं जानकारी मिल सकें।
- व्यापारिक कृषि से जुड़े विभिन्न चरों को खोजा गया है एवं शोध प्रबन्ध में डाला गया है जिससे आगे व्यापारिक कृषि करने वाले किसानों को मार्गदर्शन मिल सकें।
- जिले की व्यापारिक कृषि से जुड़ी विभिन्न प्रकार की समस्याओं का समाधान प्रस्तुत शोध में किया गया है।
- प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का महत्व शोध परिणामों एवं व्याख्या करने में सहायक होगा।
- शोध के उद्देश्य, सीमाओं और परिकल्पनाओं के विश्लेषीकरण के लिए आवश्यक विशिष्ट जानकारी देने में।
- व्यापारिक कृषि सम्बन्धित जो कार्य हो चुका है उससे जो करने की आवश्यकता है उसको पृथक करना।
- शोध परिणामों के विश्लेषण एवं व्याख्या करने में।
- शोधकार्य का स्वरूप बनाने के लिए अध्ययनों का संकलन करना।

– समस्या का अर्थ इसकी उपयुक्त, समस्या से इसका सम्बन्ध और प्राप्त अध्ययनों से इसके अन्तर को निर्धारित करना।

अध्ययन विषय साहित्य पर पूर्व में किये गये अध्ययन –

एक अन्तःवैज्ञानिक विषय के रूप में भूगोल विषय के अन्तर्गत मानव के विकास का महत्व ही भूगोल की प्रमुख विषयवस्तु हैं। मानव विकास में इसकी आर्थिक क्रियाऐं अधिक महत्वपूर्ण है। जिसमें भी कृषि क्रिया का विशेष महत्व हैं जो कि भूमि उपयोग पद्धति, उपलब्ध संसाधन आदि के द्वारा निर्धारित होती हैं। यद्यपि कृषि सम्बन्धी विषय व क्षेत्र अन्तर्निहित सम्बन्धों की प्रकृति का हैं, तथापि यह भूगोल के अध्ययन के अन्तर्गत हैं। पश्चिमी जगत में इस शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में भूमि उपयोग में महत्व व मूल्य पर भूगोलवेत्ताओं द्वारा समय–समय पर पर्याप्त अध्ययन किया गया है, जिससे भूमि वितरण, भूमि के वर्गीकरण, भूमि मापन तथा क्षेत्रवार विभिन्न श्रेणियों के अन्तर्गत उसके तर्कसंगत उपयोग के लिए उसकी क्षमता तथा भौगोलिक पर्यावरण के अनुसार उपलब्ध भूमि का अध्ययन आता हैं।

प्रथम अनुसंधान का कार्य सॉवर के मिशिगन आर्थिक सर्वेक्षण तथा यू.एस.ए. के टी.वी.ए. भूमि वर्गीकरण के प्रयास में तथा स्टाम्प के 1930 में ब्रिटेन में प्रकाशित लैण्ड ऑफ ब्रिटेन इट्स यूज एण्ड मिसयूज शीर्षक के अन्तर्गत एटलस के सहयोग से लैण्ड यूटिलाइजेशन ऑफ ब्रिटेन नामक पुस्तक में पाये जाते हैं। इस अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य यह था कि उनके देश की प्रत्येक इंच भूमि का उपयोग किस प्रकार किया जाए तथा इसी के भावी भौगोलिक अन्वेषणों का कार्य प्रशस्त किया और अधिक एवं विस्तृत अध्ययन तथा सर्वेक्षण इस शताब्दी की छठी दशाब्दी में एलिस कोलोमन द्वारा किया गया। स्टाम्प द्वारा विश्वव्यापी भूमि सर्वेक्षण की एक योजना प्रस्तावित की गई तथा व्यापक अनुसंधान हेतु इस सम्बन्ध में अन्तर्राष्ट्रीय भौगोलिक संगठन के तत्वाधान में विशद अध्ययन कनाडा, आस्ट्रेलिया तथा सोवियत रूस और अफ्रिकी देशों में भूमि वर्गीकरण तथा इकाईयों के आधार पर पूरे किये जा सकें।

– भारत में भी 1945–52 के मध्य प्रारम्भिक कार्य इस क्षेत्र में चटर्जी, एस.पी. तथा 1942–46 में राव, वी.एल.एस.पी. द्वारा प्रारम्भ किये गये।

- प्रोफेसर शफी द्वारा लैण्ड यूटिलाइजेशन इन ईस्टर्न उत्तर प्रदेश नामक शीर्षक की पुस्तक 50 के दशक के अन्तिम दिनों में कृषि उत्पादन तथा क्षेत्रीय भूमि असंतुलन उत्तर प्रदेश का एक अध्ययन 80 के दशक के प्रारम्भ में लिखी गई।
- जसबीर सिंह द्वारा एन एग्रीकल्चर ऑफ इण्डिया (1974), एन एग्रीकल्चर ज्यॉग्राफी ऑफ हरियाणा (1976), तथा एग्रीकल्चरल ज्यॉग्राफी (1984) ने जनसंख्या व कृषि कार्य तथा भूमि विवेचन के कार्य को एक नया आयाम दिया तथा गति प्रदान की।
- भूमि उपयोग पर अति व्यापक अनेकानेक अध्ययन इस विशाल भारत देश में विभिन्न रूपों में किये गए यथा शफी (1960), गुप्ता (1966), राय (1969), हुसैन (1969), सक्सेना (1970), सिंह एवं सिंह (1970), भाटिया (1970), भारद्वाज (1971), अहमद (1974) आदि।

प्रारम्भिक तौर पर यह अध्ययन भारत की भूमि के विशाल क्षेत्र यथा कश्मीर के बागों से लेकर धुर राजस्थान के मरूस्थलीय ग्रामों तथा दामोदर घाटी के ग्राम्य अंचलों से लेकर मैसूर के पठारों तक के क्षेत्र को अपने अध्ययन व 'सर्वेक्षण' के दायरे में ले लेते हैं। भूगोलवेत्ताओं के वर्तमान अध्ययन विवेचन ने खासतौर से कृषि प्रयोजन से भूमि संयोजन व उपयोग पर अपने को केन्द्रीत किया हैं।

प्रोफेसर शफी के निदेशन व नेतृत्व में अलीगढ़ स्कूल ऑफ थॉट का योगदान सार्वजनिक खाद्यान्न सन्तुलन, मेडिकल भूगोल की हद तक न्यूट्रेशन प्रणाली को समाहित करने की दिशा में उल्लेखनीय हैं, जो इस देश की भू–उपयोग की दृष्टि से एक नवीन वस्तु हैं, जो अनुपयोगी भूमि के उपयोग हेतु रूपान्तरण के लिए एक दिशापरक कार्य हैं।

भूगोलवेत्ताओं के द्वारा अन्वेषण कार्य एन. एल. गुप्ता (1983–89), अनिता (1983), गुर्जर (1984), आर.एल.मारू (1989), एन.एल.गुप्ता एवं एम.जेड़.ए. खान (1988) आदि द्वारा राज्य एवं उसके विभिन्न भागों को केन्द्रीत रखते हुए किये गए हैं, बड़े समीचीन और सीधे सम्बन्ध रखते हैं।

नेशनल रिर्माट सेंसिंग एजेन्सी, हैदराबाद जिसने राज्य स्तरीय अनुपयोगी भूमियों के मानचित्रों का निर्माण किया उसका कार्य 1980–82 के दशक के मध्य उल्लेखनीय हैं।

वर्ष 2000 में अहमद अली, स्नेहलता श्रृंगी व अन्य के द्वारा गंगानगर जिले की रायसिंह नगर तहसील के भूमि उपयोग परिवर्तन व फसल प्रारूप में परिवर्तन का पारिस्थितिक अध्ययन किया गया।

वर्ष 2003 में दलजीत कौर द्वारा उत्तरी पूर्वी हरियाणा के भू–जल व कृषि विकास पर अध्ययन किया गया। जिसमें बताया गया कि उत्तरी–पूर्वी हरियाणा में भू–जल प्रबन्ध के द्वारा कृषि का उल्लेखनीय विकास हुआ हैं तथा उपलब्ध का अनेक कार्यों में प्रयोग किया जाने लगा हैं।

वर्ष 2004 में बी.सी. वैद्य द्वारा विदर्भ के भूमि उपयोग व फसल प्रतिरूप परिवर्तन का अध्ययन किया गया।

वर्ष 2005 में के.सी. पहाड़िया, राहुल सक्सेना व पूजा सक्सेना के द्वारा बूंदी जिले में राष्ट्रीय कृषि बीमा योजना सम्बन्धी अध्ययन किया गया।

वर्ष 2007 में एम.बी.सिंह व डी.के. सिंह द्वारा कृषि तकनीकी और उसका सिंचाई के सम्बन्ध का अध्ययन मिर्जापुर जिले के सन्दर्भ में किया गया।

वर्ष 2008 में धर्मदास विश्वकर्मा द्वारा मध्य प्रदेश के छिन्दवाड़ा जिले के कृषि विकास का अध्ययन किया गया।

वर्ष 2008 में राजकुमार मोहाकर व जे.पी.जगताप द्वारा महाराष्ट्र में शोलापुर जिले की दक्षिण शोलापुर तहसील में कृषि भूमि उपयोग प्रतिरूप के अध्ययन में फसल प्रतिरूप, फसल के क्रम, फसल विविध कारण आदि तथ्यों का अध्ययन किया।

वर्ष 2009 में बी.सी. जाट व ए.आर. सिद्दकी द्वारा पश्चिमी राजस्थान की कृषि उत्पादकता का अध्ययन किया गया।

उपरोक्त अध्ययनों के अलावा भी कई विद्वानों ने कृषि सम्बन्धी अध्ययन किये हैं पर झालावाड़ जिले में व्यापारिक कृषि समबन्धी अध्ययन अभी उपेक्षित हैं अतः इस दिशा में शोध कार्य अपेक्षित हैं।

अध्यायनुसार कार्य योजना –

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में झालावाड़ जिले की व्यापारिक कृषि का अध्ययन छः अध्यायों के अन्तर्गत किया गया है।

अध्याय प्रथम – प्रथम अध्याय प्रस्तावना का है। जिसमें वर्तमान अध्ययन के उद्देश्य, उपयोगिता अध्ययन क्षेत्र के चयन एवं महत्ता पर प्रकाश डाला गया है।

अध्याय द्वितीय– द्वितीय अध्याय में झालावाड़ जिले का सामान्य अध्ययन भौगोलिक एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का विवरण प्रस्तुत किया गया है।

अध्याय तृतीय – तृतीय अध्याय में जिले में की जाने वाली विभिन्न प्रकार की व्यापारिक फसलों की कृषि एवं उसके लिए अनुकूल भौगोलिक परिस्थितियों का वर्णन किया गया है।

अध्याय चतुर्थ – इस अध्याय में जिले में की जा रही व्यापारिक कृषि से जुड़ी विकास की भावी संभावनाओं एवं नवीन प्रवृत्तियों का अध्ययन किया गया है तथा कृषि का स्थान व काल अनुसार परिवर्तन एवं कई प्रकार की सरकारी, गैर सरकारी संस्थाओं द्वारा किये गये प्रयासों एवं विकास के लिए चलाई जा रही योजनाओं का वर्णन किया गया हैं।

अध्याय पंचम – प्रस्तुत अध्याय में व्यापारिक कृषि के विकास से जुड़ी विभिन्न प्रकार की समस्याओं एवं उनके समाधान को प्रकट किया गया हैं।

अध्याय षष्ट्म – अध्ययन क्षेत्र के छठे व अंतिम अध्याय में व्यापारिक कृषि से जुड़े अध्ययन क्षेत्र का सारांश, समीक्षा एवं सुझाव को प्रकट किया गया हैं।

उपयुक्त अध्ययन के निष्कर्षों के माध्यम से जिले की व्यापारिक कृषि की नवीन प्रवृत्तियाँ एवं उसके स्वरूप का अध्ययन एवं उसके विकास स्तर का मापन हो जाता है।

अध्याय द्वितीय

जिला झालावाड़ का भौगोलिक, सामाजिक–आर्थिक, जनसांख्यकीय परिदृश्य

अध्ययन क्षेत्र राजस्थान के 'नागपुर' नाम से सुशोभित एवं मालवा की सांस्कृतिक समृद्धि से पल्लवित, राजपुताना शैली की सांस्कृतिक विरासत को अपने में समेटे हुए, झालावाड़ जिला राजस्थान के दक्षिणी–पूर्वी भाग में स्थित है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि –

झालावाड़ का शाब्दिक अर्थ झालाओं की भूमि। जो भूतपूर्व झालावाड़ राज्य के शासक वंश में थे। इसकी स्थापना के डेढ़ दशक बाद ही इसे कोटा राज्य में जाना जाने लगा। 1899 में इसका आधे से ज्यादा भाग कोटा संभाग में मिला हुआ था। परन्तु राजस्थान राज्य की स्थापना के बाद झालावाड़ का हिस्सा जितना कोटा में था वह झालावाड़ को दोबारा लौटा दिया गया। सुनेल जो कि मध्य भारत का हिस्सा था उसे झालावाड़ में मिला दिया गया। जिस समय मगध पर शुग वंश का शासन था उस समय कालीसिंध तथा आहू नदियों के संगम पर मिट्टी का एक दुर्ग विद्यमान था जिसे अब गागरोन का दुर्ग कहा जाता है। यह दुर्ग ही झालावाड़ के इतिहास का सबसे पुराना प्रत्यक्षदर्शी है। तब से लेकर वर्तमान युग तक भारत के इतिहास में अनेक मोड़ आये हैं और हर मोड़ के साथ गागरोन दुर्ग की भूमि सजती–संवरती और निखरती गई है। गागरोन से थोड़ी ही दूर पर बहने वाली चन्द्रभागा नदी के तट पर एक अत्यन्त प्राचीन नगरी विद्यमान थी जिसे चन्द्रावती कहा जाता था। इस नगरी में इतनी बड़ी संख्या में मंदिर विद्यमान थे जिनके झालरों की ध्वनि दूर–दूर तक सुनाई देती थी। इन्हीं झालरों की आवाज के आधार बनाकर अठारहवीं सदी में झाला जालिम सिंह ने चन्द्रभागा के तट पर झालरापाटन नगर बसाया। चन्द्रभागा नदी के तट पर अत्यन्त प्राचीन काल से चन्द्रभागा का मेला लगता आ रहा है जो इस क्षेत्र की सांस्कृतिक समृद्धि का प्रमाण है। गागरोन के खींची शासक पीपा ने गागरोन का दुर्ग अपने छोटे भाई अचल सिंह खींची को देकर सन्यास धारण कर लिया।

सोलहवीं सदी में मेवाड़ के महाराणा सांगा ने गागरोन दुर्ग अपने प्रमुख सरदार मेदिनी राय को दिया। जब अकबर का शासन आया तो उसने बीकानेर के राजकुमार पृथ्वीराज को गागरोन का दुर्ग प्रदान किया। अठारहवीं शताब्दी के अंतिम दशकों में कोटा राज्य के फौजदार

जालिम सिंह ने कोटा के महाराव उम्मेदसिंह के नाम पर उम्मेदपुरा छावनी की स्थापना की जो बाद में झालाओं के स्वतंत्र राज्य की राजधानी बन जाने पर झालावाड़ कहलाया।

झाला राजपुत 15वीं शताब्दी में काठियावाड़ के हलबद प्रदेश के एक छोटे से अधिपति राजघर के वंशज माने जाते है। इनके नवे उत्तराधिकारी माधोसिंह ने कोटा के महाराव के यहाँ नौकरी कर ली और अच्छे कार्य करने पर जागीर प्राप्त की तथा सेनापति का पद अर्जित किया। माधोसिंह के बाद मदन सिंह उत्तराधिकारी बने और उनके बाद हिम्मत सिंह ने कार्यभार संभाला। हिम्मत सिंह की मृत्यु के बाद सन् 1780 में जालिम सिंह को सेनापति का पद प्राप्त हुआ। झालावाड़ राज्य के निर्माण में मुख्यतः जालिम सिंह झाला (प्रथम) का महत्वपूर्ण योगदान रहा हे। इस राज्य का निर्माण 12 अप्रेल 1838 में अंग्रेजों के साथ की गई एक संधि के परिणाम स्वरूप हुआ। इससे पूर्व का झालावाड़ कोटा रियासत का एक हिस्सा था और कुछ हिस्सा मालवा के अधिन था। इसलिए राज्य का पूर्व इतिहास राज्य और मालवा सरकार से जुड़ा हुआ है। इस राज्य का वास्तविक निर्माण जालिम सिंह के पौत्र झाला मदन सिंह के समय हुआ जिन्होंने सन् 1838 से 1845 तक शासन किया। इनकी मृत्यु पर इनके पुत्र पृथ्वी सिंह (1899–1829) ने राज्य में सामाजिक, सांस्कृतिक, प्रशासनिक, सार्वजनिक निर्माण एवं शिक्षा आदि के क्षेत्रों में व्यापक सुधार करके झालावाड़ को आधुनिक रूप प्रदान किया। उनके आश्रय के कारण झालावाड़ ने देश को अनेक क्षेत्रों में उदीयमान व्यक्ति दिये है। भवानीसिंह के देहान्त के बाद इनके पुत्र राजेन्द्र सिंह (1829–1943) का राज्याभिषेक किया गया। अपने पिता की भांति वे भी समाज सुधारक अच्छे कवि तथा लेखक थे। ये 'सुधारक' उपनाम से कविताऐं लिखते थे। इन्होंने 1930 में लन्दन के गोलमेज सम्मेलन में भी भाग लिया। इनके पश्चात् राणा हरिशचन्द्र राजगद्दी पर आसीन् हुए। ये झालावाड़ राज्य के अंतिम शासक थे। सन् 1949 में इन्होंने वृहद राजस्थान में झालावाड़ राज्य का विलय कराया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् राज्य निर्माण और संगठन में मिलने का सर्वप्रथम कदम कोटा, डुंगरपुर और झालावाड़ के शासकों द्वारा उठाया गया था। बाद में सन् 1956 में राज्यों के पुनर्गठन के समय मध्य प्रदेश के 77 गांवों सहित एक नगर सुनेल को इस जिले की पिड़ावा

तहसील में शामिल किया गया। इसके पश्चात् कोटा जिले की सांगोद तहसील के 13 गाँव भी झालावाड़ जिले की झालरापाटन तहसील में स्थानांतरित किये गए और इस प्रकार वर्तमानझालावाड़ जिला अस्तित्व में आया।

भौगोलिक स्थिति –

प्राकृतिक सौन्दर्य तथा खनिज सम्पदाओं से भरपुर विन्ध्यांचल पर्वत मालाओं से अवेष्ठित इस जिले का विस्तृत भू–भाग समुद्रतल से 950 फीट ऊँचाई पर स्थित है। यह जिला राजस्थान के दक्षिणी–पूर्वी छोर पर $23^0$45'20" से $24^0$52'17" उत्तरी अक्षांश एवं $75^0$27'35" से $76^0$56'48" पूर्वी देशान्तर तक मालवा पठार के उत्तरी भाग में स्थित है। जिले के पश्चिम, दक्षिण एवं दक्षिण–पूर्व में मध्य प्रदेश राज्य स्थित है। उत्तर–पश्चिम में कोटा जिले की रामगंजमण्डी और सांगोद तहसील स्थित है। उत्तर–पूर्व में बाराँ जिले की अटरू एवं छीपाबड़ौद तहसीलें आती है। इस जिले का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 6219 वर्ग किलोमीटर है। सन् 2011 की जनगणना प्रतिवेदन के आधार पर जिले की कुल जनसंख्या 1411129 है।

प्रशासनिक विभाजन –

उपखण्ड एवं तहसीलें –

झालावाड़ जिले को 5 उपखण्डों भवानीमण्डी, अकलेरा, खानपुर, पिड़ावा एवं झालावाड़ में बांटा गया है। जिले में 7 तहसीले – खानपुर, झालरापाटन, अकलेरा, पिड़ावा, पचपहाड़, गंगधार एवं मनोहरथाना है। जिले में पाँच नगर पालिकाएँ –झालावाड़, झालरापाटन, भवानीमण्डी, अकलेरा एवं पिड़ावा है।

धरातलीय स्वरूप–

जिले में विभिन्न प्रकार की धरातलीय संरचनाऐं पाई जाती है। झालावाड़ जिला मालवा पठार के उत्तरी छोर पर स्थित है। यहाँ छोटी–छोटी विन्ध्यन क्रम की पर्वत श्रेणियाँ एवं मैदानी क्षेत्र पाया जाता है।

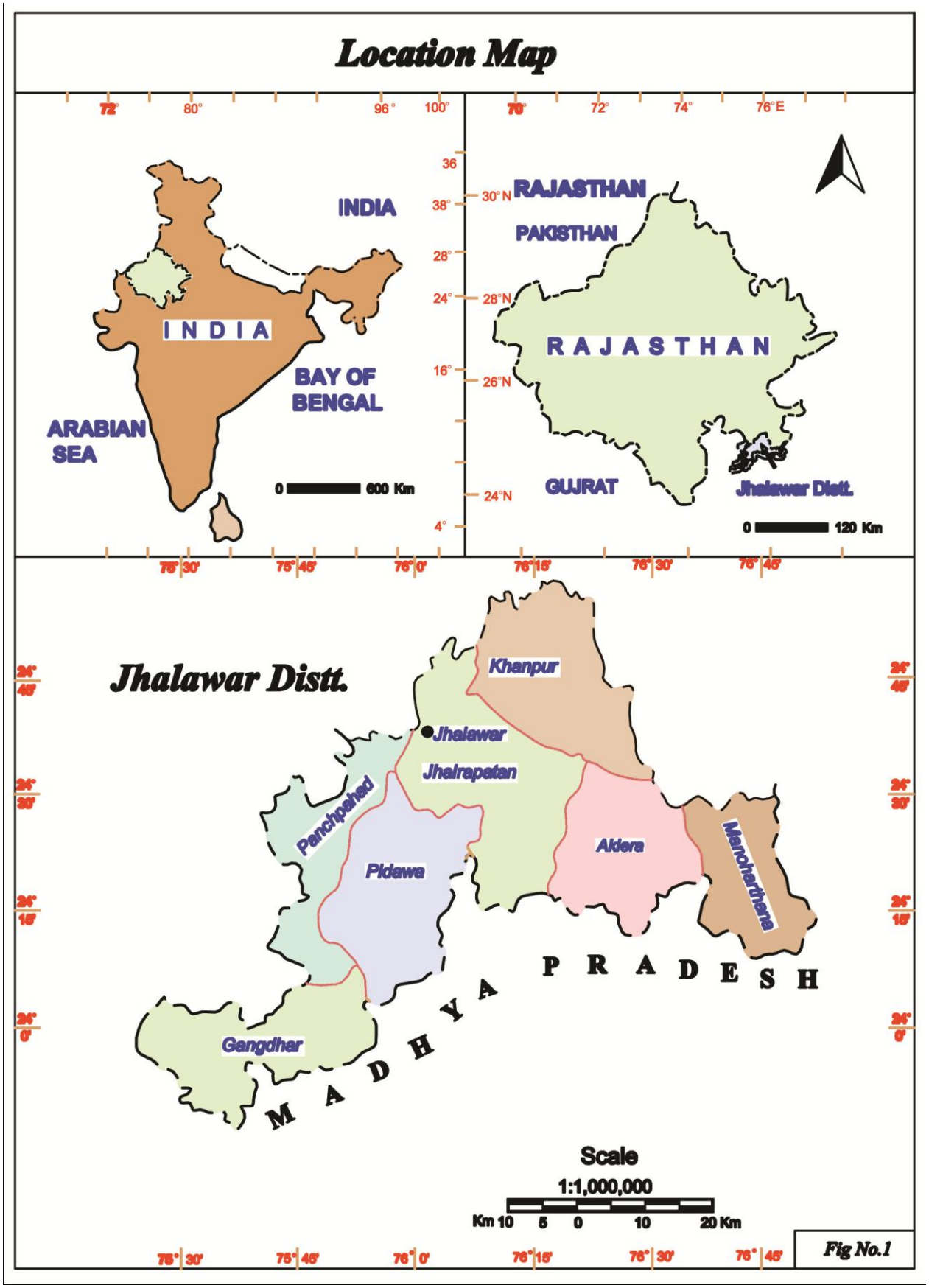
Location Map
INDIA
ARABIAN SEA
BAY OF BENGAL
0 600 Km
RAJASTHAN
PAKISTHAN
GUJRAT
Jhalawar Distt.
0 120 Km
Jhalawar Distt.
Khanpur
Jhalawar
Jhalrapatan
Panchpahad
Pidawa
Aklera
Manoharthana
Gangdhar
M A D H Y A P R A D E S H
Scale
1:1,000,000
Km 10 5 0 10 20 Km

Fig No.1

विभिन्न भौतिक परिदृश्यों के आधार पर झालावाड़ जिले को निम्न पाँच भौतिक उप विभागों में बांटा गया है –

(i) **मुकुन्दरा श्रेणी क्षेत्र** – मुकुन्दरा श्रेणी झालावाड़ जिले में दक्षिण–पूर्वी भाग से प्रवेश करती है और झालरापाटन के पास के गुजरती हुई कोटा जिले की चेचट तहसील तक फैली हुई है।

(ii) **डग की पहाड़ियाँ** – डग की पहाड़ियाँ पिड़ावा तहसील तक फैली हुई है।

(iii) **दक्षिणी पठारी क्षेत्र** – जिले के दक्षिण क्षेत्र का आधे से ज्यादा हिस्सा पठारी और छोटी–छोटी गोलाकार पहाड़ियों के रूप में स्थित है।

(iv) **झालरापाटन–पचपहाड़ का मैदान –झा**लरापाटन एवं पचपहाड़ का मैदानी क्षेत्र अकलेरा और मनोहरथाना की खाइयों तक फैला हुआ है।

(v) **खानपुर का मैदानी भाग** – खानपुर तहसील का मैदानी क्षेत्र मुकुन्दरा श्रेणी की बाहों में समाहित है।

जिले के सम्पूर्ण भौतिक भाग में मालवा पठार की विशेषताऐं समाहित है।

भूगर्भिक संरचना –

जिले में प्राचीन रूपान्तरित प्रकार की चट्टानें पाई जाती है। जिनमें प्रमुख रूप से क्वार्टजाइट, शिष्ट, ग्रेनाइट मिलते है। भूगर्भिक संरचना के अनुसार जिले के लगभग 22 प्रतिशत भाग में विन्ध्यन पर्वत समूह के बालू पत्थर एवं बालू पत्थर संलग्न शैल चट्टान पाई जाती है। शेष 78 प्रतिशत भाग में लावा से बनी आग्नेय चट्टान का विस्तार पाया जाता है। कोटा स्टोन के नाम से प्रसिद्ध बालू पत्थर के अलावा यहाँ लेटेराईट, बन्टोनाईट, तांबा, कच्चा लोहा, कैलसाईट, बॉक्साईट, डोलोमाईट के भण्डार भी मिलते है।

अपवाह तंत्र –

जिले का अपवाह तंत्र विशेष महत्वपूर्ण है। जिले की नदियाँ एवं स्त्रोत चम्बल से सम्बन्धित है। गंगधार तहसील को छोड़कर इसका बहाव क्षेत्र दक्षिण से उत्तर की ओर है। यहाँ की अधिकांश नदियाँ एक ही समान्तर श्रेणी में बहती है। वर्षाकाल में पानी के स्त्रोत अपने पूरे बहाव में होते है, लगातार तेज बहाव के कारण कई बार बाढ़ भी आ जाती है। परन्तु गर्मी के मौसम में ये सभी पानी के स्त्रोत सूख जाते है और बड़े पानी के स्त्रोतों में सिर्फ मानव और जानवरों के पीने योग्य रह जाता है।

जिले में वर्षा के पानी के संचय (इकट्ठा) के लिए बांध भी बनाये हुए है। जिनमें मुख्य रूप से आहू व कालिसिंध नदी पर है।

सुविधा की दृष्टि से झालावाड़ जिले की नदियों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है – 1. पश्चिमी समूह, 2. पूर्वी समूह। परन्तु इनके बीच कोई ज्यादा अन्तर नहीं है। यह सभी नदियाँ मध्य प्रदेश की पहाड़ियों से निकलती है और मालवा पठार के रास्ते होती हुई जिले में प्रवेश करती है।

पश्चिमी समूह में आहूँ, पिपलाज, क्यासरा, कांतली, रेखा, कालिसिंध एवं चन्द्रभागा है।

पूर्वी समूह में परवन, अंधेरी, नेवज, धार एवं उजाड़ नदियाँ है। यहाँ आहूँ, परवन, कालीसिंध मुख्य नदियाँ है। इन नदियों की झालावाड़ जिले में कुल लम्बाई 358 किलोमीटर है।

मिट्टियाँ –

मनुष्य की प्राथमिक आवश्यकताएँ मिट्टी से ही प्राप्त होती है। भारत की 70 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर निर्भर है, मृदा मानव का सबसे महत्वपूर्ण संसाधन है, क्योंकि मनुष्य की तीन (रोटी, कपड़ा, मकान) मूलभूत आवश्यकताओं में सबसे अधिक आवश्यक भोजन सामग्री की पूर्ति करना है। प्रत्यक्ष रूप से हमें इसी संसाधन के द्वारा प्राप्ति होती है।

Jhalawar District

Drainage System

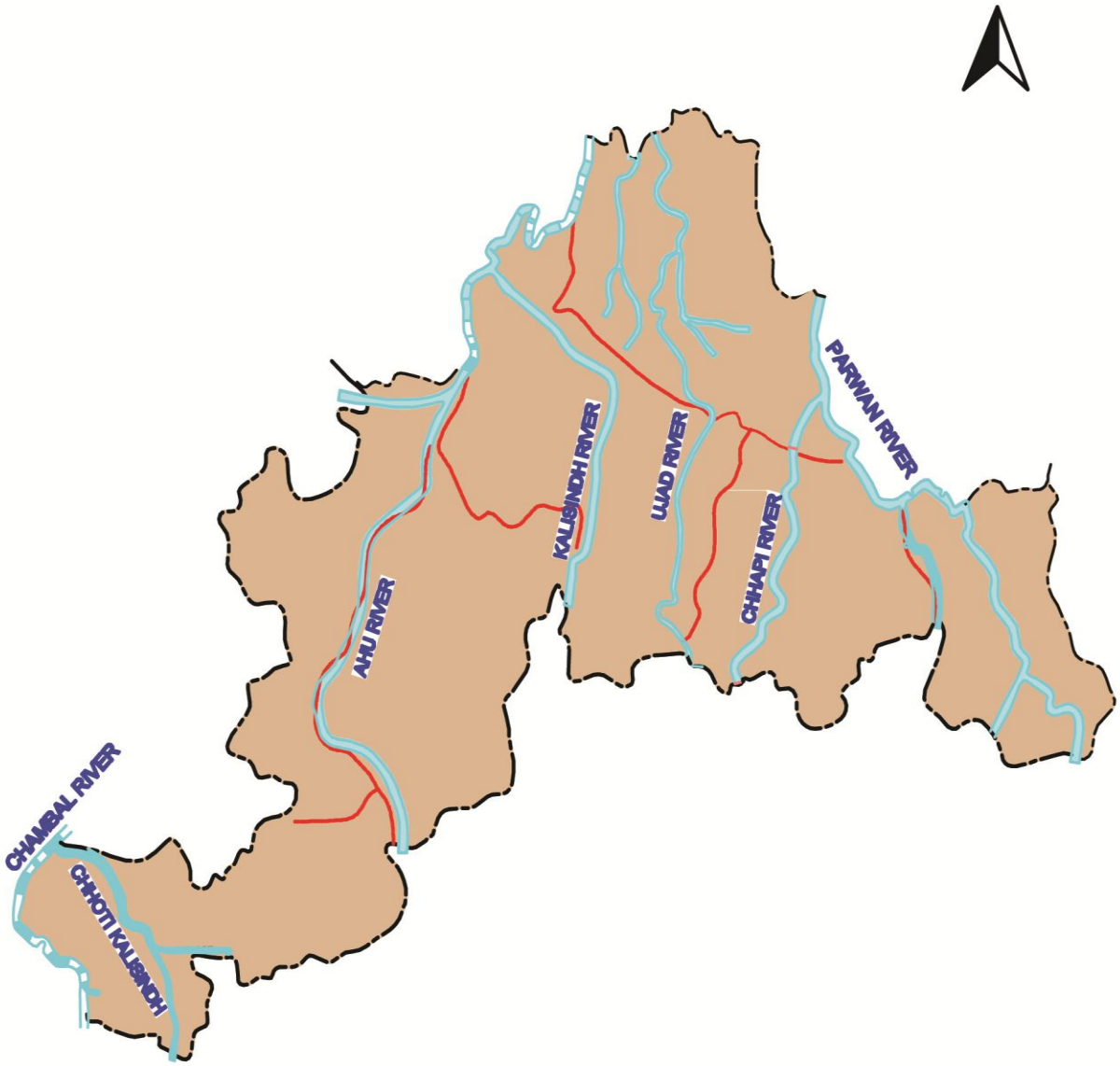

INDEX

Drainage System (River)

Scale

1:1,000,000

Km 10 5 0 10 20 Km

Fig No.2

अमेरिकन विद्वान बेनेट के अनुसार ''मिट्टी पृथ्वी के धरातल पर पायी जाने वाली वह कठोर असंगठित पर्त है, जिसका निर्माण मुख्य रूप से चट्टानों तथा खनिज पदार्थों के सम्मिश्रण से हुआ है। मिट्टी निर्माण में भौतिक एवं रासायनिक शक्तियाँ चट्टान क्षरण के द्वारा पदार्थ का निर्माण करती है।''

कृषि क्रिया के अन्तर्गत मृदा का सर्वाधिक महत्व होता है। पौधें को अपना जीवन चक्र पूरा करने के लिए सर्वप्रथम एक स्वस्थ मृदा की आवश्यकता होती है। धरती की ऊपरी सतह जिसे मृदा या मिट्टी कहा जाता है। उसमें सभी प्रकार के पौधों और जीवों का अस्तित्व किसी न किसी रूप में जुड़ा होता है। धरती की ऊपरी सतह मृदा से पौधें आवश्यक पोषण तत्वों को ग्रहण करते है। अतः कहा जा सकता है कि मृदा का महत्व सभी पेड़ पौधों की वृद्धि एवं विकास के लिए बहुत आवश्यक है।

प्रस्तुत अध्ययन क्षेत्र झालावाड़ जिले की मिट्टियों को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि सम्पूर्ण जिले के अधिकतर भाग में काली मिट्टी की प्रधानता मिलती है। जिले में मुख्यतया काली मिट्टी 287099 हैक्टेयर क्षेत्र में पंचायत समिति खानपुर, बकानी एवं पिड़ावा में प्रमुख रूप से पाई जाती है। दोमट मध्यम काली मिट्टी 117115 हैक्टेयर क्षेत्र में पंचायत समिति डग एवं मनोहरथाना क्षेत्र में 28115 हैक्टेयर क्षेत्र में पाई जाती है।

जिले की मिट्टियों को मुख्य रूप से तीन भागों में बांटा है –

1. गहरी काली मिट्टी
2. मध्यम काली मिट्टी
3. छिछली (हल्की) काली मिट्टी

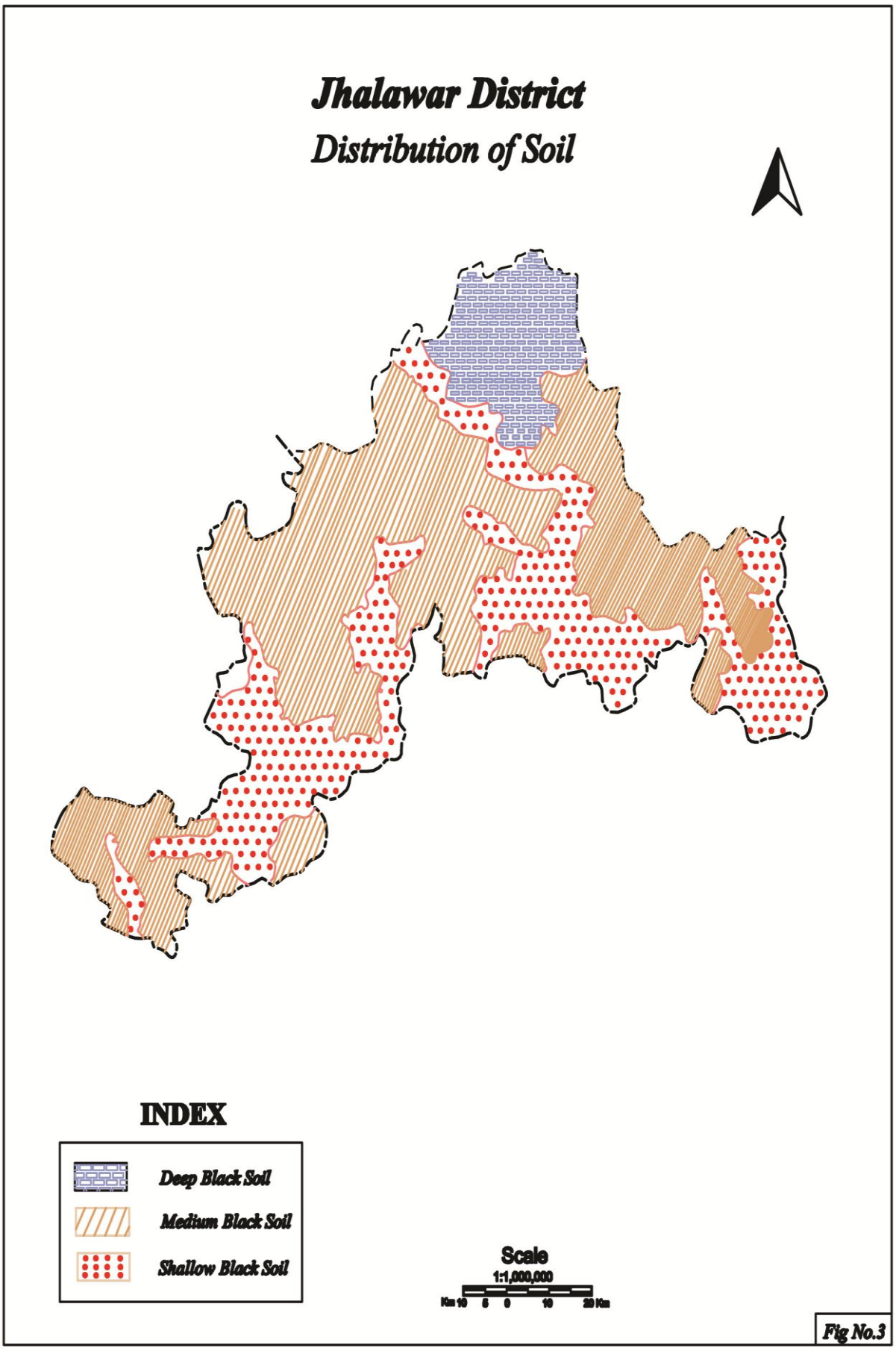
Jhalawar District
Distribution of Soil
INDEX
Deep Black Soil
Medium Black Soil
Shallow Black Soil
Scale
1:1,000,000
Km 10 5 0 10 20 Km
Fig No.3

1. गहरी काली मिट्टी –

यह कृषि कार्य के लिए उत्तम प्रकार की मिट्टी है इसमें जलग्रहण क्षमता भी अच्छी होती है। जिले में उपलब्ध उपजाऊ काली मिट्टी पर खरीफ फसल हेतु कपास, ज्वार, सोयाबीन, मक्का, मूंगफली आदि तथा रबी फसल में गेहूँ, धनियाँ, सरसों, चना एवं अफीम की खेती के लिए उपजाऊ है। जिले में गहरी काली मिट्टी का फैलाव खानपुर तहसील में अधिक पाया जाता है।

2. मध्यम काली मिट्टी –

यह मिट्टी फलों की खेती के लिए उपयुक्त है। संतरा उत्पादन के लिए यह मृदा बहुत ही लाभकारी है। अनुकूल मृदा के जमाव के कारण ही पिछले कुछ वर्षों से यह जिला संतरा उत्पादन में अच्छी प्रगति कर रहा है। इसमें जल ग्रहण क्षमता सामान्यतः औसत रूप से कम पाई जाती है। इस प्रकार की मिट्टी का फैलाव जिले के अधिकांश भाग में है, प्रमुख रूप से यह पचपहाड़ तहसील, गंगधार का अधिकांश भाग, झालरापाटन, पिडावा तथा अकलेरा में प्रमुख रूप से फैली हुई है।

3. छिछली (हल्की) काली मिट्टी –

यह मिट्टी अपेक्षाकृत कम उपजाऊ वाली है। इसमें जलग्रहण क्षमता की कमी पाई जाती है। यह मिट्टी मोटे अनाज उत्पादन के लिए उत्तम प्रकार की है। यह मिट्टी जिले में मनोहरथाना, अकलेरा एवं झालरापाटन का कुछ हिस्सा तथा पिड़ावा एवं पचपहाड़ तहसील में फैली हुई है।

जिले की मिट्टियों का अध्ययन करने से पता चलता है कि यहाँ की मिट्टियाँ कृषि कार्य करने के लिए उपयुक्त है साथ ही यहाँ कि भूमि सन्तरा उत्पादन के लिए भी विशेष महत्वपूर्ण है।

वन सम्पदा –

राजस्थान प्रदेश का सबसे आर्द्र एवं पर्याप्त वर्षा के कारण झालावाड़ जिले में वन सम्पदा की प्रचुरता पाई जाती है। यह जिला 6219 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैला हुआ है। इसमें से 1313.99 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र वन विभाग (वन सम्पदा) के अधीन है। जो कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का 21.12 प्रतिशत है। किन्तु जैसा कि सन् 1952 की राष्ट्रीय नीति के अनुसार

भौगोलिक क्षेत्रफल के 33 प्रतिशत पर वनों का होना आवश्यक है, झालावाड़ में वनों का विस्तार करना आवश्यक है। जिले की वन भूमि में कई प्रकार की वन सम्पदाऐं पाई जाती है। जिनमें कुल्दी, धोंकड़ा, शीशमख खेंजड़ा, चंदन, खैर, सागवान, बम्बूल, सालर वन आदि प्रमुख रूप से पाये जाते है।

जिले में वन सम्पदा को सुरक्षित रखने हेतु वन विभाग प्रशासन द्वारा जिले में कई कार्यक्रम चलाये जा रहे है। प्रशासनिक दृष्टि से जिले की वन सम्पदा (किस्मों) को तीन भागों में बांटा गया है जिसे निम्न सारणी द्वारा प्रकट किया गया है।

सारणी संख्या 2.1 : झालावाड़ जिले में वनों का वितरण (2016 के अनुसार)

कस	रेंज	आरक्षित	संरक्षित	अवर्गीकृत	कुल योग
1	झालावाड़	9689.52	339.05	59.87	10088.44
2	असनावर	0.00	12387.8	4.40	12392.2
3	बकानी	0.00	14853.76	7.41	14861.17
4	अकलेरा	0.00	10289.07	234.61	10523.68
5	मनोहरथाना	0.00	13626.08	212.51	13838.59
6	खानपुर	563.79	28429.72	0.00	28993.51
7	पिडावा	5801.39	848.86	0.00	6650.25
8	डग	9058.9	8625.96	62.89	17747.75
	कुल योग	25113.6	89400.3	581.69	115095.59

स्त्रोत : कार्यालय जिला वन मण्डल अधिकारी, झालावाड़

सन् 2016 के अनुसार जिले में अधिकांश संरक्षित प्रकार के वन है जो 89400.3 हैक्टेयर क्षेत्र में पाये जाते है। इसके बाद 25113.6 हैक्टेयर पर आरक्षित तथा 581.89 हैक्टेयर पर अवर्गीकृत प्रकार के वन विस्तृत है।

झालावाड़ जिले में वनों का वितरण (2016 के अनुसार)

आरेख–2.1

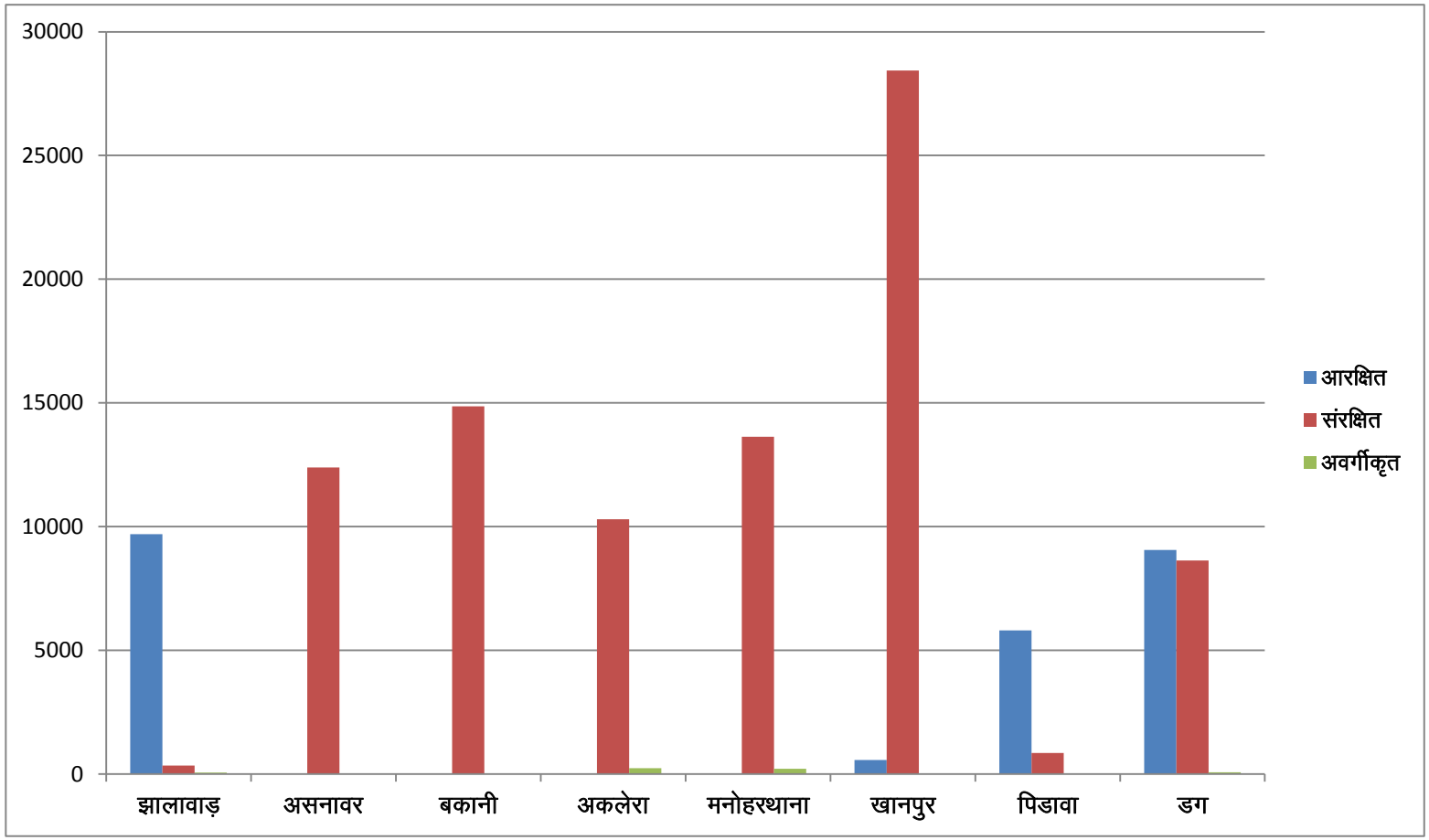

जलवायु –

कोई भी क्षेत्र अपनी जलवायुयिक विशेषताओं के कारण प्रदेश में अपना विशिष्ठ स्थान रखता है। किसी भी प्रदेश में विभिन्न प्रकार की जलवायु दशाएँ पाई जाती है जैसे शुष्क, अर्द्धशुष्क आर्द्र, उपआर्द्र तथा अति आर्द्र क्षेत्र मिलते है। प्रस्तुत अध्ययन की दृष्टि से झालावाड़ को ऋतु के आधार पर तीन भागों में बांट सकते है।

शीत ऋतु – यह मौसम जिले में दिसम्बर से फरवरी माह तक रहता है, इसमें अपेक्षाकृत अधिकतम तापमान 250 सेन्टीग्रेट रहता है।

ग्रीष्म ऋतु – यह मौसम मार्च से मध्य जून तक रहता है। इस ऋतु का अधिकतम तापमान 430–490सेन्टीग्रेट तक रहता है।

वर्षा ऋतु – जिले में मुख्य मानसून मध्य जून से प्रारम्भ होकर जुलाई तक तथा मध्य मानसून अगस्त से सितम्बर तक चलता है।

तापमान–

यह जिला कर्क रेखा के समीपस्थ होने के कारण यहाँ का तापक्रम वर्ष भर ऊँचा रहता है। वार्षिक औसत तापक्रम 270 सेन्टीग्रेड रहता है। ग्रीष्म ऋतु अधिक गर्म तथा शीत ऋतु कम ठण्डी होती है। दैनिक तथा वार्षिक तापक्रम अधिक नहीं रहता है। मई का महीना सबसे गर्म होता है जिसमें उच्चतम तापमान 430–490 सेन्टीग्रेड तथा न्यूनतम तापक्रम 260 सेन्टीग्रेड रहता है। इस महीने का मध्यमान तापमान 340डिग्री सेन्टीग्रेड तथा दैनिक तापन्तर 160 सेल्सियस रहता है। जनवरी का महीना सर्वाधिक ठण्डा रहता है। जिसमें उच्चतम तापमान 250 सेन्टीग्रेड तथा न्यूनतम तापमान 70 सेन्टीग्रेड रहता है। मध्यमान तापमान 160 सेल्सियस तथा दैनिक तापन्तर 180 सेल्सियस रहता है।

वर्षा –

राजस्थान के अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में झालावाड़ जिले का प्रमुख स्थान है। जिले में वर्षा बहुदा जून माह के मध्य से प्रारम्भ होकर सितम्बर माह में समाप्त हो जाती है। यहाँ की

सामान्यतः औसत वर्षा 952 मिली मीटर वार्षिक है। अक्टूबर से दिसम्बर तक लौटते हुए मानसून से कुल वर्षा की 5 प्रतिशत वर्षा हो जाती है।

राजस्थान में बांसवाड़ा जिले के उपरान्त झालावाड़ ही एक ऐसा जिला है जहाँ वर्षा की पर्याप्तता से वर्ष में 2 बार मक्का की फसलें पैदा की जाती है। निम्न सारणी में तहसीलानुसार वर्षा का वितरण दर्शाया गया है।

सारणी संख्या 2.2 :

झालावाड़ जिले में 10 वर्षीय वर्षा का वितरण

क.स.	वर्ष	सामान्य वर्षा	वास्तविक वर्षा	वृद्धि/कमी	कुल योग
1	2006	88.31	135.96	(+) 47.65	224.27
2	2007	84.18	70.21	(-) 13.97	154.39
3	2008	84.35	72.07	(-) 12.28	156.42
4	2009	83.40	88.05	(-) 4.65	171.45
5	2010	85.50	78.65	(-) 6.85	164.15
6	2011	81.89	123.07	(+) 41.17	204.96
7	2012	84.65	76.04	(-) 8.61	160.69
8	2013	91.95	147.76	(+) 55.82	239.71
9	2014	91.97	90.97	(-) 1.00	182.94
10	2015	97.05	118.36	(+) 21.31	215.41
	कुल योग	873.25	1001.14		1874.39

स्त्रोत : कार्यालय अधिशाषी अभियन्ता, सिंचाई खण्ड, झालावाड

झालावाड़ जिले में 10 वर्षीय वर्षा का वितरण

आरेख संख्या–2.2

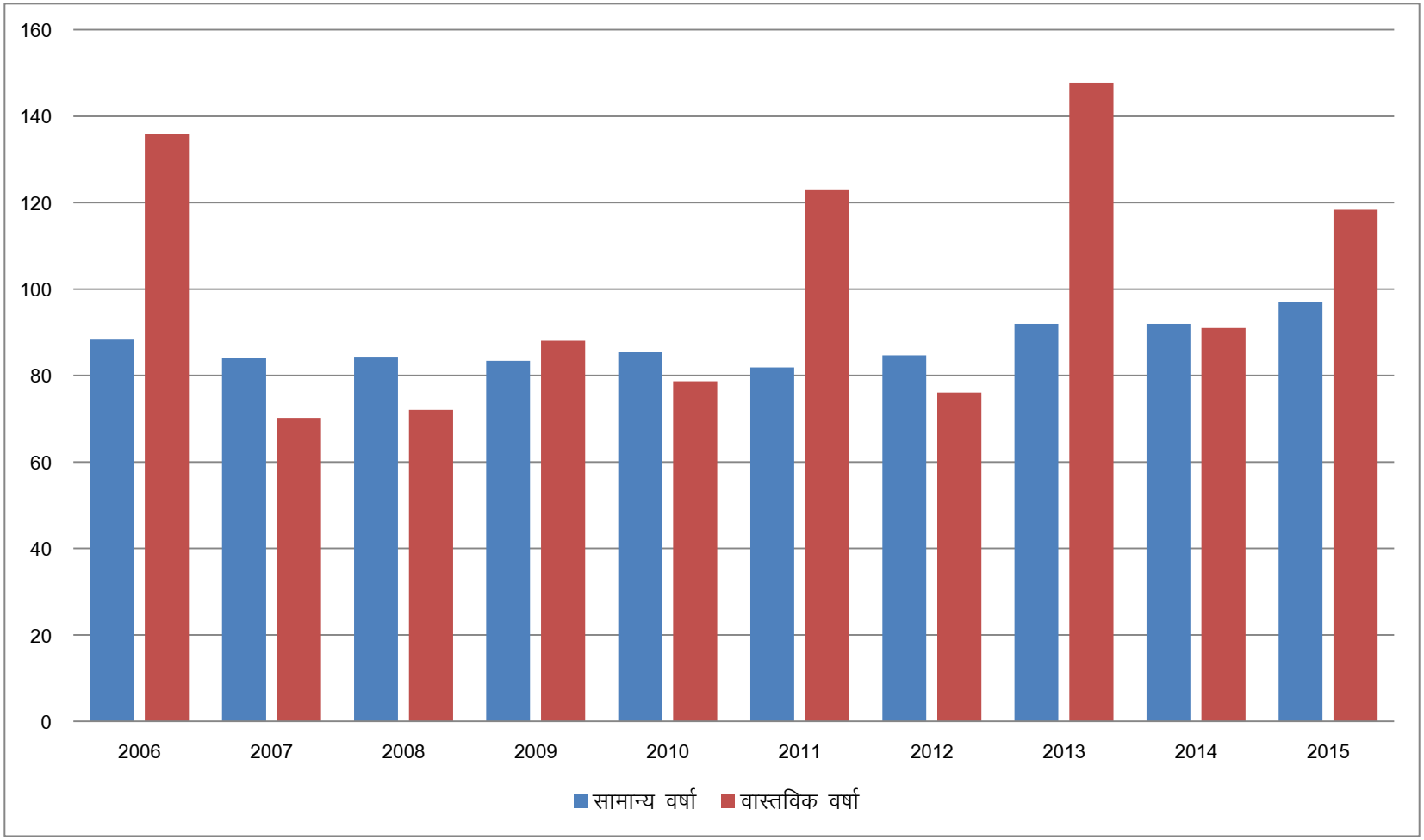

रेल, सड़क, परिवहन एवं संचार –

जिले में परिवहन के साधनों का अत्यधिक महत्व है। इनमें रेल, एवं सड़क यातायात प्रमुख है।

रेल यातायात –

जिले से पश्चिमी रेल्वे की दिल्ली–मुम्बई बान्द्रा विद्युतीकरण दोहरी रेलवे लाइन गुजरती है। जिसकी लम्बाई जिले में कुल 30 किलोमीटर है। जिला मुख्यालय झालावाड़ रेल्वे लाइन से जुड़ गया है। रामगंजमण्डी–भौपाल रेल मार्ग बनने के बाद यह जिला मुख्यालय भी रेल्वे लाइन से जुड़ गया है और आगे झालावाड़ से भोपाल लाइन जुड़ने की प्रक्रिया क्रियाशील है। इस रेलवे लाइन का सर्वेक्षण पूर्ण हो गया है। चिन्हीकरण के पश्चात् परिग्रहित भूमि का मुआवजा वितरण किया जा रहा है।

दिल्ली–मुम्बई ब्राडगेज लाइन पर जिले में चार रेल्वे स्टेशन निम्नानुसार जिला मुख्यालय से निम्न दूरी पर स्थित है।

सारणी संख्या 2.3 :

जिला मुख्यालय व अन्य रेल्वे स्टेशन की दूरी (किमी.)

क्र.सं.	रेल्वे स्टेशन का नाम	मुख्यालय से दूरी (कि.मी)
1	झालावाड सिटी	3
2	झालावाड रोड़	29
3	धुंआखेडी	35
4	भवानीमण्डी	45
5	पचपहाड़	52
6	चौमेहला	109

सड़क परिवहन –

परिवहन में सड़क परिवहन का जिले में मुख्य स्थान है। जिले में राष्ट्रीय राजमार्ग संख्या–12, जयपुर–जबलपुर जिला मुख्यालय से होकर गुजरता है। जिसके माध्यम से जिला मुख्यालय सभी प्रमुख नगरों, महानगरों, दिल्ली, जयपुर, कोटा, भोपाल, जबलपुर, ग्वालियर, झांसी से संयोजित है। जयपुर–इन्दौर राजमार्ग संख्या 19 भी इस जिले से होकर गुजरता है जो उज्जैन, इन्दौर, अहमदाबाद, मुम्बई एवं दक्षिण मध्यप्रदेश को जोड़ता है। झालावाड़ जिले में कुल 252 पंचायत मुख्यालयों में से 231 पंचायत मुख्यालय डामर सड़क से जुड़े हैं। झालावाड़ जिले में 1427 किलोमीटर डामर सड़कें हैं।

सारणी संख्या 2.4

सड़क मार्ग एवं सड़कों की लम्बाई

क्रस	सड़क मार्ग	इकाई (कि.मी.)
1	राष्ट्रीय उच्च मार्ग	98.60
2	राज्य उच्च मार्ग	197.40
3	जिला सड़के	152.90
4	अन्य सड़के	264.10
5	ग्रामीण सड़के	714.00

जनसंख्या का घनत्व एवं वितरण किसी भी क्षेत्र की कृषि प्रक्रिया को विशेष रूप से प्रभावित करता है। किसी भी क्षेत्र का जनसंख्या घनत्व अगर कम होगा तो वहाँ विस्तृत कृषि पद्दति अपनायी जाती है तथा अगर क्षेत्र की जनसंख्या अधिक है तो वहाँ कृषि कार्य सिमित एवं गहन कृषि पद्दति द्वारा किया जायेगा।

Jhalawar District

Transport

INDEX

	RAILWAY LINE
	ROAD

Scale
1:1,000,000
Km 10 5 0 10 20 Km

Fig No.4

जनसंख्या वृद्धि –

सन् 1931 में जिले की जनसंख्या 330140 थी जो 1951 में बढ़कर 405036 हो गई जो 1961 में बढ़कर 491872 तथा 1981 में बढ़कर 784998 पहुँच गई। 2011 की जनगणना प्रतिवेदन के आधार पर जिले की कुल जनसंख्या 1411129 है। जो पिछले 25 सालों में जिले की जनसंख्या की दुगनी हो गई। इसे सारणी एवं ग्राफ द्वारा भी स्पष्ट किया गया है। तहसीलों के आधार पर सबसे अधिक जनसंख्या वृद्धि दर झालरापाटन में 30.50 प्रतिशत देखने को मिलती है। सबसे कम जनसंख्या का प्रतिशत पिड़ावा तहसील में 16.58 रहा है।

सारणी संख्या 2.5 : झालावाड़ जिले में जनसंख्या वृद्धि (प्रतिशत में)

क्रस	वर्ष	पुरूष	स्त्री	योग	प्रतिशत वृद्धि
1	1931	171990	158150	330140	10.19
2	1941	194269	180327	374596	13.47
3	1951	207273	197763	405036	8.13
4	1961	255140	236735	491875	21.44
5	1971	324966	298797	623763	26.81
6	1981	407522	377476	784998	25.85
7	1991	498934	458037	956971	21.91
8	2001	612804	567519	1180323	23.34
9	2011	725143	685986	1411129	19.55
	कुल योग	**3398041**	**3160790**	**6558831**	**170.69**

स्त्रोत – जिला सांख्यिकी रूपरेखा 2016 झालावाड

झालावाड़ जिले में जनसंख्या वृद्धि (प्रतिशत में)
आरेख संख्या–2.3

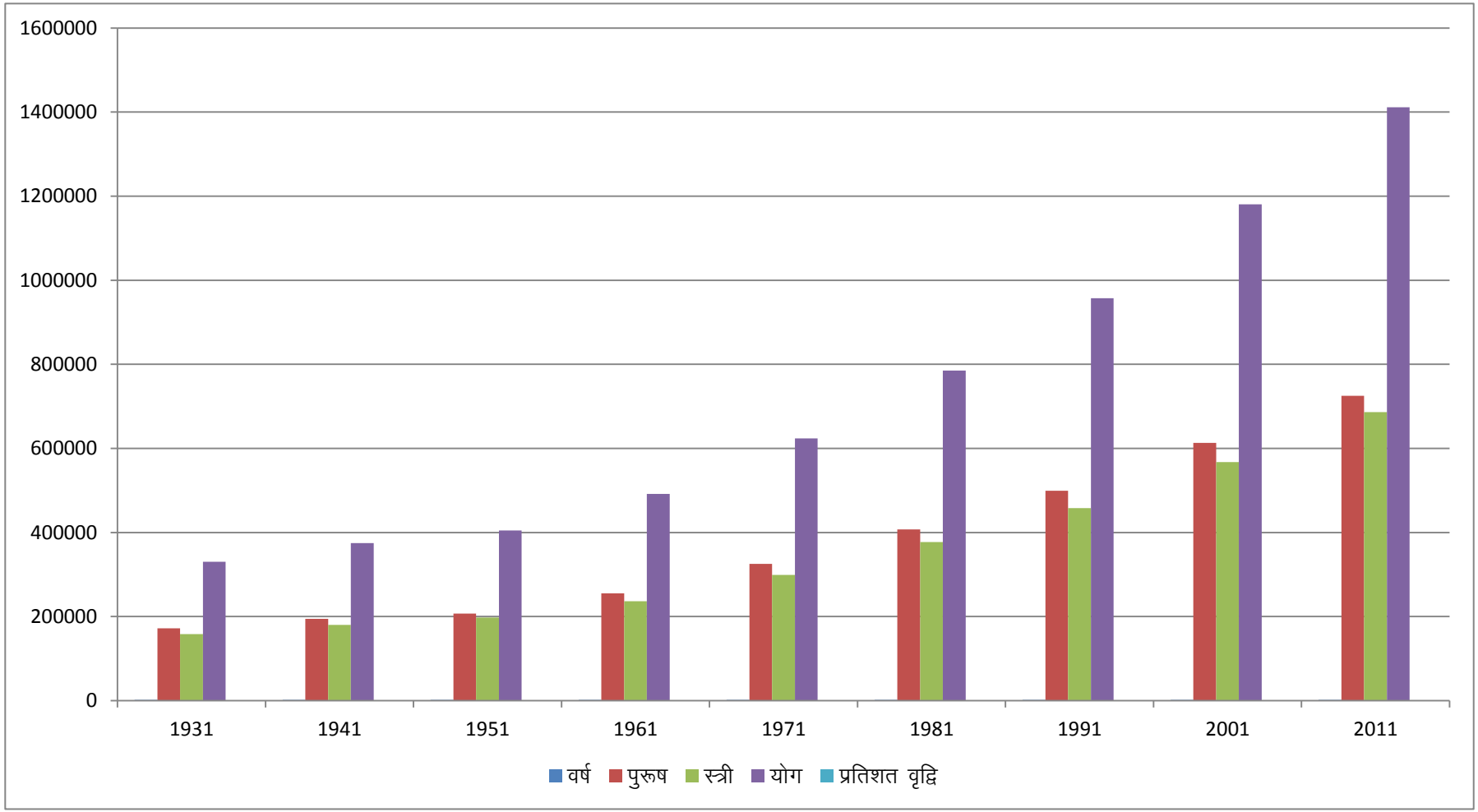

जनसंख्या घनत्व एवं वितरण –

सम्पूर्ण जिले की जनसंख्या वितरण का अवलोकन करें तो यह जिला जनसंख्या की दृष्टि से मध्यम घनत्व वाला जिला है जिले में 2011 की जनगणना के अनुसार 227 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर की दृष्टि से निवास करती हैं।

सारणी संख्या 2.6

जिले में तहसीलवार जनसंख्या घनत्व

क्रस	तहसील	जनसंख्या	जनसंख्या घनत्व
1	खानपुर	173193	182
2	झालरापाटन	356707	278
3	अकलेरा	77571	226
4	मनोहरथाना	143075	226
5	पचपहाड	179418	252
6	पिड़ावा	212679	274
7	गंगधार	167486	183

स्त्रोत – जिला सांख्यिकी रूपरेखा 2016 झालावाड

जिले का 2011 की जनगणना प्रतिवेदन के अनुसार झालावाड़ जिले की कुल जनसंख्या 141129 है जो पूरे राजस्थान की जनसंख्या 2.06 प्रतिशत है। इस संभाग में सर्वाधिक जनसंख्या घनत्व वाली तहसील झालरापाटन है जिसमें 278 प्रति वर्ग किलोमीटर निवास करती है। दूसरी अधिक जनसंख्या घनत्व वपाली तहसील पचपहाड़ है। जिसमें जनसंख्या घनत्व 252 प्रति वर्ग किलोमीटर निवास करते हैं। संभाग की सबसे कम घनत्व वाली तहसील खानपुर है जहाँ जनसंख्या घनत्व 182 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है।

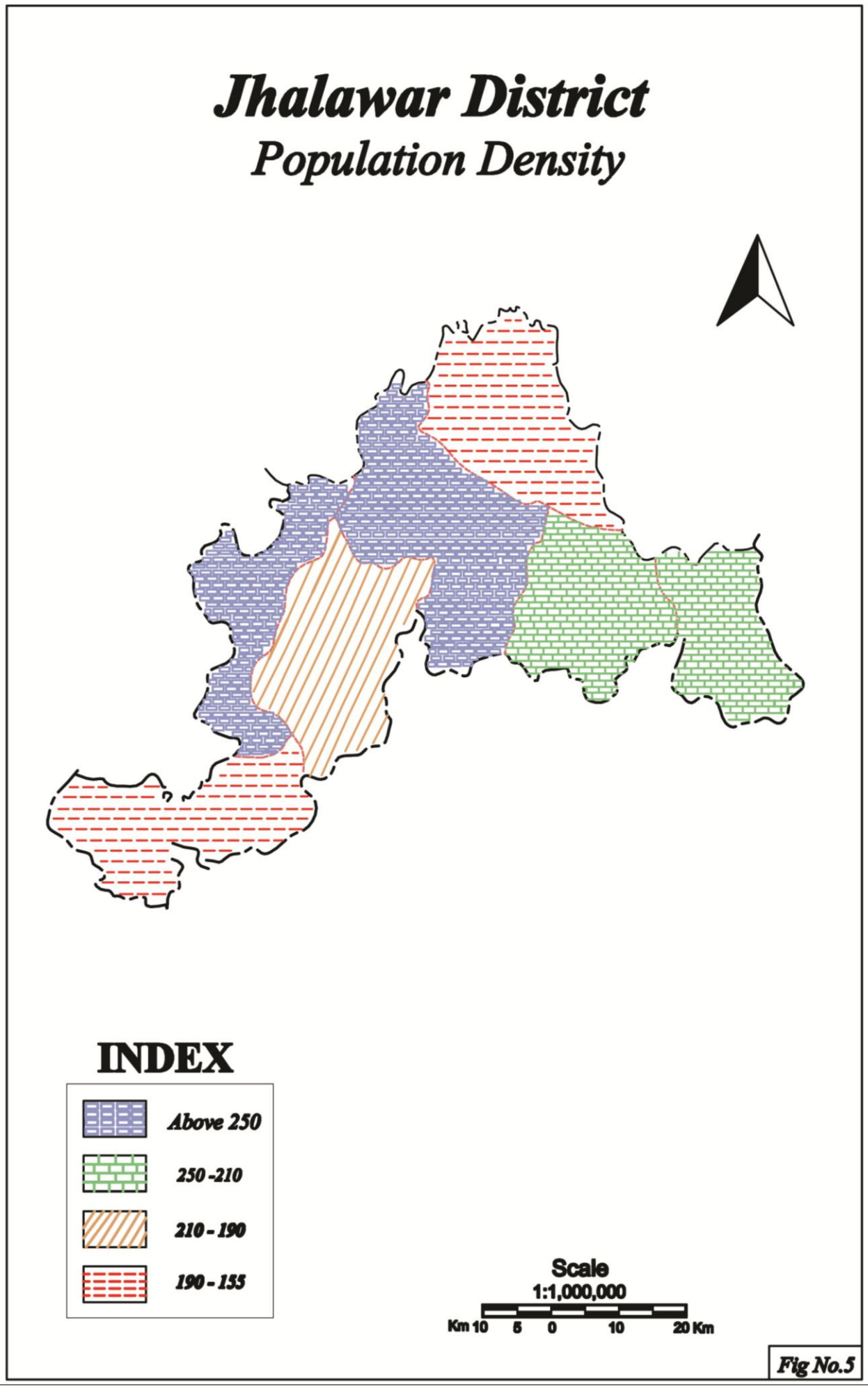
Jhalawar District
Population Density
INDEX
Above 250
250 -210
210 - 190
190 - 155
Scale
1:1,000,000
Km 10 5 0 10 20 Km
Fig No.5

Jhalawar District
Distribution of Population

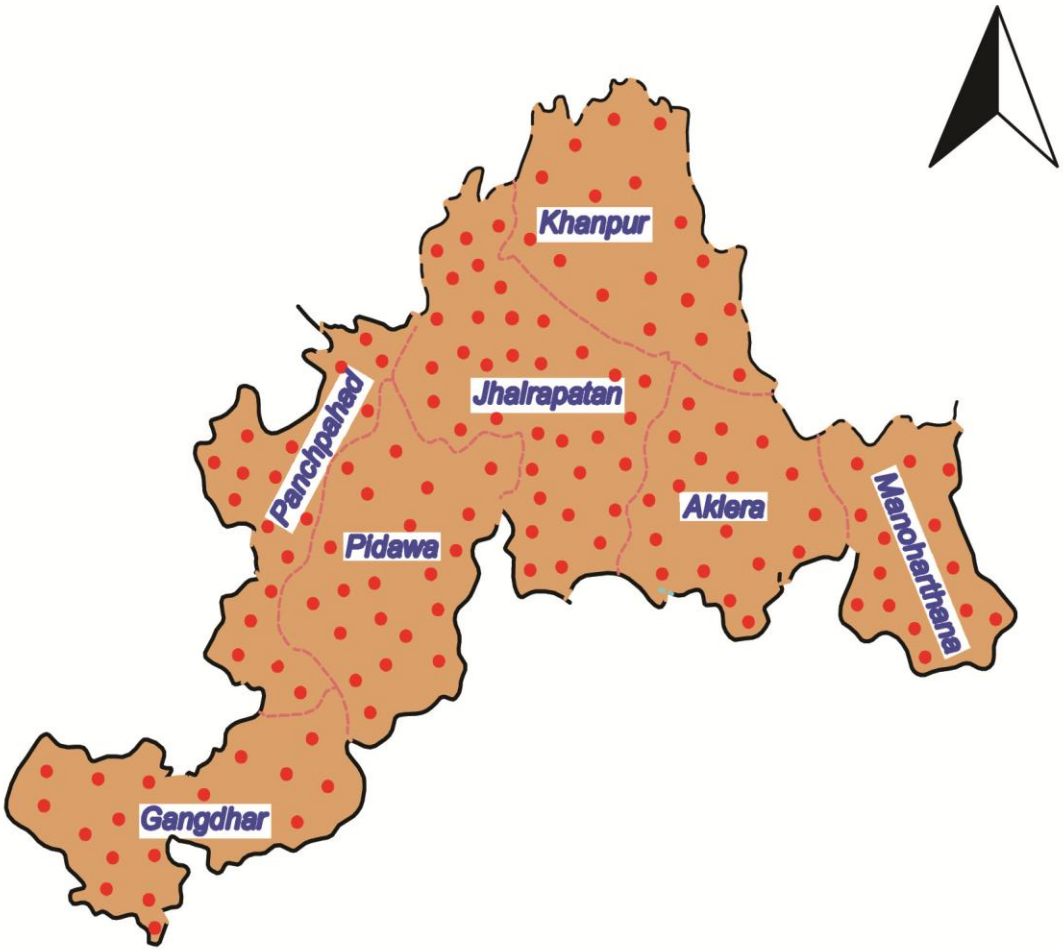

INDEX

Each Dot represent 10,000 person

Scale
1:1,000,000
Km 10 5 0 10 20 Km

Fig No.6

लिंगानुपात–

झालावाड़ जिले में स्त्री–पुरूष लिंगानुपात को देखा जाए तो यहाँ तो यहाँ 2011 की जनगणना के अनुसार प्रति 1000 पुरूषों पर 946 महिलाऐं हैं जो कि राजस्थान के औसत लिंगानुपात 928 से अधिक है। जिले में सर्वाधिक लिंगानुपात मनोहरथाना एवं पिड़ावा तहसील में 954 तथा 953 है। जिले में सबसे कम लिंगानुपात खानपुर तहसील में 925 महिलाऐं प्रति हजार पुरूष पर है।

सारणी संख्या 2.7

जिले में तहसीलवार लिंगानुपात (2011)

क्रस	तहसील	जनसंख्या	लिंगानुपात
1	खानपुर	173193	925
2	झालरापाटन	356707	943
3	अकलेरा	77571	940
4	मनोहरथाना	143075	954
5	पचपहाड	179418	954
6	पिड़ावा	212679	953
7	गंगधार	167486	958

स्त्रोत – जिला सांख्यिकी रूपरेखा 2016 झालावाड

जिले के ग्रामीण एवं नगरीय स्त्री–पुरूष लिंगानुपात को देखा जाए तो यहाँ का ग्रामीण लिंगानुपात 949 व नगरीय लिंगानुपात 933 है।

साक्षरता –

साक्षरता की दृष्टि से जिले में देखा जाए तो यह जिला अच्छी प्रगति कर रहा है। पिछले एक दशक में साक्षरता में वृद्धि हुई है। जिले की कुल जनसंख्या साक्षरता प्रतिशत 61.50 है। इसमें पुरूष साक्षरता प्रतिशत 75.75 तथा महिलाऐं 46.53 प्रतिशत साक्षर हैं।

जिले में तहसीलवार पुरूष एवं महिला साक्षरता प्रतिशत देखा जाए तो सबसे अधिक पुरूष एवं महिला साक्षरता प्रतिशत 85 प्रतिशत व 54 प्रतिशत दोनों का ही खानपुर तहसील में सबसे अधिक है। सबसे कम साक्षरता का प्रतिशत अकलेरा तहसील में देखने को मिलता है। यहाँ पुरूष साक्षरता 63 प्रतिशत एवं महिला साक्षरता 33 प्रतिशत देखने को मिलता है।

सारणी संख्या 2.8

झालावाड़ जिले में तहसीलवार पुरूष व महिला साक्षरता (%में)

क्रस	तहसील	पुरूष	महिला	औसत
1	खानपुर	85	54	70%
2	झालरापाटन	80	53	67%
3	अकलेरा	63	33	49%
4	मनोहरथाना	64	35	50%
5	पचपहाड	67.67	42.17	64.53%
6	पिड़ावा	79	48	64%
7	गंगधार	68	40	54%

स्त्रोत – जिला सांख्यिकी रूपरेखा 2016 झालावाड

तहसीलवार जिले की औसत साक्षरता प्रतिशत देखा जाए तो खानपुर तहसील की सबसे अधिक 70 प्रतिशत तथा सबसे कम औसत साक्षरता 49 प्रतिशत अकलेरा तहसील में मिलती है।

व्यावसायिक संरचना –

जिले की व्यावसायिक रंचना की ओर देखा जाए तो यहाँ कि अधिकांश जनसंख्या कृषि कार्य में कार्यरत हैं। जिले का अधिकतर क्षेत्र ग्रामीण होने के कारण यहाँ कृषि कार्य प्रमुख रूप से किया जाता है।

सारणी संख्या 2.9

जिले में तहसीलवार कार्यरत जनसंख्या

क्रस	तहसील	कृषि कार्य करने वाले	खेती हर मजदूर	अन्य कार्य करने वाले
1	खानपुर	54805	46313	59851
2	झालरापाटन	42968	30293	15330
3	अकलेरा	49747	26337	12487
4	मनोहरथाना	52001	17382	7705
5	पचपहाड	32817	21514	21888
6	पिड़ावा	58058	38632	15572
7	गंगधार	38318	29301	14586

स्त्रोत – जिला सांख्यिकी रूपरेखा 2016 झालावाड

जिले में तहसीलवार कार्यरत जनसंख्या
आरेख संख्या–2.4

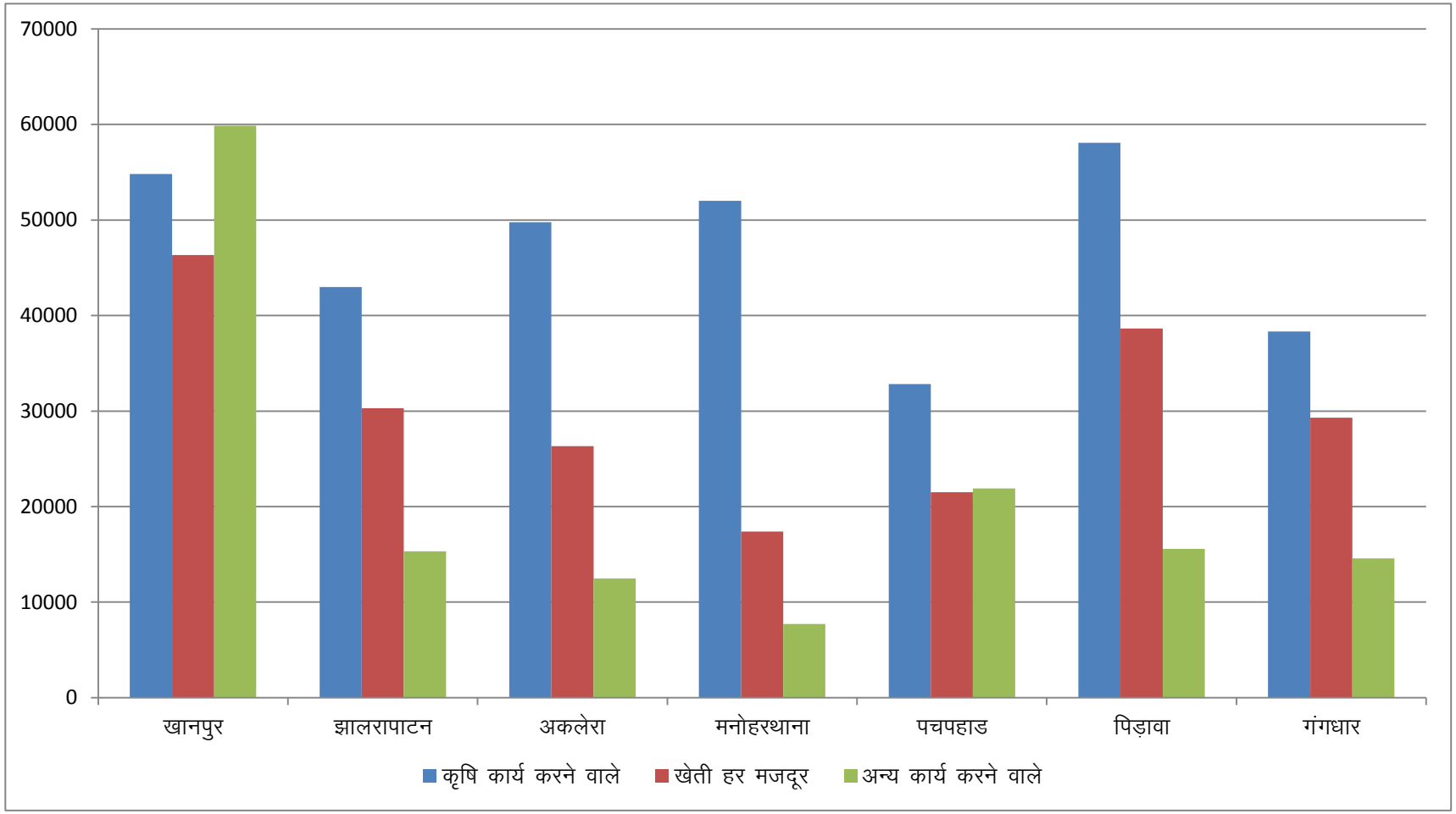

कला, संस्कृति एवं साहित्य –

झालावाड़ जिला सांस्कृतिक दृष्टि से हाड़ौती क्षेत्र में विशिष्ठ स्थान रखता है। इस जिले में संगीत, नृत्य और अन्य कलाओं की समृद्ध परम्पराए रही हैं जो आज भी निरन्तरता बनाए हुए हैं। विख्यात नृतक उदयशंकर भट्ट, ख्याती प्राप्त सितार वादक रवि शंकर, संगीतज्ञ सोहनसिंह, स्वर साधना के धनी नवल किशोर, पारम्परिक चित्र शैली के अनूठे कलाकार घासीराम और प्रेमचन्द आदि इस धरती की संस्कृति के वाहक रहे हैं। पूर्व झालावाड़ राज्य के नरेश भवानीसिंह के शासनकाल में यहाँ विभिन्न कलात्मक प्रवृत्तियों का विकास हुआ। उनके संरक्षण एवं नेतृत्व में नाट्यकला को आश्रय मिला ओर भवानी नाट्यशाला में अनेक ऐतिहासिक, सामाजिक और शास्त्रीय नाटकों का मंचन हुआ।

झालावाड़ संग्रहालय वर्तमान में गढ़ परिसर में स्थापित है। सैंकड़ों श्रृंखलाबद्ध चित्रों में इस क्षेत्र की समृद्ध चित्रकला का अतीत दिखाई देता है। मूर्तीकला में झालावाड़ का इतिहास सजीव हो उठता है। ऐसी विविधतपूर्ण कुशल कारीगरी कम देखने को मिलती है। जिले की लोक संस्कृति पर आधुनिकता का तुलनात्मक रूप से अभी तक बहुत कम प्रभाव पड़ा है। सामान्य रूप से लोगों का पहनावा, खानपान, रहन–सहन, सामाजिक, धार्मिक एवं पारिवारिक गतिविधियों में पारम्परिकता झलकती है। बिन्दौरी यहाँ का मुख्य लोक नृत्य है।

साहित्य क्षेत्र में भी झालावाड़ का गोरवपूर्ण अतीत रहा है। साहित्य समिति झालावाड़ राजस्थान हिन्दी साहित्य सिद्धान्त, झालरापाटन, भवानीमण्डी हिन्दी साहित्य समिति आदि संस्थानों ने साहित्यिक सृजन के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किया है।

मेले और त्यौहार –

जिले में सभी समुदायों द्वारा अपने पारम्परिक त्यौहार बड़े उत्साह के साथ मनाये जाते है। हिन्दुओं के मुख्य त्यौहार जन्माष्टमी, नवरात्री, शीतलाष्टमी, देव झूलनी, एकादशी, शिवरात्री, तेजादशमी, गणेश चतुर्थी, नाग पंचमी, श्रावणी तीज, गणगौर, होली, दीपावली आदि त्यौहारों के

अवसर पर आज भी झालावाड़ के निवासी परम्परागत रूप से सामाजिक, धार्मिक और पारिवारिक अनुष्ठान करते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी विभिन्न त्यौहारों का मूल स्वरूप अक्षुण्ण है।

जिले के विभिन्न क्षेत्रों में समय–समय पर अनेक मेलों का आयोजन होता है। जिले में अभी भी हाट बाजार परम्परा विद्यमान है। अलग–अलग क्षेत्रों में साप्ताहिक हाट बाजार लगते हैं जो किसी छोटे मेले की तरह ही होते हैं।

चन्द्रभागा कार्तिक पशु मेला –

यह जिले का सबसे बड़ा मेला है। कार्तिक पूर्णिमा के अवसर पर झालरापाटन नगर के समीप चन्द्रभागा नदी के किनारे इस मेले का आयोजन पशुपालन विभाग द्वारा किया जाता है। राज्य स्तरीय मेले को राष्ट्रीय स्तर का स्वरूप दिये जाने के प्रयास किये जा रहे हैं। मेले में विभिन्न प्रकार के राष्ट्रीय स्तर के कार्यक्रमों का आयोजन किया जाता है। मेले में हजारों की संख्या में विभिन्न प्रकार के पशुओं की खरीद–फरोख्त होती है और मेला मैदान में बड़ा बाजार लगता है। कार्तिक पूर्णिमा के दिन बड़ी संख्या में श्रृद्धालु पावन चन्द्रभागा नदी में स्नान करते हैं। विभागीय रूप से यह मेला 10–15 दिन का होता है लेकिन सर्दी का मौसम होने के कारण जिले में गर्म कपड़ों काबाजार व दुकानें व्यापार की मुख्य केन्द्र रहती हैं। जिनसे लगभग डेढ़ माह तक मेले की रौनक बनी रहती है।

अध्याय तृतीय

जिला झालावाड़ में व्यापारिक कृषि परिदृश्य

संतरे की कृषि :–

झालावाड जिले में संतरे की खेती व्यापक रूप से की जाती है राजस्थान के नागपुर नाम से प्रसिद्व झालावाड जिला राजस्थान का सर्वाधिक संतरे का उत्पादन करता है इसका प्रमुख कारण संतरे की कृषि के लिये जिले में उपलब्ध अनुकूलतम भोगोलिक दशाओं का होना है तथा कृषि से सम्बन्धित अन्य सभी सुविधायें यहां व्याप्त है। झालावाड जिला संतरे की उद्यानिकी की दृष्टि से बहुत अधिक सम्पन्न जिला है यहां पर आगे इसके भावी उद्यानिकी विकास की अत्यधिक सम्भावनायें विद्यमान है। यह राजस्थान का सुदूर दक्षिण में स्थित जिला है इस जिले का एवं यहां उत्पन्न होने वाले संतरे के विकास के लिये राज्य सरकार कृत संकल्प है इसलिये यह आवश्यक है कि यहां कि संतरे की उद्यानिकी के विभिन्न पहलुओं को लेकर क्षेत्रीय अध्ययन किया जाये और उन्ही अध्ययनों के माध्यम से भावी उद्यानिकी विकास के लिये योजनायें तैयार की जाये जिससे इन योजनाओं का लाभ उठाकर किसान संतरे की बागवानी करने के लिये प्रेरित हो सके।

संतरे की कृषि के लिये आवश्यक भोगोलिक दशायें :–

प्रकृति ने किसी भी फसल एवं फलोत्पादन के लिये जलवायु, भूमि, वर्षा तथा क्षेत्रानुसार वितरण निश्चित किया है तथा उत्पादन वही होता है जहां फसल विशेष को अनुकूलतम जलवायु, भूमि एवं वर्षा क्षेत्र मिलता है। वातावरण की अनुकूलता के कारण ही राजस्थान का सर्वाधिक संतरा का उत्पादन झालावाड जिले मे ही किया जाता है यहां की जलवायु संतरा उत्पादन के लिये उपयुक्त है।

संतरा उत्पादन के लिये निम्नलिखित भौगोलिक दशाओं का होना आवश्यक है।

– जलवायु

– भूमि (मिट्टी)

– प्रवर्धन

जलवायु :–

किसी भी फसल एवं पौधे की वृद्वि एवं विकास के लिये एक विशेष प्रकार की जलवायु की आवश्यकता होती है संतरे के उत्पादन के लिये गर्म, पाला रहित तथा नम जलवायु की आवश्यकता होती है। इसके लिये वर्षा 100 से 150 सेमी होना आवश्यक है तथा औसत तापमान 250 से 300 के बीच होना आवश्यक है। इस सीमा से अधिक व कम तापमान होने पर संतरे के उत्पादन में कमी आ जाती है। झालावाड जिले की जलवायु इसकी पैदावार के लिये उपयुक्त है, यहां की जलवायु सामान्यतः शुष्क रहती है।

मिट्टीयां :–

किसी भी पौधे को अपना जीवन चक्र पुरा करने के लिये सबसे पहले स्वस्थ मृदा की आवश्यकता होती है, पौध रोपण से पहले किसानो को अपनी मिट्टी की जांच करवाकर ही पौध रोपण का कार्य करना चाहिये। संतरा विभिन्न प्रकार की मिट्टीयों जैसे रेतीली या बलुई, भारी मटियार में सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। संतरा लगाने के लिये उपजाऊ दोमट मिट्टी का होना उपयुक्त रहता है, जल निकासी युक्त चिकनी मिट्टी इसकी खेती के लिये लाभकारी है। संतरे की खेती के लिये भूमि का चुनाव करते समय इस बात का विशेष घ्यान रखे कि भूमि खारी या क्षारीय नही होनी चाहिये इसके लिये किसान पौध रोपण से पहले भूमि के कुछ भाग का नजदीकी कृषि कार्यालय या कृषि विज्ञान केन्द्र में अपनी भूमि की जांच करवायें। उचित जांच के बाद ही किसान संतरे की बागवानी अपने खेत में करे।

प्रवर्धन :–

संतरा के फलों का प्रवर्धन बीज तथा वानस्पतिक दोनो ही तरीको द्वारा किया जाता है। संतरे के बीजो को धोने व सुखाने की कोई आवश्यकता नही होती इन्हे ताजा ही बोया जाता है बीज हमेशा स्वस्थ एवं पके हुये फलों से प्राप्त कर बीजो को फलों से निकालने के बाद उन्हे जल्द ही क्यारियों में बोना चाहिये बीजो को बोने के लिये जुलाई, अगस्त या फरवरी माह का समय उपयुक्त रहता है।

संतरा की किस्में :–

संतरे की विभिन्न प्रकार की किस्में पाई जाती है तथा अलग–अलग स्थानो पर अलग–अलग किस्मों का उत्पादन किया जाता है। झालावाड जिले में संतरे की किस्मों में मुख्यतः नागपुरी किस्म के संतरे का उत्पादन अधिक किया जाता है।

सामान्यतः जिले में संतरे की विभिन्न प्रकार की किस्मों में प्रमुखतया नागपुरी व किन्नों का उत्पादन अधिक होता है।

नागपुरी संतरा :–

नागपुरी संतरा मध्य भारत के साथ–साथ राजस्थान के झालावाड जिले में नागपुरी संतरे का उत्पादन अधिक किया जाता है। इसके फल मध्यम आकार के होते हैं छिलका चिकना तथा रस अच्छी गंध देने वाला होता है।

मौसम्बी :–

यह एक जल्दी पकने वाली किस्म है जिसके फल मध्य से बडे होते हैं फल पूर्ण पकने पर गहरे पीले रंग का हो जाता है इसमे रस की मात्रा 30–35 प्रतिशत होती है। फल का उत्पादन 85 से 100 क्विंटल प्रति हैक्टेयर होता है।

किन्नो :–

इसका फल गोल एवं चपटापन लिये हुये होता है इसमें रस की मात्रा 40–45 प्रतिशत तक होती है। फल के पकने का समय जनवरी माह मे होता है और पैदावार 125 किलो से 150 किलो प्रति पौधा होती है। पौधा 6 वर्ष की आयु के बाद उत्पादन देना प्रारम्भ करता है।

खाद एवं उर्वरक :–

पौध लगाने के बाद इसकी अच्छी बढवार के लिये नियमित रूप से निम्न मात्रा में खाद एवं उर्वरक पौध की आयु के अनुसार देना चाहिये। पौधे लगाने के बाद इनकी सही वृद्वि के लिये नियमित रूप से प्रतिवर्ष मांग अनुसार खाद एवं उर्वरकों का प्रयोग करना चाहिये पौधे लगाने के शुरू के 02 वर्षो तक मांग अनुसार उर्वरकों की मात्रा को वर्ष में दो बार जुलाई–अगस्त तथा फरवरी–मार्च में बराबर–बराबर मात्रा में देवे जिससे पौधे मे डाली गई उर्वरकों का सही उपयोग हो सके।

तालिका संख्या 3.1

खाद एवं उर्वरक मात्रा प्रति पौधा (किलोग्राम में)

खाद व उर्वरक	प्रथम वर्ष	द्वितीय वर्ष	तृतीय वर्ष	चतुर्थ वर्ष	पंचम वर्ष व बाद में	देने का समय
गोबर की खाद	15.00	30.00	45.00	60.00	75.00	दिसम्बर
सुपर फास्फेट	0.25	0.50	0.75	1.000	1.250	जनवरी
म्यूरेट आफ पोटाश	-	-	0.200	0.200	0.400	जनवरी
यूरिया	0.125	0.250	0.375	0.500	0.625	समय पर

सिंचाई :–

वर्षा के अभाव में खेतो को कृत्रिम ढंग से जल पिलाने की क्रिया को सिंचाई करना कहा जाता है। पौधे की वृद्वि एवं विकास में सिंचाई का महत्वपूर्ण योगदान होता है जिससे उत्पादन में वृद्वि होती है जिस प्रकार मानव को जल की एक निश्चित मात्रा की समय–समय पर आवश्यकता होती है उसी प्रकार किसी भी पौधे व फसल की वृद्वि के लिये भी सिंचाई आवश्यक साधन है। जल के अभाव में कोई भी पौधा अपनी वृद्वि नही कर पाता है, उसे समय–समय पर आवश्यकतानुसार पानी की आवश्यकता होती है। पौधों में फूल आते समय सिंचाई नही करे, सिंचाई करने से फूलों एवं फलों का गिरना बढ जाता है जिससे पैदावार में गिरावट आती है।

तालिका संख्या 3.2

झालावाड़ जिले में संतरा का क्षेत्रफल एवं उत्पादन

वर्ष 2005–06 से 2014–15 तक

क्र.स.	वर्ष	क्षेत्रफल (है. में)	उत्पादन (मेट्रिक टन में)
1	2005–06	6562	84518
2	2006–07	6777	835876
3	2007–08	11035	55897
4	2008–09	7560	151885
5	2009–10	10680	266372
6	2010–11	8971	197481
7	2011–12	9148	203521
8	2012–13	9828	210422
9	2013–14	10211	266509
10	2014–15	11148	258611

स्त्रोत – जिला सांख्यिकी रूपरेखा 2016 झालावाड

झालावाड़ जिले में संतरा का क्षेत्रफल एवं उत्पादन वर्ष 2005–06 से 2014–15 तक

आरेख संख्या 3.1

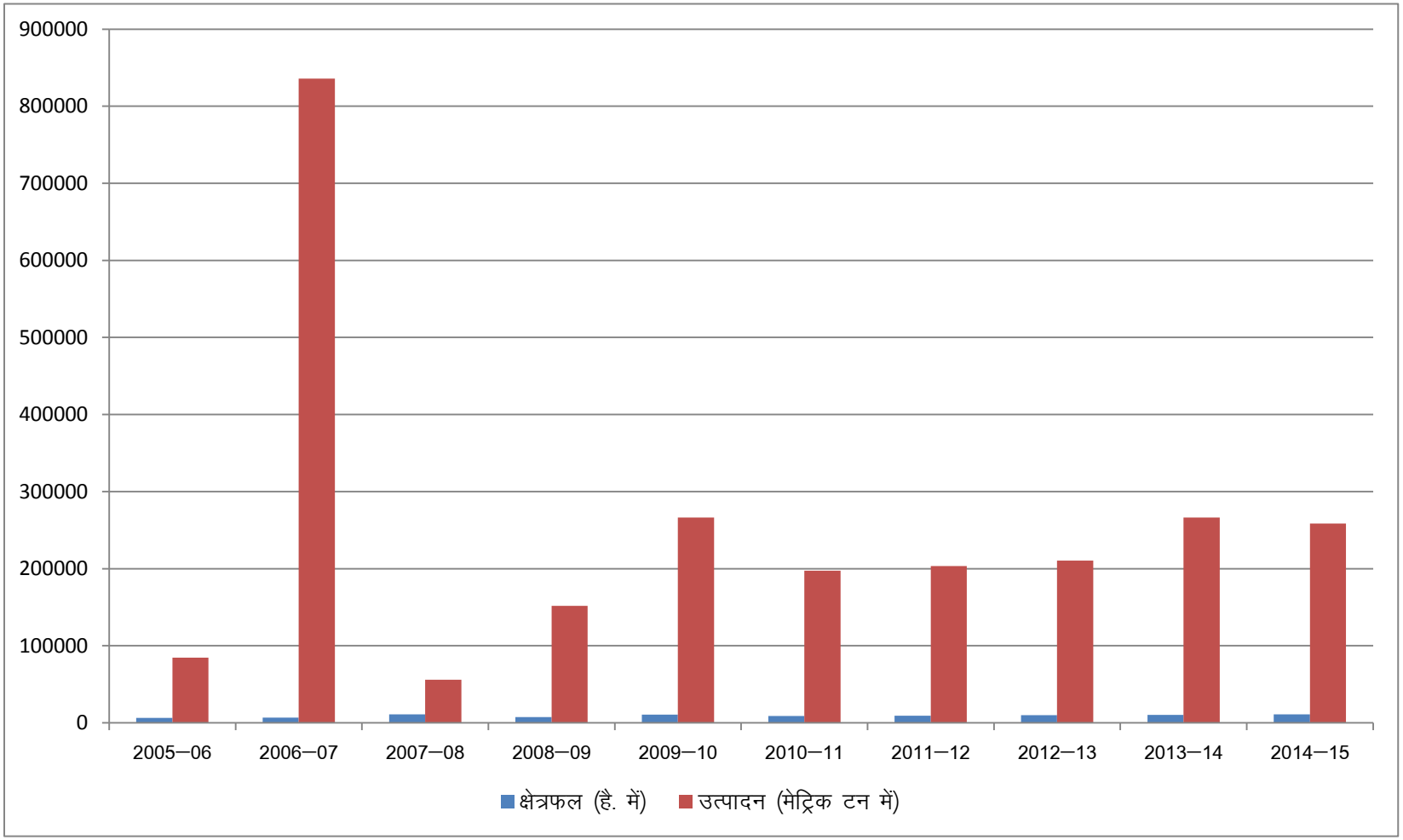

झालावाड जिला राजस्थान का सबसे अधिक संतरा का उत्पादन करता है पिछले कुछ वर्षो में इसके उत्पादन एवं क्षेत्रफल में वृद्वि देखने को मिलती है इसका प्रमुख कारण संतरा की कृषि के लिये जिले की अनुकूलतम जलवायु का होना है एवं सभी प्रकार की कृषि सुविधाओं का प्राप्त होना है। उपयुक्त तालिका से स्पष्ट है कि वर्ष 2005–06 में यहां 6562 हैक्टेयर पर इसकी बागवानी की गई जो 2006–07 में बढकर 6777 हैक्टेयर हो गई अतः इसके उत्पादन में जिले में इस वर्ष रिकार्ड उत्पादन हुआ जो कुल 10 वर्षो में सबसे अधिक रहा है जो 2005–06 में 84518 मेट्रिक टन था वो बढकर 835876 मेट्रिक टन हो गया है। वर्ष 2007–08 में 11035 हैक्टेयर पर इसकी बागवानी की गई तथा इस वर्ष उत्पादन में गिरावट आई तथा उत्पादन 55897 मेट्रिक टन ही हो पाया है। वर्ष 2008–09 में कुल 7560 हैक्टेयर पर इसकी कृषि की गई एवं 51885 मेट्रिक टन उत्पादन प्राप्त हुआ जो पिछले वर्ष की तुलना में कम रहा है।

वर्ष 2009–10 में इसका क्षेत्रफल बढकर 10680 हेक्टेयर हो गया तथा उत्पादन भी पिछले वर्ष की तुलना में अधिक हुआ है जो 66372 मेट्रिक टन रहा है। सन 2011–12 में जिले में कुल 9148 हैक्टेयर पर इसकी कृषि की गई तथा इसका उत्पादन 203521 मेट्रिक टन हुआ इसके उत्पादन में पिछले वर्ष की तुलना में वृद्वि हुई है इसका प्रमुख कारण समय पर सिंचाई की सुविधा एवं अनुकूलतम जलवायु का होना है। वर्ष 2012–13 में 9828 हेक्टेयर पर संतरे की कृषि की गई तथा इसका उत्पादन पिछले वर्ष की तुलना में 6901 मेट्रिक टन उत्पादन अधिक रहा है वर्ष 2013–14 में जिले में संतरे की कृषि का कार्य 10211 हेक्टेयर पर किया गया जो पिछले वर्ष की तुलना में क्षेत्रफल एवं उत्पादन में अधिक रहा है। इस वर्ष उत्पादन में वृद्वि देखने को मिलती है इस वर्ष 266509 मेट्रिक टन उत्पादन प्राप्त हुआ है। वर्ष 2014–15 में भी इसके क्षेत्रफल एवं उत्पादन में वृद्वि देखने को मिलती है इस वर्ष कुल फसलीय क्षेत्र पर 11148 हैक्टेयर पर इसकी बागवानी की गई तथा 258611 मेट्रिक टन उत्पादन प्राप्त हुआ है।

इस प्रकार झालावाड जिला संतरा उत्पादन में वृद्वि कर रहा है किन्तु किसी–किसी वर्ष में मौसम की मार भी किसानों को संतरा उत्पादन में पीछे धकेल देती है, कई बार अधिक क्षेत्र में बागवानी होने के बाद भी उतना उत्पादन प्राप्त

नही हो पाता जितना होना चाहिये। इस प्रकार कहा जा सकता है कि जिले में संतरा वर्ष दर वर्ष उत्पादन में वृद्धि कर रहा है अगर किसानों को पर्याप्त विभागीय सहायता दी जाये तो झालावाड जिला राज्य मे ही नही अपितु देश में भी संतरा उत्पादन करने में प्रमुख स्थान ले सकता है।

सोयाबीन की खेती :—

झालावाड जिले की व्यापारिक कृषि फसलों में सोयाबीन फसल का महत्वपूर्ण स्थान है इस फसल की कृषि प्रायः जिले के अधिकांश किसानों के द्वारा की जाती है। सोयाबीन की कृषि जिले के किसानों द्वारा मानसून पूर्व अपने खेतो की अच्छी तरह हकाई जुताई करके की जाती हैं। सोयाबीन दलहन के बजाय तिलहन की फसल मानी जाती है। सोयाबीन मानव पोषण एवं स्वास्थ्य के लिये बहुपयोगी खाद्य प्रदार्थ है। इसके प्रमुख घटक प्रोटीन, कार्बोहाईड्रेड और वसा होते हैं सोयाबीन में 35 प्रतिशत प्रोटीन, 22 प्रतिशत वसा, 21 प्रतिशत कार्बोहाईड्रेड, 12 प्रतिशत नमी तथा 5 प्रतिशत भस्म होती है। सोयाबीन न केवल प्रोटीन का एक उत्कृष्ट स्त्रोत है बल्कि कई शारीरिक क्रियाओं को भी बल प्रदान करता है।

सोयाबीन की खेती जिले में अधिक रेतीली व हल्की भूमि को छोड़कर सभी प्रकार की भूमि में सफलता पूर्वक की जा रही है परन्तु पानी के निकास वाली चिकनी दोमट मिट्टी सोयाबीन के लिये अधिक उपयुक्त होती है। जहां भी खेत में पानी रूकता हो वहां जिले के किसानों को सोयाबीन की कृषि नही करनी चाहिये। जिले के किसानों को सोयाबीन की फसल के लिये अपने खेत को तैयार करने के लिये वर्षा प्रारम्भ होने पर 2 या 3 बार पाटा चलाना चाहिये इससे हानि पहुंचाने वाले कीटों की सभी अवस्थायें समाप्त हो जाती है। सोयाबीन का अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिये जिले के किसानों को अपने खेत में जल निकासी की व्यवस्था करना आवश्यक होता है।

बीजोपचार :—

सोयाबीन के अंकुरण को बीज तथा मृदा जनित रोग प्रभावित करते हैं इसकी रोकथाम के लिये बीज को थीरम या केप्टान 2 ग्राम कार्बेन्डाजिम या थायोफेनेट मिथाईल 1 ग्राम मिश्रण प्रति किलो ग्राम बीज की दर से उपचारित

करना चाहिये। उपचारित किये हुये बीजो का ही इस्तेमाल कृषि क्रिया में करना चाहिये इससे पौधे की सुरक्षा तथा उत्पादन भी अधिक मिलता है।

खरपतवार प्रबन्धन एवं उर्वरकों का प्रयोग :—

जिले के किसानो को धनियें की फसल में लगने वाले खरपतवारों का नियंत्रण करना बहुत आवश्यक होता है खरपतरवारों को नष्ट करने के लिये किसानों को इथाईल 1 लीटर प्रति हैक्टेयर या इमेजेथाईपर 750 मिली लीटर प्रति हैक्टेयर की दर से छिड़काव करना चाहिये। किसानों को आखिरी बखरनी के पूर्ण खेतो में 3 लीटर प्रति हैक्टेयर व 2 लीटर प्रति हैक्टेयर की दर से मेटोलाक्लोर 600 लीटर पानी में घोलकर नोजल की सहायता से खेत में छिड़काव करना चाहिये जिससे खरपतरवारों से रक्षा की जा सके एवं फसल को खरपतरवारों से बचाया जा सके।

सिंचाई :—

खरीफ मौसम की फसल होने के कारण सामन्यतः सोयाबीन को अधिक सिंचाई की आवश्यकता नही होती है। फलियों मे दाना भरते समय अर्थात सितम्बर माह में यदि खेत में नमी न हो तो आवश्यकतानुसार जिले के किसान भाईयों को एक या दो हल्की सिंचाई करना सोयाबीन के विपुल उत्पादन लेने हेतु लाभदायक है।

जैविक नियंत्रणः—

फसल में कीटो की आरम्भिक अवस्था में जैविक कीट नियंत्रण हेतु बी.टी. एवं ब्यूवेरिया 1 किलोग्राम या 1 लीटर प्रति हैक्टर की दर से बुवाई के 30—40 दिन तथा 50—55 दिन बाद छिडकाव करे। जिले के किसानों को रासायनिक कीट नाशकों की जगह जैविक कीट नाशकों को अदला बदली कर अपनाना लाभदायक होता है। निंदाई के समय कीट से प्रभावित टहनियों को तोड़कर नष्ट करे तथा प्रभावित पौधो पर रासायनिक दवाओं का छिड़काव करे।

रोग एवं उपचारः—

जिले के कृषक अपनी सोयाबीन की फसल में रोगो की रोकथाम के लिए निम्न उपायो को अपनाकर अपनी फसल की रक्षा एवं उत्पादन को बढा सकते हैं।

- फसल बोने के बाद से ही किसानों को अपनी फसल की देखभाल करनी चाहिये यदि सम्भव हो तो लाईट ट्रेप तथा फेरोमेन टयूब का इस्तेमाल करना चाहिये।
- किसानों के लिये आवश्यक है कि बीज को बोने से पूर्व उसका उपचार करें रोग नियंत्रण के लिये फंफूद के आक्रमण से बीज सडन रोकने हेतु कॉर्बेन्डाजिम 1 ग्राम + 2 ग्राम थीरम के मिश्रण से प्रति किलोग्राम बीजो को उपचारित करना चाहिये।
- फसल में पत्तो मे कई प्रकार के धब्बे वाले फंफूद जनित रोगो को नियंत्रित करने के लिये कीटनाशक दवाईयों का उपयोग करना चाहिये।
- सोयाबीन की फसल में लगने वाले डिपोलिएटस नामक रोग मे नीम की निम्बोली का अर्क बनाकर उसका छिड़काव करना चाहिये।
- फसल की कटाई अधिकांश पत्तियों के सूखकर झड जाने पर 10 प्रतिशत फलियों के सूखकर भूरी हो जाने पर फसल की कंटाई करनी चाहिये

अन्तर्वतीय फसल पद्धति :–

जिल में सोयाबीन की कृषि करने वाले किसानों को अन्तर्वतीय फसल पद्वति को अपनाना चाहिये एवं कृषि प्रक्रिया का दोहरा लाभ लेना चाहिये। किसानों को अन्तर्वतीय फसलों के रूप में निम्नानुसार फसलों की खेती अपनी कृषि क्रिया में अपनानी चाहिये।

1. अरहर + सोयाबीन
2. ज्वार + सोयाबीन
3. मक्का + सोयाबीन
4. तिल + सोयाबीन

दोहरी फसल लेने से किसानों को यह फायदा होगा कि एक फसल के खराब होने पर उसकी पूर्ति दुसरी फसल के उत्पादन से ले सकते हैं।

तालिका संख्या 3.3

झालावाड़ जिले में सोयाबीन का क्षेत्रफल एवं उत्पादन

वर्ष 2005—06 से 2014—15 तक

क्र.स.	वर्ष	क्षेत्रफल (है. में)	उत्पादन (मेट्रिक टन में)
1	2005—06	189406	190127
2	2006—07	205629	210398
3	2007—08	203288	232201
4	2008—09	224695	336734
5	2009—10	230560	315410
6	2010—11	240086	384138
7	2011—12	252058	396472
8	2012—13	271071	374069
9	2013—14	288591	202014

स्त्रोत — जिला सांख्यिकी रूपरेखा 2016 झालावाड

सामान्यतः जिले का सोयाबीन उत्पादन करने में राज्य में प्रमुख स्थान है यहां राज्य की अधिकांश सोयाबीन का उत्पादन किया जाता है इसका प्रमुख कारण यहां पर सभी किसानों द्वारा सोयाबीन की कृषि करना है। उपयुक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि इस क्षेत्र में सोयाबीन का उत्पादन वर्ष 2005—06 में यहां 189406 हैक्टेयर क्षेत्रफल सोयाबीन की कृषि की गई धीरे—धीरे इसके क्षेत्र में बढोतरी के साथ—साथ इसके उत्पादन मे भी वृद्वि होने लगी है।

झालावाड़ जिले में सोयाबीन का क्षेत्रफल एवं उत्पादन वर्ष 2005–06 से 2014–15 तक

आरेख संख्या 3.2

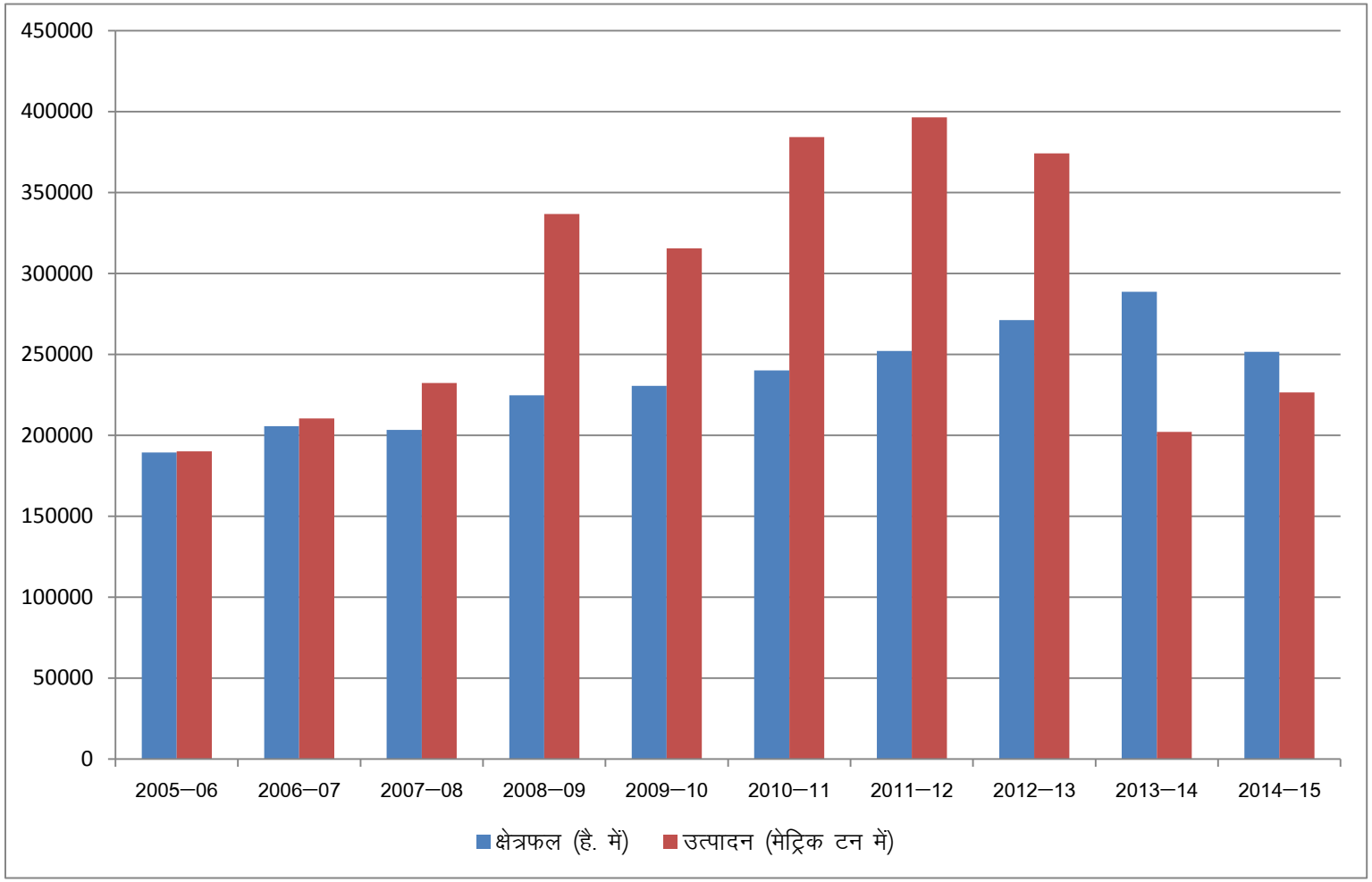

वर्ष 2006—07 में यह बढकर 205629 हैक्टेयर पर होने लगी है तथा इसका उत्पादन 210398 मेट्रिक टन प्रति हैक्टेयर हुआ जो पिछले वर्ष की तुलना में 20271 मेट्रिक टन अधिक था। वर्ष 2007—08 में इसकी कृषि को ओर प्रोत्साहन एवं किसानो के द्वारा अपनाये जाने पर इसका क्षेत्रफल 203288 हैक्टेयर हो गया तथा उत्पादन 2005—06 की तुलना में बढकर 232201 मेट्रिक टन प्रति हैक्टेयर हो गया है।

वर्ष 2010—11 में इसके क्षेत्रफल ओर अधिक वृद्वि हुई और यह 240086 हैक्टेयर हो गया इसका उत्पादन बढकर 384138 मेट्रिक टन प्रति हैक्टेयर हुआ वर्ष 2011—12 में यहां पर कुल कृषि क्षेत्रफल के 252058 हैक्टेयर पर सोयाबीन की कृषि की गई जिससे किसानों को क्षेत्रफल के अनुरूप उत्पादन प्राप्त हुआ है जो 396472 मेट्रिक टन प्रति हैक्टर है वर्ष 2012—13 में तथा 2014—15 में इसके उत्पादन व क्षेत्रफल में कमी देखने को मिलती है इसका प्रमुख कारण जिले में वर्षा का अभाव होना है। वर्ष 2014—15 में जिले में कुल 251582 हैक्टेयर क्षेत्रफल कृषि कार्य हुआ है तथा इसका उत्पादन 226424 मेट्रिक टन प्रति हैक्टेयर प्राप्त हुआ है।

झालावाड जिला सोयाबीन के उत्पादन में अच्छी प्रगति कर रहा है उसका प्रमुख कारण यहां पर सिंचाई की सुविधायें, उपयुक्त उर्वरक भूमि का उपलब्ध होना तथा उत्पादक क्षेत्रो के समीप ही मण्डी की स्थापना होना है जिससे किसान अपना उत्पादित माल जल्दी ही मण्डियों में ले जाकर बेच देते हैं। यहां पर परिवहन के साधनों की भी व्यापक सुविधा उपलब्ध है जिले में सोयाबीन की कृषि प्रायः सभी तहसीलों में प्रमुख रूप से की जाती है। सोयाबीन की कृषि करने वाली तहसीलों में मुख्य रूप से पिडावा तहसील है यहां प्रति हैक्टेयर क्षेत्रफल एवं उत्पादन प्रायः सभी तहसीलों से अधिक देखने को मिलता है इसके बाद अकलेरा तहसील में सोयाबीन का उत्पादन अधिक पाया जाता है। खानपुर, पचपहाड, गंगधार, झालरापाटन तहसील में सोयाबीन की कृषि का कार्य प्रायः सामान्य रूप में देखने को मिलता है जिले की सबसे कम सोयाबीन उत्पादन करने वाली तहसील में मनोहरथाना का स्थान आता है।

सरसों की खेती :–

राजस्थान के झालावाड जिले में सरसों की खेती प्रमुखता से व्यापारिक फसल के रूप में की जाती है झालावाड में कृषकों के लिये सरसों की खेती बहुत अधिक लोकप्रिय होती जा रही है जो कि इसमें कम सिंचाई व कम लागत से अन्य फसलों की तुलना में अधिक लाभ प्राप्त हो जाता है इसकी खेती मिश्रित फसल के रूप में या दो फसलीय चक्र में आसानी से की जा सकती है। जिले के किसानो को सरसों की अच्छी फसल लेने के लिये इसे बोने से पहले अपने खेत को अच्छी तरह से तैयार करे तथा बोने के उपयुक्त समय का इन्तजार करे सरसों की अच्छी उपज के लिये समतल एवं अच्छे जल निकास वाली बलुई दोमट मिटटी से दोमट मिटटी उपयुक्त रहती है। खेत तैयार करने के लिये किसानों को जिप्सम को मई–जून में भूमि मे मिलावें।

सरसों की खेती जिले मे बारानी व सिंचित दोनो ही दशाओं में की जाती है बारानी क्षेत्रो में बरसात के बाद तवेदार हल से जुताई करे जिससे मिट्टी में नमी बनी रहे अन्तिम जुताई के समय 1.5 प्रतिशत क्यूनॉलफास, 25 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर की दर से मृदा में मिला दे ताकि भूमि मे हो रहे कीडो से फसल की सुरक्षा की जा सके।

उन्नत किस्में :–

जिले के किसानों को सरसों की बुवाई करने से पहले अच्छी पैदावार करने वाली किस्मों के बारे में भी अच्छा ज्ञान होना चाहिये जिससे वे अपने खेत के अनुसार किस्म का चुनाव करके उसकी उचित पैदावार की जा सके सही जानकारी

के अभाव में किसान अच्छी किस्म के बीजो का उपयोग नही कर पाते इससे उनके उत्पादन में कमी हो जाती है। उन्नत किस्म के साथ–साथ किसानों को बीज की मात्रा का भी ज्ञान होना आवश्यक है। किसानों को बुवाई का उचित समय इसकी किस्म के अनुसार सितम्बर मध्य से लेकर माह के अन्त तक किया जा सकता है।

तालिका संख्या 3.4

झालावाड़ जिले में बोई जाने वाली सरसों की किस्में

क्र. स.	किस्म	पकने की अवधि	औसत उत्पादन	विशेषताएं
1	पूसा जय किसान	125–130	18–20	सिंचित व असिंचित क्षेत्रो के लिये उपयुक्त
2	आशीर्वाद	125–130	16–18	देरी से बुवाई की जा सकती है।
3	आर एच 30	130–135	18–20	सिंचित व असिंचित क्षेत्रो के लिये उपयुक्त
4	पूसा बोल्ड	125–130	18–20	मोटे रोग कम लगते है।
5	लक्ष्मी आर एच 8812	135–140	20–20	फलियां पकने पर चटकती नही
6	क्रान्ति वी आर 15	125–130	16–18	असिंचित क्षेत्रो के लिये उपयुक्त

सरसों की खेती जिले के अधिकांश भाग में की जाती है तथा जिले के विभिन्न भागो में अलग–अलग किस्मों का चुनाव कर किसान इसकी कृषि करते हैं जिले के किसानों को सिंचित भूमि वाले क्षेत्रो में अलग किस्मों की बुवाई करे, जहां सिंचाई की सुविधाओं का अभाव है तथा पानी की कमी वाले क्षेत्र हैं वहां पर किसानों को उसी भूमि के अनुरूप किस्मों का चयन कर बोना चाहिये जिससे किसान अपनी फसल का उचित उत्पादन अपनी आशा के अनुरूप प्राप्त कर सके।

उचित किस्म के ज्ञान के अभाव में किसान अपनी फसल उत्पादन क्षमता को खो देते हैं।

उर्वरकों का उपयोग :–

जिले के किसानो को अपनी सरसों की फसल की उत्पादकता अच्छी लेने के लिए उसके बोने के पूर्व से लेकर पकने तक अपनी फसल की रक्षा के लिये या उसे कई प्रकार की बीमारियों से तथा अच्छे उत्पादन के लिये उचित मात्रा में उर्वरकों के प्रयोग कर ध्यान देना आवश्यक है जिससे पैदावार को बढावा मिल सके। किसानों को मृदा की उर्वरकता एवं उत्पादकता बनाये रखने के लिये उर्वरकों का संतुलित मात्रा में उपयोग करना सरसों की फसल के लिये नितान्त आवश्यक है। संतुलित उर्वरक उपयोग के लिये किसानों को चाहिये कि वह अपनी भूमिका नियमित भूमि परीक्षण अवश्य करवाते रहें मृदा परीक्षण के आधार पर उर्वरकों की सही मात्रा निर्धारित की जा सकती है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि किसानों को अपने खेत की उचित प्रकार से देखरेख करने की जरूरत होती है साथ ही कृषि करने का उचित तकनीकी ज्ञान भी होना आवश्यक है।

जैविक खाद का प्रयोग :–

सरसों की खेती को उन्नतशील बनाने के लिये किसान अपनी फसलों में जैविक खाद का प्रयोग करे जिससे वे अपनी फसलों का लगातार उत्पादन बढा सकते हैं जिले में जहां सिंचाई की सुविधा उपलब्ध है वहां अलग प्रकार से खेतो में जैविक खाद का प्रयोग करना चाहिये एवं असिंचित क्षेत्र में अलग प्रकार से करना चाहिये। रासायनिक खाद की जगह जैविक खाद का उपयोग अपनी खेती में करना चाहिये जिससे किसानों को अच्छे उत्पादन के साथ–साथ अपने खेत की उर्वरकता भी बनी रहती है। अतः भूमि की उर्वरा शक्ति को बनाये रखने के लिये कृषको द्वारा जैविक खाद का उपयोग अपनी कृषि क्रिया में करना चाहिये जिससे किसान अपने खेत की उर्वरकता को साल दर साल बनाये रखने में एवं उत्पादन को बढाने में सफल हो सकते हैं।

सिंचाई :–

फसल की वृद्वि एवं विकास के लिये उसकी समय पर सिंचाई होना नितान्त आवश्यक है सिंचाई के अभाव में किसान अपनी फसल का उत्पादन आशा के

अनुरूप नही ले पाता है जिले के किसानों को सही समय पर सरसों की फसल में सिंचाई करनी चाहिये किसानों को सरसों की अच्छी फसल के लिये पहली सिंचाई खेत में नमी, फसल की जाति व मृदा के प्रकार व आवश्यकता को देखते हुये 30—40 दिन के बीच फूल बनने की अवस्था पर करनी चाहिये। दुसरी सिंचाई फलियां बनते समय 60—70 दिन में करना लाभदायक होता है। असिंचित क्षेत्रो में सरसों की फसल प्राप्त करने के लिये जिले के किसानों को अच्छी उपज प्राप्त करने के लिये मानसून के दौरान खेत को अच्छी तरह 2—3 बार जुताई करें जिससे मृदा की जलधारण क्षमता में वृद्वि होती है एवं उत्पादन भी अच्छा होता है।

कीट व रोगो की रोकथाम :—

सरसों की खेती में फसल के बोने से लेकर उसके पकने तक उसमें कई प्रकार के रोग लग जाते हैं जिससे वे पौधे की उचित विकास को रोक लेते हैं और उसमें अच्छा फलाव नही आ पाता है जिससे किसानों को फसल उत्पादन पर इसका प्रभाव देखने को मिलता है तथा फसल उत्पादन में काफी गिरावट आ जाती है। जिले के किसानों को चाहिये कि वे समय रहते इन रोगो व कीटो पर रोकथाम के उपाय अपनाकर अपने सरसों के उत्पादन में बढोतरी कर सकते हैं किसानो को अपनी फसल में कीटो की रोकथाम समय पर कर लेनी चाहिये एवं फसल उपचार को अपना लेना चाहिये जिससे किसान अपने सरसों के उत्पादन को निरन्तर बढा सके। सरसों की फसल में कीट रोगो के प्रबन्धन के लिये किसान भाईयों को प्रारम्भ में प्रकोपित शाखाओं को तोड़कर भूमि मे गाड़ देना चाहिये। माहू रोग से फसल को बचाने के लिये कीटनाशी डाईमेथोईट 30 ईसी 1 लीटर प्रति हैक्टेयर की दर से 700—800 लीटर पानी में घोलकर सांयकाल में फसलों पर छिडकाव करना चाहिये। इस प्रकार की प्रक्रिया को अपनाकर किसान अपनी फसलों की कीटो से रक्षा कर सकते हैं एवं अपने उत्पादन को बढा सकते हैं।

फसल की कटाई :—

सरसों की फसल को किसानो को पकने पर ही कांटना चाहिये सरसों की फसल फरवरी—मार्च तक पक जाती है उचित पैदावार के लिये जब सरसों की फलियां 75 प्रतिशत पीली पड जाये तब ही फसल की कटाई की जानी चाहिये। इस प्रकार किसान भाईयों को फसल को बोने से बेहतर उसके पकाव तक जितनी देखभाल करते हैं उतनी ही सावधानी उसकी कटाई मे भी रखनी चाहिये जिससे फसल का पुरा उत्पादन किसान अपने खेत से घर तक ला सके।

तालिका संख्या 3.5

झालावाड़ जिले में सरसों का क्षेत्रफल एवं उत्पादन

वर्ष 2005—06 से 2014—15 तक

क्र.स.	वर्ष	क्षेत्रफल (है. में)	उत्पादन (मेट्रिक टन में)
1	2005—06	75974	113892
2	2006—07	72194	114794
3	2007—08	27747	44156
4	2008—09	28442	46472
5	2009—10	30540	49652
6	2010—11	32622	58720
7	2011—12	32390	64438
8	2012—13	79561	127307
9	2013—14	71244	56995
10	2014—15	30156	24121

स्त्रोत — जिला सांख्यिकी रूपरेखा 2016 झालावाड

झालावाड जिले में सरसों की खेती इसके समस्त भाग में प्रमुखतः से की जाती है यह सिंचित क्षेत्र में तो की ही जाती है पर जहां सिंचाई की सुविधा उपलब्ध नही है वहां पर भी इस कृषि को किया जा सकता है यह कम पानी मे ही तैयार होने वाली मुद्रा दायिनी फसल है।

झालावाड़ जिले में सरसों का क्षेत्रफल एवं उत्पादन वर्ष 2005–06 से 2014–15 तक

आरेख संख्या 3.3

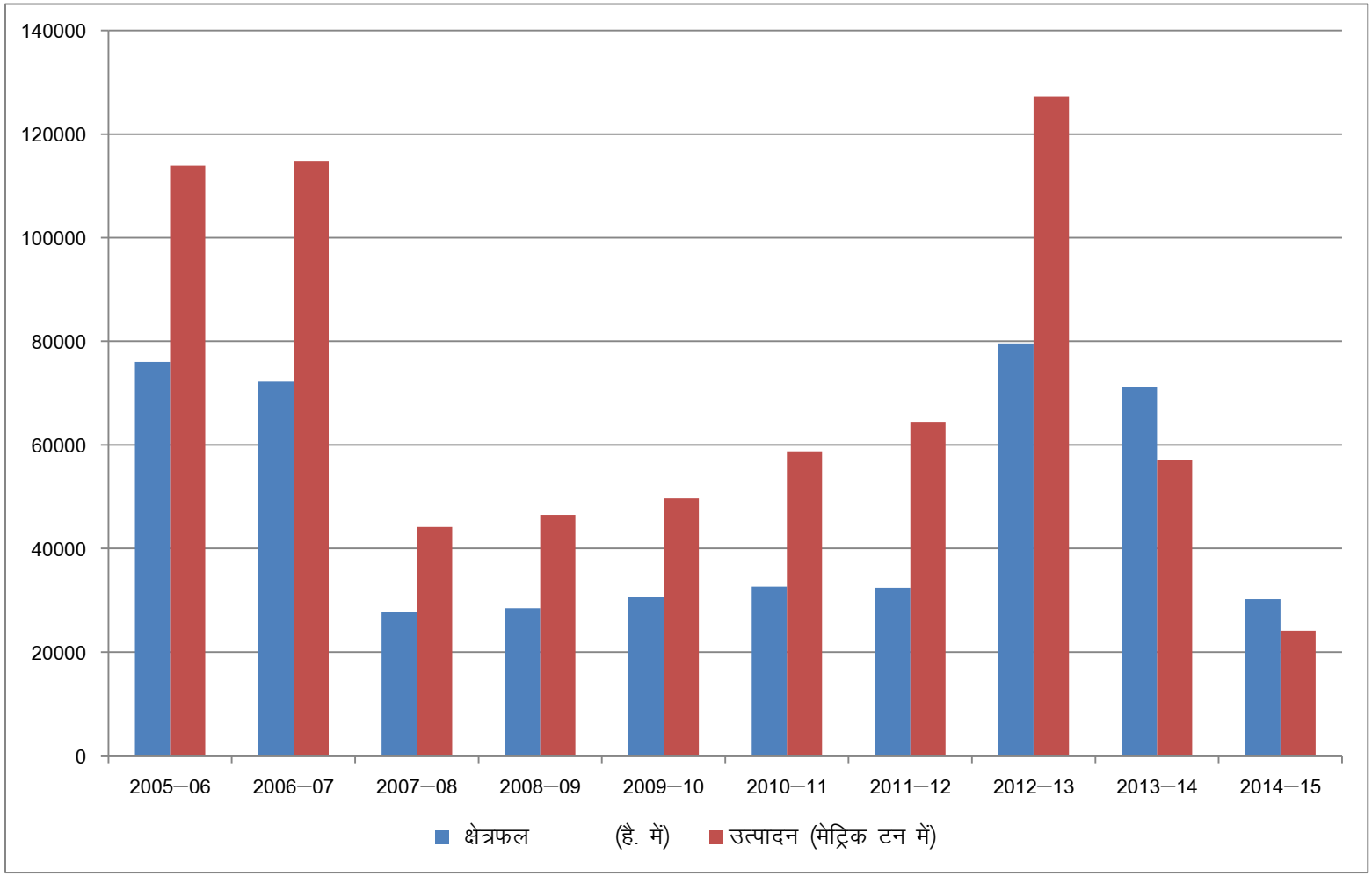

जिले में इसके बोने के क्षेत्रफल एवं इसके उत्पादन की बात करें तो उपयुक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि सन 2005–06 में यहां 75974 हैक्टेयर क्षेत्रफल पर इसकी कृषि की गई तथा इसका उत्पादन 113892 मेट्रिक टन हुआ है। वर्ष 2006–07 में इसके क्षेत्रफल में थोडी कमी आई है पर इसका उत्पादन पिछले वर्ष की तुलना में अधिक हुआ है इसका उत्पादन 114794 मेट्रिक टन हुआ है। वर्ष 2007–08 से लेकर 2011–12 तक इसके क्षेत्रफल एवं उत्पादन में गिरावट आई है इसका मुख्य कारण किसानों को अपने उत्पादन का उचित दाम न मिलना सिंचाई की सुविधाओं मे कमी तथा इसकी जगह दुसरी फसल को बोना मुख्य कारण रहा है। सन 2012–13 में इसके क्षेत्रफल में बढोतरी देखने को मिलती है इस वर्ष यहां कुल 79561 हैक्टेयर क्षेत्रफल में इसकी कृषि की गई इस वर्ष उत्पादन में रिकार्ड बढोतरी हुई जो पिछले कई वर्षो की तुलना में अधिक रही है। सन 2012–13 में इसका उत्पादन 127307 मेट्रिक टन हुआ है इसका प्रमुख कारण जिले मे मानसून का अच्छा रहना है।

सन 2013–14 में जिले में सरसों की खेती की बात की जाये तो यहां इसके क्षेत्रफल एवं उत्पादन में कमी देखने को मिलती है इस वर्ष 71244 हैक्टेयर पर इसकी कृषि की गई तथा उत्पादन घटकर 56995 मेट्रिक टन ही हो पाया है। वर्ष 2014–15 में भी इसके क्षेत्रफल एवं उत्पादन मे कमी देखने को मिलती है पिछले वर्ष की तुलना में इस वर्ष किसानों की रूची कम देखी गई है और इसका रकबा घटकर 30156 हैक्टेयर रह गया है तथा उत्पादन भी इसके अनुरूप ही रहा है इस वर्ष कुल 24121 मेट्रिक टन उत्पादन हो पाया है इसका प्रमुख कारण जिले के किसानों के पास सिंचाई की सुविधाओं का अभाव होना है एवं अपनी फसल को समय पर सिंचाई उपलब्ध न होने के कारण उत्पादन मे गिरावट आती है।

सरसों की कृषि सामान्यतः जिले की सभी तहसीलों में की जाती है व प्रमुख रूप से सरसों का उत्पादन करने वाली तहसीलों में खानपुर तहसील का स्थान आता है। यहां पर इसके बोने का क्षेत्रफल भी अधिक देखने को मिलता है तथा इसका उत्पादन भी अधिक होता है। इसके बाद यहां सरसों उत्पादन करने वाली तहसीलों में अकलेरा, गंगधार, पचपहाड का स्थान आता है तथा जिले में सबसे कम उत्पादन पिडावा व मनोहरथाना तहसील में किया जाता है।

अफीम की कृषि :–

अफीम पोस्त देने वाला एक पौधा है जो पापी कुल का है। पोस्त भू–मध्य सागर प्रदेश का देशज माना जाता है यहां से इसका प्रचार सब ओर हुआ इसकी खेती भारत, चीन, एशिया माईनर, तुर्की आदि देशो में मुख्यतया होती है। भारत में

पोस्ते की फसल उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश एवं राजस्थान में बोई जाती है। पोस्ते की खेती एवं व्यापार करने के लिये सरकार के नारकोटिक्स विभाग से अनुमति लेना आवश्यक है। पोस्ते के पौधे से अहिफेन यानि अफीम निकलती है जो नशीली होती है।

अफीम की खेती की और लोग सबसे ज्यादा आकर्षित होते हैं वजह सीधी सी है और वह है बहुत ही कम लागत में अधिक कमाई का होना वैसे तो देश में अफीम की खेती गैर कानूनी है लेकिन अगर इसे नारकोटिक्स विभाग से स्वीकृति लेकर किया जाये तो फिर आपको कोई डर नही है। अफीम की कृषि करने के लिये किसानों को सरकार पट्टे वितरण करती है और मापदण्ड भी तय करती है कि कितने क्षेत्र में इसे बोया जाये इसलिये किसानो की अफीम की खेती करने से पहले सम्बन्धित विभाग से अनुमति लेनी पडती है।

राजस्थान में अफीम की कृषि मुख्य रूप से झालावाड, बांरा, चित्तोडगढ, प्रतापगढ, भीलवाड़ा, आदि क्षेत्रो में की जाती है। अफीम की खेती करने एवं उत्पादन करने के लिये केन्द्रीय नारकोटिक्स ब्यूरो द्वारा जारी पट्टे के आधार पर की जाती है। यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण औषधीय फसल है। इसमें लगभग 42 से भी अधिक प्रकार के अल्केनाईट पाये जाते हैं जिनमें प्रमुख रूप से मॉरफीन, कोडिन, थीवेन, नारकोटिन तथा पेपेवरिन अधिक महत्वपूर्ण है जिनका प्रयोग विभिन्न प्रकार की दवाईयां बनाने में किया जाता है।

प्रमुख किस्में :–

अफीम की विभिन्न प्रकार की किस्में पायी जाती है प्रमुख किस्मों मे जवाहर अफीम 16, जवाहर अफीम 539 एवं जवाहर अफीम 540 आदि है।

खेत की तैयारी :–

अफीम की कृषि करने के लिये जिले के किसानों को खेत को तैयार करने में पूर्णतया सावधानी बरतने की आवश्यकता होती है क्योंकि अफीम का बीज बहुत छोटा होता है अतः इसकी कृषि में खेत की तैयारी का महत्वपूर्ण योगदान होता है इसलिये किसानों को खेत की दो बार खड़ी एवं आड़ी जुताई करनी चाहिये तथा

इसी समय 20–30 गाडी अच्छी प्रकार से सड़ी गोबर खाद को समान रूप से मिट्टी में मिलाने के बाद पाटा चलाकर खेत को भूरा–भूरा तथा समतल कर देवे। किसान ध्यान रखना रखे कि खेत में किसी प्रकार के ढेले न रहे इसके उपरान्त कृषि कार्य की सुविधा के लिये 3 मीटर लम्बी तथा 1 मीटर चोडी आकार की क्यारियां तैयार कर ली जावे इसके बाद ही किसान अफीम के बीजों को बोये।

बुवाई समय :–

अफीम की खेती करने एवं बीज बोने का उत्तम समय अक्टूबर के अन्तिम सप्ताह से नवम्बर के दुसरे सप्ताह तक किसान अफीम की बुवाई आवश्यक रूप से कर दें किसान बीजो को बोते समय 0.5 से 1 से.मी. गहराई पर तथा 30 से.मी. कतार से कतार तथा 0 से 9 से.मी. पौधे से पौधे की दूरी रखते हुये बुवाई करनी चाहिये। इसकी बुवाई से पहले बीजो में दुगने अनुपात में सूखी मिट्टी मिलायें किसान पहली व दूसरी सिंचाई के समय ध्यान रखे कि क्यारियों में अधिक पानी नही जाये अन्यथा बीज किनारों पर आ जायेंगे।

सिंचाई :–

अफीम की अच्छी उपज प्राप्त करने के लिये खेत की सिंचाई पर अधिक ध्यान देने की जरूरत होती है अफीम की कृषि करने के लिये उसके बौने से लेकर डोडो की चीराई तक 8–10 बार सिंचाई की आवश्यकता होती है। पहली सिंचाई बीज बुवाई के तुरन्त बाद हल्की सिंचाई करना चाहिये शुरू की सिंचाई के लगभग 6–7 दिन के अन्तर से और बाद में 10–12 दिन के अन्तर से सिंचाई करनी चाहिये। अफीम निकालने के समय सिंचाई बन्द कर देनी चाहिये तथा अफीम के डोडो पर चीरा लगाना शुरू करने के बाद सिंचाई बिल्कुल नहीं करे। किसान बून्द–बून्द ड्रिप पद्वति से सिंचाई करते है तो अधिक उपज प्राप्त होने की सम्भावना रहती है और आशानुरूप उत्पादन प्राप्त होने की सम्भावना होती है।

खाद एवं उर्वरक :–

किसान अपनी फसल की अधिक उत्पादकता लेने के लिये फसल पर खाद एवं उर्वरक का प्रयोग करता है किन्तु उचित निर्देशन एवं जानकारी के अभाव में उसकी मात्रा का ज्ञान न होने के कारण वो खाद एवं उर्वरक खेत मे डाल तो देता

है पर फसल का उचित उत्पादन नही ले पाता इसके लिये जिले के किसानो को चाहिये की वे अफीम की फसल को बोने से पहले खेत की मिटटी का नजदीकी कृषि केन्द्र में जाकर उसका परीक्षण करावें एवं फसल में खाद एवं उर्वरक की मात्रा की जानकारी भी लेवें जिससे किसान अफीम की कृषि का उत्पादन ज्यादा से ज्यादा प्राप्त कर सके।

सामान्य रूप से किसान खेत की जुताई से पहले 10 टन देशी खाद प्रति हैक्टेयर अपने खेत मे डाले अफीम के लिये 90 किलो नत्रजन एवं 40 किलो फास्फोरस प्रति हेक्टेयर देना लाभदायक रहता है। अफीम की फसल से अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिये मृदा परीक्षण के आधार पर खाद एवं उर्वरक की अनुशंसित मात्रा का उपयोग करें।

चीरा लगाना या लूना लेना :—

अफीम के पौधे के डोडे के चीरा लगाकर अफीम निकालने को लूना लेना कहा जाता है इसमें जब फसल पक कर तैयार हो जाती है तो डोडो के चीरा लगाया जाता है। डोडो के चीरा लगाने का सही समय सुबह का होता है इसमे एक दिन पहले डोडे के चीरा लगाकर दुसरे दिन सुबह जल्दी अफीम को निकालना चाहिये। डोडे को हाथ से दबाकर देखना चाहिये कि डोडा अफीम निकालने के लिये सही है या नही। सामान्यतः फसल 100—110 दिन में पक कर तैयार हो जाती है और डोडो के चीरा लगाने का सही समय भी यही रहता है। किसानों को चीरा लगाने का उचित ज्ञान भी होना आवश्यक है। अतः किसान भाई उचित जानकारी प्राप्त कर ही डोडो के चीरा लगाये सामान्यतः डोडो पर चीरे तिरछे लगाना चाहिये जिससे डोडो की अधिकांश कोशिकायें कट जाती है और डोडो से अधिक मात्रा में दूध निकलता है।

इस प्रकार किसान तीन दिन बाद प्रत्येक डोडे पर दुसरी बार चीरा लगाना चाहिये कुल चीरा लगाने की संख्या 3—5 बार तक होती है इस प्रकार किसान अफीम का अधिक उत्पादन कर सकता है।

प्रमुख रोग :—

काली मस्सी रोग (मदुरोमिल आसिता) :— सामान्यतः जिले में अफीम उगाने वाले सभी क्षेत्रो में यह रोग फसल में देखा जा सकता है। इस रोग से अफीम के पौधे को अधिक नुकसान होता है इस रोग के प्रभाव से पौधे की पत्तियों में भूरे एवं काले रंग के धब्बे के निशान हो जाते हैं। पौध के उपर की पत्तियों से आकर यह रोग पुरे पौधे की पत्तियों में फेल जाता है। इस प्रकार के रोग की रोकथाम के लिये किसानों को उचित परामर्श लेकर मेटेलेक्जिल+मैंकोजेब 0.2 प्रतिशत घोल के तीन छिड़काव फसल बुवाई के 30,50 व 70 दिन के बाद करना चाहिये।

छाछ्या फंफूद रोग :—

जिले में अफीम की फसल मे पाया जाने वाला एवं उसको प्रभावित करने वाला यह प्रमुख रोग है इस रोग को चूर्णिल आसिता या पावडरी मिल्डयू भी कहते हैं। इस प्रकार का रोग फसल में फंफूद से होता है इस रोग के प्रभाव पौधे के तने पर दिखाई देते हैं बाद में धीरे—धीरे सम्पूर्ण तने पर फेलकर पत्तियों को भी प्रभावित करता है। इस प्रकार के रोग की रोकथाम के लिये किसानों को प्रभावित फसल पर बुवाई के 75,80 एवं 100 दिनों पर टेब्यू कोनाजोल 1.5 मि.ली. प्रति लीटर पानी में घोलकर इसका छिडकाव करना चाहिये। इस प्रकार किसान उपयुक्त प्रकार से अपनी फसलीय सुरक्षा कर सकते हैं।

डोडा लट रोग :—

अफीम की फसल को नुकसान पहुंचाने में डोडा लट प्रमुख रोग है अफीम के डोडो में एक प्रकार की इल्ली या लट पायी जाती है जो डोडो को नुकसान पहुंचाती है और उत्पादन को प्रभावित करती है। इसके प्रभाव को नष्ट करने के लिये जिले के किसानों को फसल के फूल आने से पहले व डोडा लगने के बाद कॉर्बेरिल 5 प्रतिशत या क्यूनालफास 1.5 प्रतिशत चूर्ण का 25 किलो प्रति हैक्टेयर की दर से भुरकाव करना चाहिये। आवश्यकतानुसार प्रथम छिडकाव के 15 दिन बाद उपचार को दोहराना चाहिये।

पाला :–

अफीम की फसल को नुकसान पहुंचाने में पाला अहम भूमिका निभाता है पाले से फसलों को बचाने के लिये किसानों द्वारा कई प्रकार के उपाय किये जाते हैं पाले से अफीम की फसल को बहुत नुकसान होता है। अतः जब पाला पडने की सम्भावना हो तो निम्न प्रकार के उपाय अपनाकर इसकी समस्या को काफी हद तक दूर किया जा सकता है।

- अगर किसानो को लगे कि पाला पड़ने वाला है तो तुरन्त सिंचाई करनी चाहिये पाला पड़ने के पहले सिंचाई करने से पाले का प्रभाव अफीम की फसल पर कम होता है।
- किसान अपनी फसल के चारो ओर पाला पडने की दशा में धुआं करने से पाले के असर को कम किया जा सकता है।
- इसके अलावा कुछ कीटनाशकों का प्रयोग कर इसके प्रभाव को दूर किया जा सकता है। इसके लिये गंधक के तेजाब का 0.1 प्रतिशत अर्थात 120–150 मिली लीटर गंधक का तेजाब 120–150 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करना चाहिये। उपरोक्त प्रक्रिया को पाला पड़ने पर 15 दिन बाद फिर से दोहराई जा सकती हैं। इस प्रकार किसान अपनी बहुमूल्य अफीम की फसल को पाले से बचा सकते हैं।

जड़ गलन रोग :–

अफीम की फसल में पौधे की जड का गलना और गलकर पौध का नष्ट होना किसानों की अफीम की फसल को नुकसान पहुंचाता है इसकी समस्या से निपटने के लिये किसान अफीम की बुवाई से पहले नीम की खली का खाद 500 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर की दर से छिडकाव करे। अफीम की फसल के 35–60 दिनों उपरान्त फंफूदनाशी दवाओं हेक्जा कोनाजोल 5 ई.सी. 1 मि.ली. प्रति लीटर या मैंकोजेब 75 प्रतिशत चूर्ण 4 ग्राम प्रति लीटर की दर से पानी का घोल बनाकर अफीम की फसल की जड़ो में डाले जिससे पौधों की जड़ो का गलना दूर किया जा सके।

इसके अलावा भी किसान ऐसे कई उपाय अपना सकते हैं जिससे अफीम की पैदावार को बढा सके इसके लिये किसान निम्न बातो का ध्यान रखे।

- अफीम बोने से पहले इसके बीजो का उपचार करे।
- अफीम की बुवाई समय के अनुसार करे तथा उसकी छनाई भी समय पर ही करें।
- फंफूदनाशक एवं कीटनाशक दवाईयों का प्रयोग किसान निर्धारित मात्रा में करे।
- समय–समय पर जब पौधे में कली, पुष्प, डोडा आने पर सिंचाई करे।
- अफीम की फसल में लूना लगाना पडे तो वो मौसम के अनुसार यथा ठण्डे मौसम मे ही लगावे।
- काली मस्सी या कोडिया रोग से बचाव के लिये कीटनाशक दवाईयो का छिडकाव 20–25 दिन के अन्तराल पर करे।
- अफीम बोने के लिये हमेशा परिष्कृत एवं उच्च कोटी के बीजो का चुनाव करे।

इन सभी उपायो को अपनाकर जिले के किसान अफीम उत्पादन में आशानुरूप वृद्वि एवं विकास कर सकते हैं। अफीम की खेती करने के लिये किसानो को केन्द्र सरकार द्वारा पट्टे आवंटित किये जाते हैं जिसके परिणाम स्वरूप ही किसान इसकी खेती कर सकते हैं। बिना अनुमति एवं पट्टा आवंटित हुये बिना अफीम की खेती करना कानूनन अपराध है यह एक मादक पदार्थ वाली फसल है इसको बिना अनुमति करने पर कठौर सजा का प्रावधान है सरकार द्वारा निश्चित एवं तय स्थानो पर इसके पट्टे वितरित किये जाते हैं एवं नियम बनाये जाते है उन नियमों का पालन करने वाले एवं पात्रता रखने वाले किसानों को ही अफीम की कृषि करने के पट्टे वितरित किये जाते हैं।

राजस्थान सरकार द्वारा जिले में निम्नलिखित नियमों के अन्तर्गत पात्रता रखने वाले किसानों को पट्टा वितरित करती है यह नियम सरकार द्वारा कृषि अफीम निती 2015–16 के अनुसार दिये गये है जो निम्न है।

कृषि हेतु पात्रता :–

इस अधिसूचना के खण्ड 3 और 7 के अध्यधीन अफीम की खेती करने के लिये कृषको को निम्नलिखित पात्रता रखना जरूरी है। इस नियम के पात्र कृषक ही अफीम की कृषि कर सकते हैं।

- वे कृषक जिन्होने फसल वर्ष 2014–15 के दौरान अफीम पोस्ते की खेती की थी और राजस्थान राज्य में औसतन अफीम की उपज कम से कम 56 किलो ग्राम प्रति हैक्टेयर की औसत अफीम उपज सरकार को सौंपी थी।

- वे किसान जिन्होने इससे सम्बन्धित प्रावधानों के अनुसार केन्द्रीय स्वापक ब्यूरो की देखरेख में फसल वर्ष 2013–14 और 2014–15 के दौरान अपने सम्पूर्ण पोस्त की फसल को नष्ट किया हो परन्तु जिन्होने इसी तरह फसल वर्ष 2012–13 के दौरान अपनी सम्पूर्ण पोस्ते फसल की दुबारा जुताई नही की हो।

- किसान जिनके लाईसेंस मंजूर न करने के खिलाफ अपील को वर्ष 2014–15 में निपटान की अन्तिम तारीख के बाद अनुमति दे दी गई है।

- किसान जिन्होने फसल वर्ष 2012–13 अथवा किसी अगले वर्ष में पोस्त की खेती की हो और जो अनुवर्ति वर्ष में लाईसेंस के लिये पात्र थे किन्तु किसी कारण वश, स्वेच्छा से लाईसेंस प्राप्त न किया हो अथवा जिन्होने अनुवर्ति फसल वर्ष में लाईसेंस प्राप्त करने के बाद किसी कारण वश अफीम पोस्त की खेती वास्तव मे न की हो।

तालिका संख्या 3.6

झालावाड़ जिले में अफीम का क्षेत्रफल एवं उत्पादन

वर्ष 2005–06 से 2014–15 तक

क्र.स.	वर्ष	क्षेत्रफल (हैक्टेयर में)	उत्पादन (क्विंटल में)
1	2005–06	299	18.08
2	2006–07	273	8.51
3	2007–08	65	2.87
4	2008–09	51	9.72
5	2009–10	171	2.83
6	2010–11	196	2.57
7	2011–12	76	1.09
8	2012–13	12	6.00
9	2013–14	3	0.17
10	2014–15	13	3.63

स्त्रोत – जिला नारकोटिक्स विभाग झालावाड़

झालावाड़ जिले में अफीम की कृषि बहुत कम किसानों के द्वारा की जाती है यह एक जोखिम पूर्ण फसल है। अफीम की कृषि करने के लिये जिले में किसानों को सम्बन्धित विभाग से पट्टे जारी किये जाते हैं तथा वे ही किसान इसकी कृषि कर सकते हैं जिनको विभाग द्वारा पट्टे मिले है।

झालावाड़ जिले में अफीम का क्षेत्रफल एवं उत्पादन वर्ष 2005–06 से 2014–15 तक
आरेख संख्या 3.4

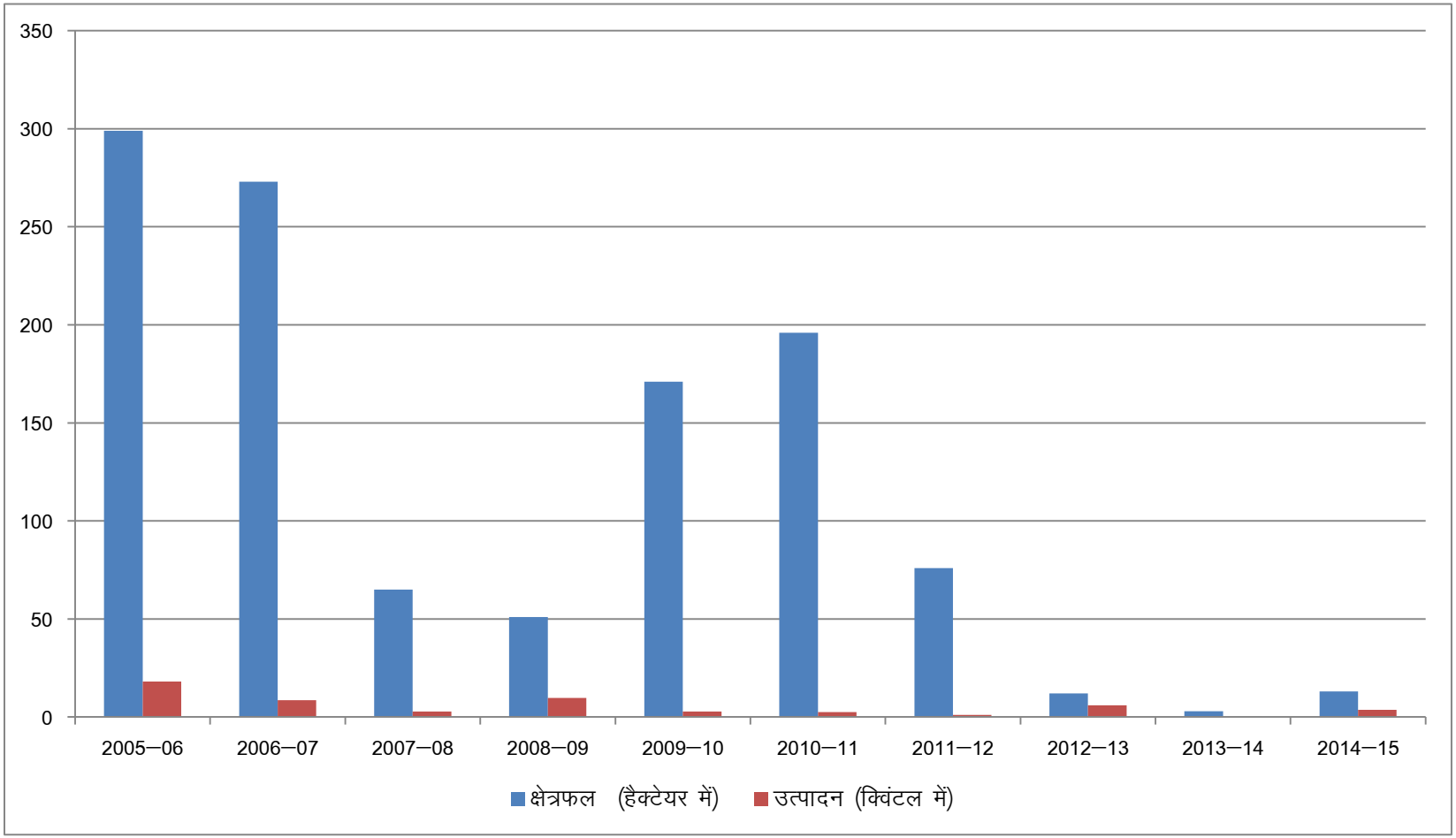

जिले में अफीम के कृषि कार्य में पहले की अपेक्षा इसका क्षेत्रफल कम होने के साथ–साथ इसके उत्पादन मे भी गिरावट आई है। वर्ष 2005–06 में जिले में कुल 299 हैक्टर पर इसका कृषि कार्य हुआ इस वर्ष इसका उत्पादन 18.08 क्विंटल प्राप्त हुआ। वर्ष 2005–06 से 2014–15 के मध्य के वर्षो में देखा जाये तो वर्ष 2005–06 में अफीम का क्षेत्रफल एवं उत्पादन सर्वाधिक रहा है।

वर्ष 2005–06 के बाद इसके कृषि कार्य में निरन्तर गिरावट देखने को मिलती है इसका प्रमुख कारण जिले में बहुत कम किसानों को इसकी खेती करने के लिये पट्टों का वितरण जारी करना है। वर्ष 2006–07 में यहां कुल फसलीय क्षेत्र के 273 हैक्टेयर पर इसका कृषि कार्य हुआ इस वर्ष कुल 8.51 क्विंटल उत्पादन प्राप्त हुआ जो पिछले वर्ष की अपेक्षा बहुत कम रहा है। वर्ष 2007–08 में जिले में कुल फसलीय क्षेत्र के 65 हैक्टेयर पर इसका कृषि कार्य हुआ जिसका कुल उत्पादन 2.87 क्विंटल प्राप्त हुआ। अफीम के उत्पादन पर सर्वाधिक प्रभाव मौसम की मार का पडता है किसी वर्ष अच्छा मौसम इसके उत्पादन को बढाता है तो किसी वर्ष खराब मौसम की वजह से इसके उत्पादन में गिरावट आती है।

वर्ष 2008–09 में जिले मे कुल 51 हैक्टेयर पर इसका कृषि कार्य हुआ इस वर्ष कुल 9.72 क्विंटल उत्पादन प्राप्त हुआ जो पिछले दो वर्षो में उत्पादन अधिक देखने को मिलता है। वर्ष 2009–10 में कुल 171 हैक्टेयर पर इसका कृषि कार्य किया गया, इसके क्षेत्रफल में पिछले वर्ष की अपेक्षा वृद्वि तो हुई लेकिन उत्पादन अधिक नही हो पाया है। इस वर्ष कुल 2.83 क्विंटल उत्पादन प्राप्त हुआ है। वर्ष 2010–11 में कुल 196 हैक्टेयर पर इसका कृषि कार्य हुआ है तथा इस वर्ष 2.57 क्विंटल कुल उत्पादन प्राप्त हुआ जो कुल बोये गये क्षेत्रफल की तुलना में कम प्राप्त हुआ है। वर्ष 2011–12 में यहां 76 हैक्टेयर पर इसका कृषि कार्य हुआ इस वर्ष मात्र 1.09 क्विंटल उत्पादन ही प्राप्त हुआ। वर्ष 2012–13 में 12 हैक्टेयर पर इसका कृषि कार्य हुआ इस वर्ष कुल अफीम उत्पादन क्षेत्रफल की तुलना में अधिक प्राप्त हुई है, इस वर्ष 6.00 क्विंटल ही उत्पादन प्राप्त हुआ।

वर्ष 2013–14 में इसके क्षेत्रफल में कमी आई है इस वर्ष मात्र 3 हैक्टेयर पर इसकी कृषि की गई और उत्पादन भी पिछले सभी वर्षो की तुलना में कम प्राप्त हुआ है, इस वर्ष मात्र 0.17 क्विंटल उत्पादन ही प्राप्त हुआ है। वर्ष

2014—15 में कुल फसलीय क्षेत्रफल के 13 हैक्टेयर पर इसकी कृषि की गई तथा इस वर्ष उत्पादन पिछले वर्ष की अपेक्षा अधिक प्राप्त हुआ इस वर्ष कुल 3. 63 क्विंटल उत्पादन प्राप्त हुआ।

जिले में अफीम की कृषि क्षेत्रफल एवं उत्पादन को उपयुक्त सारणी के माध्यम से दर्शाया गया है जिले में अफीम उत्पादन करने वाली तहसीलो में झालरापाटन, अकलेरा, मनोहरथाना, पिड़ावा, गंगधार, आदि का प्रमुख स्थान है।

3.5 अन्य व्यापारिक फसलों की कृषि :—

झालावाड जिले में की जा रही व्यापारिक फसलों में संतरा, सरसों, अफीम, सोयाबीन आदि का प्रमुख स्थान है इसके अलावा भी जिले में कुछ अन्य फसलों की व्यापारिक कृषि की जाती है। अन्य फसलों में धनियां एवं लहसुन का प्रमुख स्थान है इनके उत्पादन मे भी जिले में निरन्तर वृद्वि हो रही है तथा विगत कुछ वर्षो में यह व्यापारिक फसलों में उभरकर सामने आई है। पिछले वर्षो की तुलना में किसान इनकी खेती करने में रूची लेने लगे हैं इसका प्रमुख कारण कम पूंजी निवेश में अधिक उत्पादन का प्राप्त होना है यह मसाले की फसले हैं परन्तु इनका उत्पादन जिले में अधिक मात्रा में किया जा रहा है।

जिले मे लहसुन की कृषि धीरे—धीरे व्यापारिक स्वरूप लेने लगी है तथा जिले के अधिकांश कृषक भी इसको बोने में रूची लेने लगे हैं इसका प्रमुख कारण कम क्षेत्रफल में अधिक उत्पादन का होना है तथा इसको बेचते समय उत्पादन का उचित मूल्य मिलना भी कृषको को इस कृषि ने अपनी ओर खींचा है। लहसुन की कृषि ने जिले मे अब सामान्य रूप को छोडकर विशेषीकरण का रूप ले लिया है इसको कृषक अधिक क्षेत्रफल में करने लगे हैं, एवं इसका उत्पादन भी अधिक होने लगा है।

लहसुन की कृषि के अलावा व्यापारिक कृषि की अन्य फसलों में धनियां एवं मूंगफली का प्रमुख स्थान है। जिले में लहसुन के बाद धनियें की कृषि भी अधिकांश किसानो के द्वारा की जाती है। धनियां एक शीतकालीन फसल है तथा इसका क्षेत्र अनुसार उत्पादन भी किसानों को अधिक मिलता है एवं उत्पादन का उचित मूल्य भी बाजार मे मिल जाता है।

लहसुन की कृषि :–

अन्य व्यापारिक फसलो की भांति इसकी कृषि भी किसानो के द्वारा अधिक मात्रा में की जाने लगी है। जिससे लहसुन की कृषि का व्यापारिक स्वरूप उभकर सामने आया है। लहसुन एक औषधी युक्त नगदी फसल है जिसकी कृषि झालावाड़ के सभी भागो में की जाती है लेकिन मुख्य रूप से झालरापाटन एवं खानपुर तहसील में इसकी कृषि की जा रही है। इसका उपयोग कई तरह की दवाईया व मसालो के रूप में किया जाता है। लहसुन के मसालो व दवाईयों के रूप में उपयोग होने के साथ–साथ इसकी मांग के मध्यनजर कृषक इसका निर्यात कर अच्छा लाभ कमा सकते है परन्तु जरूरत है उच्च गुणवत्ता युक्त उत्पादन अर्थात वैज्ञानिक कृषि तथा प्रसंस्कृत उत्पाद बनाने की ताकि कृषि उद्योग को प्रसंस्कृत उद्योग बनाकर लाभ को और अधिक किया जा सकें। लहसुन की कृषि प्रायः जिले के अधिकांष भागों में की जाती है। जहां पहले यह कृषि जिले के कुछ ही भागो में की जाती थी। पर आज इसके उत्पादन से मिलने वाले लाभ की ओर किसानो का ध्यान गया है तथा यह समय के साथ–साथ जिले में अधिकांश कृषको के द्वारा की जाने वाली प्रमुख कृषि फसल बन गयी है।

जलवायु एवं भूमि :–

लहसुन ठण्डे मौसम की फसल है किन्तु अत्यधिक गर्म या ठण्डा मौसम इसकी कृषि के लिए अनुकूल नही होता है। लहसुन की कृषि उचित जल निकास वाली लगभग सभी प्रकार की भूमि में आसानी से की जा सकती है लहसुन की कृषि के लिए जिले की जलवायु व भूमि इसके अनुकूल है। यहां अधिकांश किसान लहसुन की कृषि करने में लगें हुए है और यहां अधिकांश किसानों के पास सिंचाई की सुविधा होने के कारण इसमें समय–समय पर पढ़ने वाली सिंचाई की जरूरत को पूरा कर लिया जाता है। लहसुन बलुई दौमट से लेकर चिकनी दौमट मिट्टी में उगायी जा सकती है। जिले की मिट्टी लहसुन की खेती की बढ़वार एवं उत्पादन के लिए उपयुक्त है।

उन्नत किस्में : –

लहसुन एक नगदी फसल है इसलिए अधिक पैदावार प्राप्त करने के लिए अधिक उत्पादन देने वाली उन्नत किस्मों को कृषको को उगाना चाहिए। अतः किसान ऐसी किस्मों का चयन करें जिसकी बाजार में अधिक मांग हो ओर मूल्य अधिक मिल सकें। जिले में कृषक विभिन्न प्रकार की पाई जाने वाली किस्मों में से निम्न किस्मों का चयन कर कृषि करनी चाहिए जिससे अधिक उत्पादन प्राप्त हो सकें।

तालिका संख्या 3.7

जिलें में बोई जाने वाली लहसुन की प्रमुख किस्में

क्र. सं.	किस्म	पकने की अवधि (दिनों में)	उत्पादन (प्रति हैक्ट.)
1	यमुना सफेद जी 1	150-160	150-160
2	यमुना सफेद 2	165-170	150-155
3	यमुना सफेद 3	150-160	130-140
4	यमुना सफेद 4	140-150	175-200
5	एग्रीफाउड जी 41	145-155	1175-200

यमुना सफेद जी–1 :–

लहसुन उत्पादन के लिए यह किस्म कृषको के लिए अधिक उपयुक्त है। यह किस्म राष्ट्रीय बागवानी अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान से विकसित है।

जो सम्पूर्ण क्षेत्र में उगाने के लिए इसकी सिफारिश की गयी है। जिले में सभी भागों में इस किस्म को बोया जाता है। यह प्रजाति 150 से 160 दिन में पककर तैयार हो जाती है। इसका उत्पादन 150 से 160 क्विंटल प्रति हैक्टेयर पाया जाता है। जिले के कृषक इस किस्म को अपनाकर अच्छा उत्पादन प्राप्त कर सकते है एवं अच्छा मुनाफा कमा सकते है।

यमुना सफेद 2 (जी 50) :–

लहसुन की कृषि करने वाले कृषको के लिए यह उत्तम प्रकार की किस्म है जिसको अपनाकर किसान क्षेत्र के अनुसार अच्छा उत्पादन प्राप्त कर सकतें है। यह फसल 165 से 170 दिनों में पककर तैयार हो जाती है। इसकी उपज की बात करें तो यह 150 से 155 क्विंटल प्रति हैक्टेयर की दर से उत्पादन देती है। इस प्रकार की किस्म अपनाकर कृषक आशा अनुरूप उत्पादन प्राप्त कर सकतें है।

एग्रीफाउड सफेद (जी–41) :–

लहसुन की कृषि के लिए यह किस्म विशिष्ट कोटी की है। कृषक इस किस्म का भी प्रयोग कर सकतें है। यह किस्म राष्ट्रीय बागवानी अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान से विकसित है। इस प्रकार की किस्म को पकने के लिए 150 से 160 दिन का समय लगता है। इसकी उत्पादन की बात की जाये तो यह 130 से 140 क्विंटल प्रति हैक्टेयर उत्पादन देती है।

यमुना सफेद–3 (जी–282) :–

कृषको लिए लहसुन की यह किस्म भी उपयोगी है, इसकी बुआई कर किसान अच्छा उत्पादन प्राप्त कर सकते है। इसका उत्पादन 175–200 क्विंटल प्रति हैक्टेयर तक पाया जाता है। यह प्रजाति 140 से 150 दिनों में पकरकर तैयार हो जाती है। यह प्रजाति अधिक मुनाफा देने वाली है एवं यह निर्यात के लिए उपयुक्त होती है।

यमुना सफेद–4 (जी–323) :–

इसका प्रति हैक्टेयर उत्पादन भी अधिक मात्रा में होता है। इसकी पैदावार 175 से 200 क्विंटल प्रति हैक्टेयर है तथा इसके कंद भण्डारण के लिए

उपयुक्त होते है। इस प्रकार की किस्म का प्रयोग कृषक अपनी खेती में कर सकतें है और अच्छा उत्पादन प्राप्त कर सकतें है।

एग्रीफाउड पार्वती (जी–313) :–

यह किस्म पहाड़ी भागों में उगायी जाने के लिए उपयुक्त है। जहां पर सिंचाई की सुविधा कम है वहां इस किस्म का प्रयोग जिले के कृषक कर सकते है। इसकी बुवाई सितम्बर से अक्टूबर में तथा खुदाई मई माह में करे। यह किस्म 250 से 270 दिन में पककर तैयार हो जाती है। इसकी पैदावार 175–200 क्विंटल हैक्टेयर तक पाई जाती है। यह किस्म निर्यात के लिए उपयुक्त है।

खेत की तैयारी :–

किसी भी फसल के उत्पादन को अधिक प्राप्त करने के लिए उसके खेत का अच्छा होना बहुत जरूरी है। जिले के कृषक लहसुन की अच्छी पैदावार के लिए अच्छी प्रकार से अपने खेत को तैयार करे। इसके लिए खेत की अच्छी तरह से 2 से 3 जुताई करके खेत की मिट्टी को भुरभुरी बना लेवे तथा खेत की समस्त प्रकार की खरपतवार निकाल कर खेत को समतल करे। इसके लिए किसान खेती की गहरी जुताई कर बाद में हेरा चला दे जिससे खेत की मिट्टी समतल हो सकें। लहसुन कंदीय फसल होने के कारण भूमि भूरभूरी तथा उत्तम जल निकास वाली होनी चाहिए। इस प्रकार किसान भाई अपने खेत को फसल अनुसार भली प्रकार से तैयार कर ही बीज की बुआई करे। इसके अतिरिक्त किसान अपनी खेती की मिट्टी का नजदीकी कृषि विज्ञान केन्द्र में जाकर मिट्टी परीक्षण करवाकर तथा मिट्टी जॉच के अनुसार उन्नत किस्म का चुनाव करे जिससे फसल उत्पादन अधिक मात्रा में हो सकें।

बुवाई :–

खेत की तैयारी के पश्चात बीज को बोने से पहले कीटनाशको से सुरक्षा के लिए बीजोपचार करने के उपरान्त ही इनकी बुवाई करे। लहसुन की बुवाई कलियों द्वारा की जाती है। बुवाई से पूर्व इन कलियों को गांठ से अलग कर लिया जाता है। कृषको को बीज बोने से पूर्व इसकी मात्रा का भी ध्यान रखना आवश्यक होता है। कम मात्रा में या अधिक मात्रा में बोने से इसकी उत्पादन

क्षमता पर प्रभाव पड़ता है। अतः इसकी मात्रा का ध्यान रखते हुए कृषको को प्रति हैक्टेयर 6 से 7 क्विंटल बीज की आवश्यकता होती है। कई क्षेत्र में लहसुन की बुवाई तीन प्रकार से की जाती है।

1. छिड़काव विधि द्वारा
2. डिबलिंग विधि द्वारा
3. कुंडो में लगाना

   इन तीन विधियों में से जिले में अधिकांश कुण्डों में लगाना विधि द्वारा बीज की बुवाई की जाती है।

खाध एवं उर्वरक :—

लहसुन की फसल का अधिक से अधिक उत्पादन करने के लिए कृषको के द्वारा अधिक मात्रा में रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग किया जाता है। उचित निर्देशन एवं जानकारी के अभाव में कृषक उचित किटनाशकों का प्रयोग नही कर पाते है एवं गलत तरीके से किया गया कीटनाशक का प्रयोग फसल उत्पादन पर बुरा असर डालता है। कई बार तो कीटनाशकों का गलत प्रयोग कृषको की फसल भी खराब कर देता है। अतः कीटनाशकों का प्रयोग फसल की जरूरत कें अनुसार एवं उचित निर्देशन में करना करे। इसके लिए कृषक नजदीकी कृषि विज्ञान केन्द्र में जाकर कृषि वैज्ञानिको से उचित परामर्श ले सकते है। सामान्यतः लहसुन के बोने से पहले खेत की तैयारी के समय 200 से 250 क्विंटल गोबर की खाद प्रति हैक्टेयर के हिसाब से जमीन में मिला देवे। इसके अलावा 100 किलो यूरिया, 100 किलो डी.ए..पी. व 100 किलो क्यूरेट ऑफ पोटाश कलिया लगाने से पहले देवे। यूरिया की आधी मात्रा 30 से 45 दिन बाद खड़ फसल में गुड़ाई कर सिंचाई के साथ देनी चाहिए। इस प्रकार कृषक लहसुन उत्पादन में विभिन्न प्रकार की क्रिया कर अपनी फसल के उत्पादन को बढा सकते हैं।

सिंचाई :—

फसल की वृद्वि में सर्वप्रमुख आवश्यक घटक सिंचाई है सिंचाई के बिना हम किसी भी फसल का उत्पादन नही ले सकते हैं, सामान्य अर्थ मे कहे तो कृषि कार्य सिंचाई के बिना अधूरा है। लहसुन की फसल के लिये सिंचाई की अधिक आवश्यकता होती है फसल बोने से लेकर उसके पकने तक फसल में

6–8 बार सिंचाई की आवश्यकता होती है। अतः लहसुन की फसल प्राप्त करने के लिये सिंचाई की सुविधा का होना आवश्यक है कृषक कलियों की बुवाई के बाद हल्की सिंचाई करे तथा फसल के बढने के समय 8 दिन के अन्तराल पर व पकने के समय 10–12 दिन के अन्तराल पर सिंचाई करे। फसल पकने पर जब पत्तियां सूखने लगे तो सिंचाई बन्द कर देवे।

प्रमुख रोग व उपचार :–

लहसुन की फसल में विभिन्न प्रकार के रोग लग जाते हैं जो पौधे को खराब कर उसके उत्पादन को गिरा देते हैं लहसुन में विभिन्न प्रकार के लगने वाले रोगो में प्रमुख निम्न है।

तुलासीता (डाउनी मिल्डयू) :–

लहसुन की फसल में पडने वाला यह फंफूद जनित रोग है इसके प्रकोप से लहसुन की पत्तियों की सतह पर सफेद रूई जैसी फंफूद दिखाई पड़ती है इसके प्रकोप से पत्तियां गिर जाती है। इस रोग की रोकथाम करने के लिये स्वच्छ एवं साफ बीजों का बोना चाहियें तथा इस प्रकार के लक्षण फसल पर प्रकट होने पर मैंकोजेब 2.5 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोलकर इसका छिडकाव करे।

झुलसा रोग :–

इस रोग के प्रकोप से लहसुन की फसल की पत्तियों के उपर हल्के नारंगी रंग के धब्बे बन जाते हैं तथा पत्तियां मुरझा एवं पुरी झुलस जाती है इसलिये इसे झुलसा रोग कहा जाता है। इस रोग के नियंत्रण के लिये मैंकोजेब 2.5 ग्राम प्रति लीटर पानी का या कार्बेन्डाजीम 1 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से कवकनाशी दवा का 15 दिन के अन्तराल पर 2 बार छिडकाव करे।

कन्द सड़न रोग :–

यह लहसुन की फसल में पडने वाला प्रमुख रोग है इस रोग के प्रभाव से लहसुन की फसल में सड़न पैदा हो पुरे कन्द को सड़ा देती है तथा यह एक फंफूद जनित रोग है बाद में पुरे कन्द में सड़न कर दुसरे कन्दों मे भी सड़न पैदा कर सकता है। इस प्रकार यह सम्पूर्ण फसल को बरबाद कर सकता

है। अतः इसकी रोकथाम के लिये लहसुन की कलियों को कार्बेन्डाजिम 2 ग्राम प्रति किलो ग्राम की दर से उपचारित कर बुवाई करे जिससे इस रोग के प्रभाव को लहसुन की फसल से दूर किया जा सके।

माईट रोग :—

प्रमुख रूप से यह कीट लहसुन की पत्तियों का रस चूसता हैं जिससे पत्तियों पर पीले धब्बे बन जाते हैं जिसके परिणाम स्वरूप पौधे की बढ़वार रूक जाती है तथा वह फल देने लायक नही रहता है। इसके नियंत्रण के लिये कृषक डाईमेथोयट या एथियान 0.05 प्रतिशत शुरूआती प्रभाव दिखने पर फसल पर छिडकाव करे।

बैंगनी धब्बा :—

लहसुन की फसल में पड़ने वाला यह प्रमुख रोग है इसके प्रभाव से प्रारम्भ में लहसुन की पत्तियों में तथा उपरी तने पर सफेद एवं अन्दर की तरफ धब्बे बनते हैं जिससे प्रभावित होकर तना व पत्ती कमजोर होकर गिर जाती है। फरवरी एवं अप्रेल माह में इसका प्रकोप लहसुन की फसल में देखने को मिलता है। इसकी रोकथाम के लिये मैंकोजेब 2.5 ग्राम प्रति लीटर पानी या कार्बेन्डाजीम 1 ग्राम प्रति लीटर पानी कर दर से कवकनाशी दवा का 15 दिन के अन्तराल पर 2 बार छिड़काव करे।

शीर्ष छेदक कीट :—

इस प्रकार के कीट का प्रकोप लहसुन की पत्तियों के उपर देखने को मिलता है इसके प्रभाव से पहले कीट पत्तियों का भक्षण करता है फिर लहसुन के तने पर वार करता है और उसको अन्दर से सड़ा देता है इसको नियंत्रण करने के लिये कृषको को लहसुन की खेती उपयुक्त फसल चक्र अपनाकर करनी चाहिये एवं कृषि करने में उन्नत तकनीकी का प्रयोग करे। फोरेट 1 से 1.5 किलो ग्राम सक्रिय तत्व प्रति हैक्टयर से छिड़काव करे।

इस प्रकार लहसुन की फसल में कई प्रकार के रोग देखने को मिलते हैं लहसुन की फसल उगाने से लेकर उसके भण्डारण करने मे भी कीटो का प्रकोप देखने को मिलता है अतः जिले के कृषको को लहसुन की फसल को

सावधानी पूर्वक सुरक्षित रखना चाहिये तथा समय–समय पर इसकी सुरक्षा के लिये विभिन्न प्रकार की कीटनाशकों का प्रयोग अनिवार्य रूप से करते रहे।

झालावाड जिले में की जा रही व्यापारिक फसलों में संतरा, सरसों, अफीम, सोयाबीन आदि का प्रमुख स्थान है इसके अलावा भी जिले में कुछ अन्य फसलों की व्यापारिक कृषि की जाती है। अन्य फसलों में धनियां एवं लहसुन का प्रमुख स्थान है इनके उत्पादन मे भी जिले में निरन्तर वृद्वि हो रही है तथा विगत कुछ वर्षो में यह व्यापारिक फसलों में उभरकर सामने आई है। पिछले वर्षो की तुलना में किसान इनकी खेती करने में रूची लेने लगे हैं इसका प्रमुख कारण कम पूंजी निवेश में अधिक उत्पादन का प्राप्त होना है यह मसाले की फसले हैं परन्तु इनका उत्पादन जिले में अधिक मात्रा में किया जा रहा है। जिले मे लहसुन की कृषि धीरे–धीरे व्यापारिक स्वरूप लेने लगी है तथा जिले के अधिकांश कृषक भी इसको बोने में रूची लेने लगे हैं इसका प्रमुख कारण कम क्षेत्रफल में अधिक उत्पादन का होना है तथा इसको बेचते समय उत्पादन का उचित मूल्य मिलना भी कृषको को इस कृषि ने अपनी ओर खींचा है। लहसुन की कृषि ने जिले मे अब सामान्य रूप को छोडकर विशेषीकरण का रूप ले लिया है इसको कषक अधिक क्षेत्रफल में करने लगे हैं, एवं इसका उत्पादन भी अधिक होने लगा है।

लहसुन की कृषि के अलावा व्यापारिक कृषि की अन्य फसलों में धनियां एवं मूंगफली का प्रमुख स्थान है। जिले में लहसुन के बाद धनियें की कृषि भी अधिकांश किसानो के द्वारा की जाती है। धनियां एक शीतकालीन फसल है तथा इसका क्षेत्र अनुसार उत्पादन भी किसानो को अधिक मिलता है एवं उत्पादन का उचित मूल्य भी बाजार मे मिल जाता है।

तालिका संख्या 3.8

झालावाड जिले में लहसुन का वर्षवार क्षेत्र एवं उत्पादन

वर्ष 2005—06 से 2014—15 तक

क्र.स.	वर्ष	क्षेत्रफल (हैक्टेयर में)	उत्पादन (मेट्रिक टन में)
1	2005—06	1685	4428
2	2006—07	2402	6425
3	2007—08	5603	17710
4	2008—09	4505	15472
5	2009—10	5760	18311
6	2010—11	4567	20552
7	2011—12	9748	44841
8	2012—13	7919	33296
9	2013—14	8908	22970
10	2014—15	10242	8194

स्त्रोत — जिला सांख्यिकी रूपरेखा 2016 झालावाड

उपयुक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि जिले में सन 2005—06 में कुल 1685 हैक्टेयर में लहसुन की कृषि की गई है तथा इसका उत्पादन 4428 मेट्रिक टन प्राप्त हुआ है वर्ष 2006—07 में 2402 हैक्टेयर पर लहसुन की कृषि की गई इस वर्ष उत्पादन में पिछले वर्ष की तुलना में वृद्वि हुई इसका उत्पादन बढकर 6425 मेट्रिक टन था।

झालावाड जिले में लहसुन का वर्षवार क्षेत्र एवं उत्पादन वर्ष 2005–06 से 2014–15 तक

आरेख 3.5

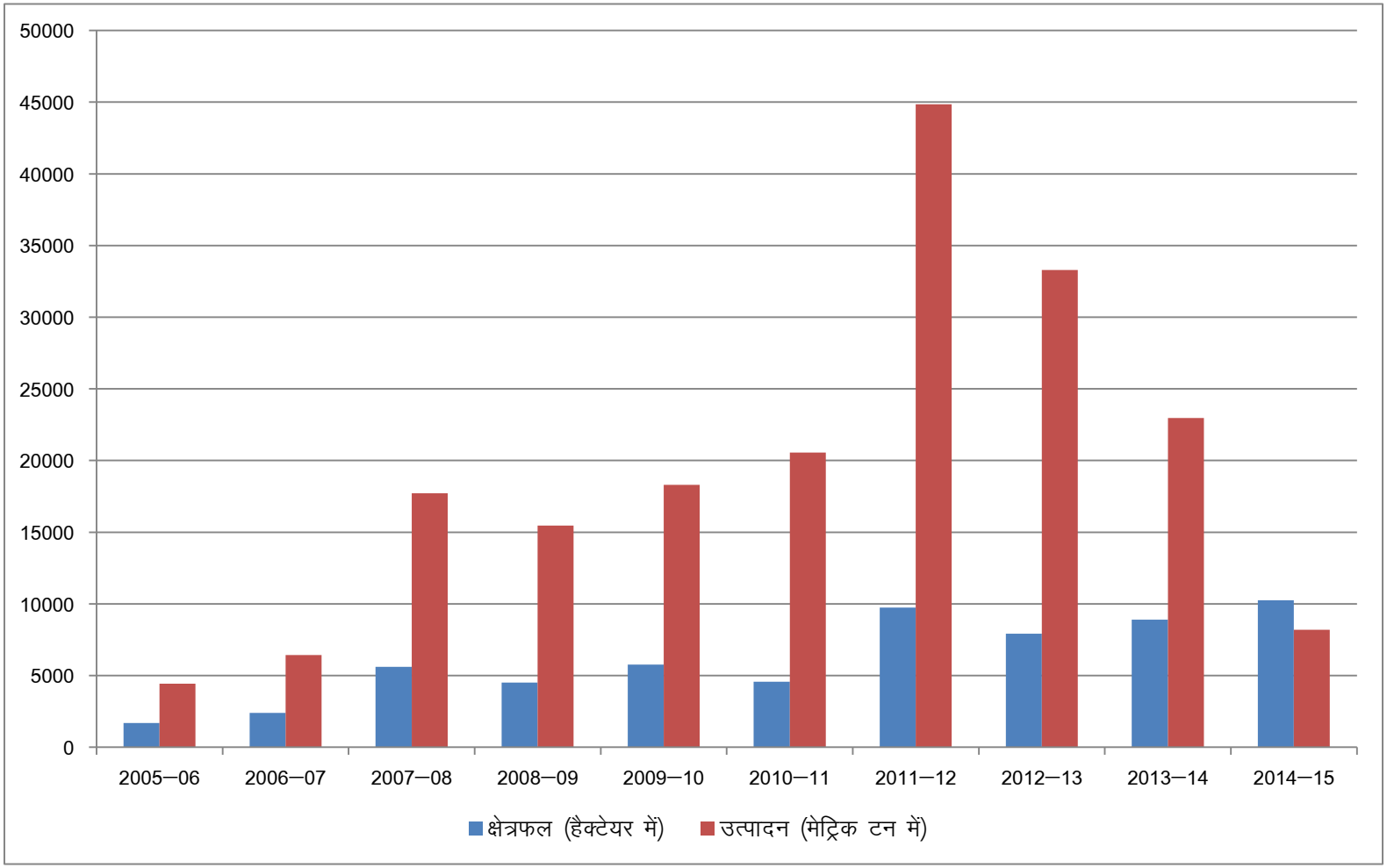

वर्ष 2007—08 में कुल फसलीय क्षेत्र के 5603 हैक्टेयर पर लहसुन की कृषि हुई तथा इसका उत्पादन 17710 मेट्रिक टन प्राप्त हुआ है। वर्ष 2009—10 में इसके क्षेत्रफल एवं उत्पादन में वृद्वि देखी गई जो इस वर्ष 5760 हेक्टेयर पर इसकी कृषि हुई तथा 18312 मेट्रिक टन उत्पादन प्राप्त हुआ है।

वर्ष 2011—12 में इसके उत्पादन में ओर अधिक वृद्वि देखने को मिलती है इस वर्ष इसका उत्पादन 44841 मेट्रिक टन हुआ है जो कुल 10 वर्षो में सबसे अधिक रहा है। वर्ष 2012—13 में 7919 हेक्टेयर पर लहसुन का कृषि कार्य किया गया है तथा किसानों को 33296 मेट्रिक टन उत्पादन प्राप्त हुआ है। वर्ष 2013—14 में पिछले वर्ष की तुलना में इसके क्षेत्रफल में तो वृद्वि हुई है परन्तु उत्पादन में गिरावट देखने को मिलती है इस वर्ष कुल 8908 हैक्टेयर पर लहसुन का कृषि कार्य हुआ है परन्तु इसका उत्पादन पिछले वर्ष की तुलना में कम 22970 मेट्रिक टन ही प्राप्त हुआ है। वर्ष 2014—15 में पिछले सभी वर्षो की तुलना में इस वर्ष इसके क्षेत्रफल में सर्वाधिक वृद्वि देखने को मिलती है। इस वर्ष कुल फसलीय क्षेत्र को 10242 हैक्टेयर इसकी कृषि की गई किन्तु इसका उत्पादन उतना नही मिल सका जितना इसका फसलीय क्षेत्रफल था। इस वर्ष पिछले कई वर्षो की तुलना में इसका उत्पादन मात्र 8194 मेट्रिक टन ही हो पाया है इसका प्रमुख कारण किसानों को समय पर सिंचाई की सुविधाओं का न मिलना तथा मौसमी मार का होना इसके उत्पादन में गिरावट के प्रमुख कारक है।

धनियें की कृषि :—

जिले में हो रही व्यापारिक कृषि के अन्तर्गत धनियें की फसल का प्रमुख स्थान है जिले के अधिकांश भाग पर धनियें की कृषि की जाती है एवं उसका व्यापारिक लाभ लिया जाता है प्राचीनकाल में भारत को मसालों की भूमि कहा जाता था। झालावाड जिले में धनियें की फसल का उत्पादन विगत कुछ वर्षो में बढा है तथा इसके क्षेत्रफल में भी वृद्वि हुई है पहले जहां बहुत कम भाग पर इसकी कृषि की जाती थी आज अधिकांश क्षेत्रों पर धनियें की कृषि का कार्य व्यापक रूप से किया जाता है। धनियां एक प्रकार का बहुउपयोगी मसाला है तथा

इसका उत्पादन कृषको को अधिक लाभ प्रदान करता है। यही कारण है कि जिले में अधिकांश कृषको के द्वारा इसकी कृषि का कार्य किया जाने लगा है।

जिले में उत्पादित हो रहे धनियें की विभिन्न किस्मों को यहां बोया जाता है धनियें की कई प्रकार की किस्मे हैं जो कृषको को अच्छा उत्पादन देती है जिले में बोई जाने वाली धनियें की प्रमुख किस्में निम्न है।

तालिका संख्या 3.9

जिले में बोई जाने वाली धनियें की किस्में

क्र. स.	किस्म	पकने की अवधि	उत्पादन प्रति हैक्टर
1	आर.सी.आर 20	110—115	4—7 क्विंटल
2	आर.सी.आर 41	140—145	7—12 क्विंटल
3	आर.सी.आर 436	110—120	9—11 क्विंटल
4	आर.सी.आर 480	115—116	18—20 क्विंटल
5	सी.एस.—6	120—125	10—15 क्विंटल

आर.सी.आर. 20 :—

यह किस्म सिंचित एवं असिंचित दोनो क्षेत्रो के लिये उपयुक्त है यह किस्म 110 से 115 दिन में पकने वाली तथा इसकी असिंचित क्षेत्र में 4—7 क्विंटल एवं सिंचित क्षेत्र में 10—12 क्विंटल पैदावार प्रति हैक्टेयर प्राप्त हो जाती है।

आर.सी.आर. 41 :—

यह किस्म जहां पर सिंचाई की सुविधा उपलब्ध है वहां पर इसकी खेती करना कृषको के लिये लाभदायक रहता है यह जिले के अधिकांश क्षेत्रो में बोई जाने वाली प्रमुख किस्म है। जिले के साथ ही यह किस्म राज्य के अधिकांश भागो में भी बोई जाने वाली प्रमुख किस्म है। यह किस्म 140 से 145 दिन में पक कर तैयार हो जाती है। इसकी औसत उपज असिंचित क्षेत्रो में जहां सिंचाई का अभाव है वहां 4—7 क्विंटल एवं सिंचित क्षेत्रों में 10—12 क्विंटल प्रति हैक्टेयर उत्पादन होता है।

आर.सी.आर. 436 :—

यह एक अधिक उपज देने वाली एवं कम अवधि मे पकने वाली प्रमुख किस्म है जो लगभग 110—120 दिन में पक कर तैयार हो जाती है। इसे जिले के कृषक सिंचित व असिंचित दोनो प्रकार के क्षेत्रों में बुवाई कर सकते हैं इसके पौध की उंचाई लगभग 65 से.मी. होती है। अतः तेज हवाओं से आड़ी नही होती इस किस्म की उत्पादन क्षमता सिंचित व असिंचित दोनो क्षेत्रो में अलग—अलग पाई जाती है। इसकी औसत उपज सिंचित क्षेत्र में 16 क्विंटल व असिंचित क्षेत्र में लगभग 11 क्विंटल प्रति हैक्टेयर होती है। यह किस्म छाछ्या रोग एवं लोंगिया रोग के लिये मध्यम प्रतिरोधी है।

आर.सी.आर. 480 :—

यह किस्म समय पर बुवाई व सिंचित क्षेत्रो के लिये अधिक उपयुक्त है इसका पौधा मध्यम उंचाई का होता है। 70—75 दिन में फूल आकर 115—116 दिन में पकने वाली इस किस्म में शाखायें अधिक होती है तथा तना मजबूत होता है। उखटा व छाछ्या रोग से मध्यम प्रतिरोगी इस किस्म की औसत उपज 18—20 क्विंटल प्रति हैक्टर होती है।

आर.सी.आर. 684 :—

यह किस्म जिले के उन कृषको के लिये उपयुक्त है जो समय पर बुवाई करते हैं तथा यह सिंचित क्षेत्रो के लिये अधिक उपयुक्त है इसका तना मजबूत होता है। 120—125 दिनों मे पकने वाली यह किस्म उखटा व मध्यम रोग से प्रतिरोधी होती है जिले में यह किस्म किसानों को 18—20 क्विंटल प्रति हैक्टर पैदावार प्रदान करती है।

सी.एस. 6 :—

मोटे दानों वाली यह किस्म जिले में सिंचित व असिंचित दोनो प्रकार के क्षेत्रो के लिये उपयुक्त है कृषक इसे दोनो ही क्षेत्रो में बुवाई कर सकते हैं। शीघ्र पकने वाली यह किस्म 120—125 दिनों में अपना फलाव दे देती है इसके 1000 दानों का भार 12—15 ग्राम होता है। यह किस्म जिले के किसानों के लिये उपयुक्त एवं लाभकारी है असिंचित क्षेत्र में इसका उत्पादन 8—10 क्विंटल प्रति हैक्टेयर होता है तथा सिंचित क्षेत्र में 15—18 क्विंटल प्रति हैक्टेयर उत्पादन होता है यह किस्म कई प्रकार की बीमारियों से प्रतिरोधी होती है।

जिले में उत्पादित कर रहे धनियें की फसल के लिये कृषको को अच्छी किस्म के बीजो का चुनाव करना चाहिये जो कि लगभग 80 से 100 रूपये प्रति किलो के हिसाब से मिल जाते है इसकी अच्छी जानकारी किसान नजदीकी कृषि विज्ञान केन्द्र में सम्पर्क कर अपनी भूमि अनुसार कृषि वैज्ञानिकों से राय लेकर अपने खेत में बुवाई कर सकते हैं जिससे कृषको को अपनी आशा अनुरूप उत्पादन प्राप्त होगा।

जलवायु :—

किसी भी फसल के जीवन काल के लिये उसका वातावरण उसके अनुकूल होना चाहिये जिले में उत्पादित हो रही धनियें की फसल के लिये यहां की

जलवायु इसके लिये पर्याप्त अनुकूल है। धनियां शीतोष्ण जलवायु की फसल है। धनियें की फसल के उत्तम उत्पादन एवं कृषि के लिये सूक्ष्म एवं ठण्डा मौसम सबसे उपयुक्त माना गया है। धनियें की फसल के प्रारम्भिक समय में बीजो के लिये 25^0 से 26^0 सेल्सियस तापमान की आवश्यकता होती है। धनियें की खेती आमतौर पर जिले के किसी भी मिट्टी में की जा सकती है परन्तु धनियें की फसल के लिये उचित जल विकास वाली मिट्टी उपयुक्त रहती है। कृषको को धनियें की खेती करने से पूर्व अपने खेत को अच्छी प्रकार से देखभाल एवं तैयार करने की आवश्यकता होती है। तभी जिले के कृषक धनियें की फसल का अधिक उत्पादन कर सकेंगे।

खाद एवं उर्वक :—

कृषको को चाहिये कि वे अपनी धनियें की फसल बोने से पूर्व एवं बाद में खेत में डाले जाने वाले खाद एवं उर्वरक का विशेष ध्यान रखे। किसान धनियें की अधिक पैदावार प्राप्त करने के लिये 10 से 20 टन गोबर की सड़ी हुई खाद बुवाई से पूर्व प्रति हैक्टर की दर से अपने खेतो में देवे। इसके अलावा असिंचित क्षेत्रो में 20 किलो नत्रजन, 30 किलो फास्फोरस, 20 किलो पोटाश उर्वरकों के रूप में काम मे लेना चाहिये। सिंचाई वाले क्षेत्रों में फास्फोरस तथा पोटाश की सही मात्रा एवं नत्रजन की शेष आदि मात्रा को 02 भागो में विभाजित करके पहली चौथाई मात्रा पहली सिंचाई के समय एवं शेष मात्रा फूल आने पर देवे। अतः कृषको को खेत में अपनी फसल के लिये एक विशेष प्रकार के खाद एवं उर्वरकों के प्रयोग पर ध्यान रखने की जरूरत होती है जिससे किसान अपनी फसल की रक्षा कर सके एवं अधिक उत्पादन प्राप्त कर सके।

सिंचाई :–

धनियें की फसल में सिंचाई की आवश्यकता का ध्यान जिले के कृषको को आवश्यक रूप से रखना चाहिए सिंचाई की सुविधा वाले क्षेत्रों में पलेवा के अतिरिक्त दो सिंचाई की आवश्यकता होती है। पहली सिंचाई शाखा बनते समय बुवाई के 50–60 दिन बाद तथा दूसरी सिंचाई दाना बनते समय 90–100 दिन में करनी चाहिये। जिले के कृषक धनियें की कृषि में नवीन तकनीकों के माध्यम से सिंचाई विधियों को अपनावे। मिनी स्प्रिंकलर से प्रत्येक 12–15 दिन के अन्तराल पर एक दिन में 2.5–2.5 घण्टे तक तीन बार तथा परम्परागत स्प्रिंकलर से 4.5 घण्टे अर्थात 15–15 घण्टे तक तीन बार सिंचाई करने से अधिक लाभ की प्राप्ति होती है।

जैविक नियंत्रणः–

जिले में धनियें की फसल में कीटो की आरम्भिक अवस्था में जैविक कीट नियंत्रण हेतु बी.टी. एवं ब्यूवेरिया 1 किलोग्राम या 1 लीटर प्रति हैक्टर की दर से बुवाई के 30–40 दिन तथा 50–55 दिन बाद छिड़काव करे। जिले के कृषको को रासायनिक कीट नाशकों की जगह जैविक कीट नाशकों को अदला बदली कर अपनाना लाभदायक होता है।

रोग एवं उपचार :–

अन्य सभी प्रकार की फसलों के साथ–साथ जिले में धनियें की फसल में भी कीटों का प्रकोप दिखाई देता है परन्तु इस फसल में अन्य फसलों की तुलना में कीटो का प्रकोप कम पाया जाता है।

चेंपाः—

धनियें की फसल पर आक्रमण करने वाले कीटों में यह पहला कीट है उसके प्रकोप से पौधों में पुष्प आने के समय प्रभाव दिखाई देता है और वह इन फूलों के रस को चूस लेता है। इस कीट के प्रकोप को कम करने के लिये कृषक नीम के तेल को गाय के मूत्र में मिलाकर छिडकाव करे।

उखटा रोगः—

धनियें की फसल में पाये जाने वाले रोगो मे यह सबसे खतरनाक है इसके कारण पौधे मुरझा जाते है और पौधे का विकास रूक जाता है। यह पौधे की किसी भी अवस्था में लगने वाला रोग है। कृषक इस रोग से अपनी फसल को बचाने के लिये अपने खेत को बुवाई से पहले गहरी जुताई करे। बीजो को सदैव कवकनाशी से उपचारित करके ही बोना चाहिये इससे पौधे वृद्वि करने के साथ—साथ रोग रहित रह सके।

छाछ्या रोगः—

धनियें की फसल में लगने वाला छाछ्या रोग फसल को बर्बाद कर देता है इस रोग का प्रकोप पौधे की पत्तियों व टहनियों पर सफेद चूर्ण के रूप में नजर आता है। यह रोग बढने पर सम्पूर्ण पौधा एक सफेद चादर से ढक जाता है। पौधे का हरापन गायब हो जाता है इसकी रोकथाम के लिये जिले के कृषकों को अपनी फसल पर 1.5 किलोग्राम घुलनशील गंधक के 0.3 प्रतिशत घोल को 500 ग्राम प्रति हैक्टेयर की दर से छिड़काव करें। आवश्यकता पड़ने पर या दुबारा रोग दिखने पर 15 दिन के बाद वापिस छिडकाव करें।

झुलसा रोगः—

झुलसे रोग के प्रकोप से भी धनियें की फसल खराब हो जाती है इस रोग की रोकथाम के लिये कृषक मेंकोजेब 1.25 से 1.50 किलो प्रति हैक्टेयर का 0.2 प्रतिशत घोल बनाकर अपनी फसल में छिडकाव करें।

इस प्रकार जिले के कृषको को धनियें की फसल उत्पादन में कई प्रकार की सावधानियां एवं जानकारियां प्राप्त कर धनियें की फसल की कृषि करनी चाहिये जिससे फसल उत्पादन अधिक मात्रा में प्राप्त कर सकें।

तालिका संख्या 3.10

झालावाड जिले में धनियें का वर्षवार क्षेत्र एवं उत्पादन

2005—06 से 2014—15 तक

क्र.स.	वर्ष	क्षेत्रफल (हैक्टेयर में)	उत्पादन (मेट्रिक टन में)
1	2005—06	44390	30796
2	2006—07	61963	100823
3	2007—08	85762	26696
4	2008—09	70575	35435
5	2009—10	82870	70812
6	2010—11	85795	84465
7	2011—12	117368	113236
8	2012—13	72186	72072
9	2013—14	76130	45678
10	2014—15	106697	63985

स्त्रोत — जिला सांख्यिकी रूपरेखा 2016 झालावाड

उपयुक्त तालिका एवं ग्राफ से स्पष्ट है कि वर्ष 2005—06 में कुल फसलीय क्षेत्र के 44390 हैक्टेयर पर धनियें का कृषि कार्य किया गया है तथा उत्पादन इस वर्ष 30796 मेट्रिक टन प्राप्त हुआ।

झालावाड जिले में धनियें का वर्षवार क्षेत्र एवं उत्पादन 2005–06 से 2014–15 तक

आरेख संख्या 3.6

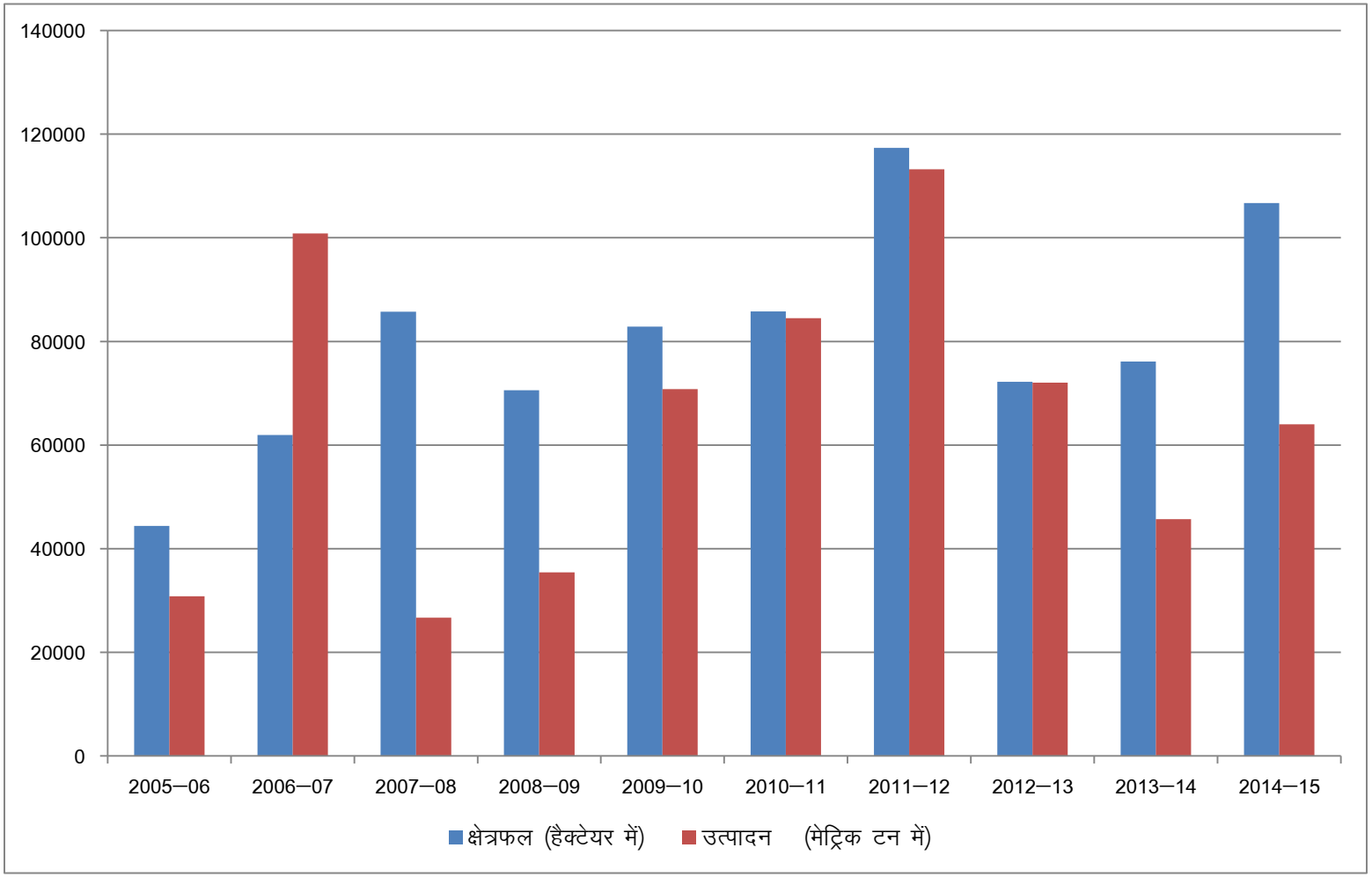

वर्ष 2006—07 में इसका क्षेत्रफल बढकर 61963 हैक्टेयर हो गया है तथा उत्पादन भी बढकर 100823 मेट्रिक टन हुआ । वर्ष 2007—08 में इसकी कुल फसलीय क्षेत्र के 85762 हैक्टेयर पर इसकी कृषि की गई तथा इस वर्ष उत्पादन 26696 मेट्रिक टन प्राप्त हुआ है जो पिछले वर्षो की तुलना में कम हुआ है इसका प्रमुख कारण सिंचाई की सुविधाओं का अभाव एवं मौसम की प्रतिकुलता का होना है। वर्ष 2009—10 में कुल 82870 हैक्टेयर पर धनियें का कृषि कार्य हुआ तथा 70812 मेट्रिक टन उत्पादन प्राप्त हुआ कुल वर्षो में धनियें की फसलीय क्षेत्र एवं उत्पादन में 2011—12 में वृद्वि देखने को मिलती है इस वर्ष कुल फसलीय क्षेत्र के 117368 हेक्टेयर पर धनियें की कृषि की गई तथा उत्पादन 113236 मेट्रिक टन प्राप्त हुआ जो कुल वर्षो में सबसे अधिक है।

वर्ष 2012—13 में पिछले वर्ष की तुलना में इसके क्षेत्रफल एवं उत्पादन में कमी देखने को मिलती है इस वर्ष कुल फसलीय क्षेत्र के 72188 क्षेत्रफल पर ही कृषि कार्य हुआ है तथा इसका उत्पादन 72072 मेट्रिक टन ही प्राप्त हुआ है। वर्ष 2013—14 में कुल फसलीय क्षेत्र के 76130 हैक्टेयर पर इसका कृषि कार्य हुआ है तथा इस वर्ष 45678 मेट्रिक टन उत्पादन प्राप्त हुआ है। वर्ष 2014—15 में इसके क्षेत्रफल में वृद्वि देखने को मिलती है जो पिछले 02 वर्षो की अपेक्षा अधिक थी इस वर्ष कुल फसलीय क्षेत्र के 106697 हैक्टेयर पर धनियें की कृषि का कार्य हुआ तथा इस वर्ष 63985 मेट्रिक टन उत्पादन प्राप्त हुआ है उत्पादन कम रहने का प्रमुख कारण मौसमी दशाओं का होना है मौसम की मार का धनियें के उत्पादन में प्रतिकूलता देखने को मिलती है।

3.6 व्यापारिक कृषि के लिये आधारभूत सरंचना :—

झालावाड जिले में की जा रही व्यापारिक कृषि में प्रमुख फसलों के अन्तर्गत हो रहे उत्पादन एवं परिवर्तित व्यापारिक कृषि परिदृश्य के पीछे यहां कृषि कार्य में प्रयुक्त की जाने वाली नवीन तकनीको का होना है इसके अलावा किसान पारम्परिक प्रक्रिया को छोड़कर कृषि तकनीकी की नवीन विधियां अपनाने लगा है जिसका परिणाम यह हुआ है कि पहले किसान जहां केवल अपनी आजीविका की पूर्ति के लिये ही कृषि कार्य करता था और अपनी जरूरतों को पूर्ण करता था। समय के साथ—साथ जिले के किसानों की सोच मे परिवर्तन आया है जिसका प्रभाव यह हुआ है कि वो अपनी कृषि क्रिया में

परिवर्तन करने लगा है व पुरानी कृषि करने की पद्वतियों को छोड़कर नवीन कृषि पद्वतियों को अपनाने लगा है।

सामान्यतः पहले किसानों को कृषि कार्य में विभिन्न प्रकार की समस्याओं का सामना करना पडता था जिससे ग्रसित होकर वह अपनी कृषि क्रियाओं को नवीन रूप नही दे पाता था किन्तु अब उसकी सोच के बदलने के साथ ही वो कृषि कार्य करने की नवीन जानकारी को भी समझने लगा है एवं वह उसका प्रयोग कृषि कार्य में करने लगा है जिसका परिणाम यह हुआ है कि अब जिले के किसान मात्र खाद्यान्न का ही उत्पादन नही करते हैं बल्कि अपनी कृषि क्रिया को व्यापारिक स्वरूप प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है एवं कई प्रकार की व्यापारिक फसलों का उत्पादन जिले के कृषको के द्वारा किया जाने लगा है।

जिले की व्यापारिक कृषि परिदृश्य एवं आधारभूत सरंचना में यहां फसल उत्पादन के लिये मिलने वाली आवश्यक दशायें जैसे जलवायु, मिट्टी, सिचांई की सुविधा उन्नत बीजों का प्रयोग, रसायनिक कीटनाशको का प्रयोग तथा कृषि विभाग द्वारा प्राप्त सुविधायें आदि का योगदान रहा है। उपरोक्त सभी प्रकार के कारक जिले की व्यापारिक कृषि की आधारभूत सरंचना में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जिले के अधिकांश कृषको के पास अपनी जोतो का आकार छोटा है वे अपना कृषि कार्य उन्ही जोतो में करते हैं उनके द्वारा कृषि करने का कार्य परम्परागत तरीके का ही था परन्तु कृषि कार्य के सम्बन्ध में नवीन जानकारी पाकर तथा इसका उपयोग कृषि कार्य मे कर इसको नवीन रूप प्रदान किया है जो जिले में व्यापारिक कृषि के रूप में उभरकर सामने आई है। जिले की व्यापारिक कृषि की आधारभूत सरंचना में निम्नलिखित तथ्यों का बहुत अधिक प्रभाव पडा है जिससे जिले की प्राचीन कृषि का व्यापारिक कृषि में नवीन परिवर्तन देखने को मिलता है।

1. जलवायु :—

प्रकृति ने किसी भी फसल एवं फलोत्पादन के लिये जलवायु का क्षेत्रानुसार वितरण निश्चित किया है तथा किसी भी फसल का उत्पादन वहीं होता है जहां फसल विशेष के लिये अनुकूलतम जलवायु, वर्षा एवं क्षेत्र मिलता है। वातावरण की अनुकूलता के कारण ही राजस्थान का सर्वाधिक संतरा का

उत्पादन झालावाड़ में ही किया जाता है। संतरे के अलावा अन्य कई प्रकार की फसलों का उत्पादन भी जिले में प्रमुख रूप से किया जाता है यहां की जलवायु संतरे के अलावा विभिन्न प्रकार की व्यापारिक कृषि फसलों सरसों, सोयाबीन, अफीम, लहसुन, धनियां आदि के लिये विशेष रूप से लाभकारी है। किसी भी पौधे एवं फसल की वृद्वि के लिये एक विशेष प्रकार की जलवायु की आवश्यकता होती है। अतः जिले में उत्पादित हो रही विभिन्न प्रकार की फसलों के उत्पादन एवं पौध के जीवनकाल के लिये यहां उत्तम प्रकार की जलवायु पायी जाती है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि जिले के कृषि परिदृश्य को व्यापारिक स्वरूप प्रदान करने एवं कृषि स्वरूप को बदलने में जलवायु एक मुख्य कारक है।

2. मिट्टियाँ :–

तालिका संख्या 3.11

झालावाड़ जिले में मिट्टियों का वितरण तहसील अनुसार

क्र. स.	मिट्टी के प्रकार	क्षेत्रफल (हैक्टेयर में)	तहसीलवार उपलब्ध भूमि
1	काली व बर्डा मिट्टी	117115	झालरापाटन
2	काली मिट्टी	95642	खानपुर
3	काली मिट्टी	88727	असनावर
4	काली मिट्टी	103846	पिडावा, पचपहाड
5	काली बरडा व लाल मिट्टी	132180	अकलेरा
6	बरडा व लाल मिट्टी	95934	मनोहरथाना

स्त्रोत – जिला सांख्यिकी रूपरेखा 2016 झालावाड

अतः इस प्रकार कहा जा सकता है कि जिले में विगत 10 वर्षो में कृषि परिदृश्य में परिवर्तन की प्रवृति स्पष्ट होती है किन्तु इसका और विकास होना अभी बाकी है। जिले में मुख्य रूप से संतरा, सोयाबीन, सरसों आदि का रकबा

बढा है इसका प्रमुख कारण उन्नत बीज, रसायनिक उर्वरक, मिट्टिया आदि है यह सभी फसले लाभदायक व्यापारिक नकदी फसले हैं जिसकी प्रवृति तेजी से वृद्वि की और बढ रही है। अतः इससे प्रभावित होकर जिले के किसान व्यापारिक कृषि करने की और आगे आये हैं जो जिले में व्यापारिक कृषि की आधारभूत सरंचना रखने में महत्वपूर्ण जिले की कृषि क्रिया को व्यापारिक स्वरूप प्रदान करने में मिट्टियों का महत्वपूर्ण योगदान है किसी भी पौधे को अपना जीवन चक्र पुरा करने के लिये सबसे पहले स्वस्थ मृदा की आवश्यकता होती है इसके बिना वह न तो बढोतरी कर पायेगा और न ही अच्छा उत्पादन कर सकेगा।

जिले में उत्पादित की जाने वाली फसलों का जीवन चक्र यहां की मिट्टी में सफलता पूर्वक हो जाता है यहां सभी फसलों के अनुकूल मृदा का जमाव पाया जाता है। जिले की कृषि अर्थ व्यवस्था एवं उसके स्वरूप में परिवर्तन लाने वाले घटकों में मृदा का महत्वपूर्ण स्थान है यहां की मृदा ने जिले के कृषि परिदृश्य को व्यापारिक स्वरूप प्रदान करने में अति महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उपयुक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि जिले में 06 प्रकार की मिटिटयों का वितरण पाया जाता है एवं हर मिट्टी विशेष में एक विशेष फसल का उत्पादन होता है। जिले के अधिकांश भाग में काली मिटटी का जमाव पाया जाता है जो व्यापारिक कृषि फसलों के लिये एक वरदान साबित हुई है।

3. सिंचाँई की सुविधा :–

जिले की कृषि परिदृश्य को व्यापारिक स्वरूप प्रदान करने में सिंचाई की सुविधा का महत्वपूर्ण स्थान है। पौधे की वृद्वि व विकास में सिंचाई का महत्वपूर्ण योग होता है जिससे उत्पादन में वृद्वि होती है। जिले में अधिकांश भागो में नहर द्वारा सिंचाई की जाती है तथा कई भागो में कुओं एवं नलकूपों के माध्यम से सिंचाई का कार्य किया जाता है। पर्याप्त सिंचाई सुविधाओं का विकास होने के कारण ही जिले में व्यापारिक कृषि परिदृश्य में परिवर्तन देखने को मिलता है।

4. उन्नत किस्म के बीजो का प्रयोग :–

किसी भी फसल का अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिये उसके बीजों का उन्नत होना भी आवश्यक है जिले में कृषको के द्वारा उन्नत किस्म के बीजो का प्रयोग अपनी कृषि क्रिया में अपनाया गया है जिसके फलस्वरूप जिले में

सभी व्यापारिक फसलों का उत्पादन निरन्तर बढ रहा है। अधिकांश कृषको के द्वारा उत्तम किस्म के बीजो का प्रयोग लिया जाने लगा है तथा वे सम्बन्धित विभाग से एवं कृषि विज्ञान केन्द्र के कृषि प्रशिक्षण कार्यक्रम में भाग लेकर खेती करने की नवीन जानकारी से परीचित होने लगे है। अतः कहा जा सकता है कि जिले की व्यापारिक कृषि की आधारभूत सरंचना में योगदान कृषको के द्वारा उत्तम किस्म के बीजों का प्रयोग करना रहा है।

5. जिले में रासायनिक खाद का प्रयोग :–

तालिका संख्या 3.12

झालावाड़ जिले में रासायनिक खाद का वितरण (मेट्रिक टन में)

वर्ष 2005–06 से 2014–15 तक

क्र.स.	वर्ष	नाइट्रोजन	फास्फोरस	पोटेशियम
1	2005–06	17155	10636	291
2	2006–07	24329	14553	237
3	2007–08	20084	12560	288
4	2008–09	20598	13540	270
5	2009–10	23245	10535	288
6	2010–11	24605	8562	95
7	2011–12	28248	18584	588
8	2012–13	29826	19363	212
9	2013–14	36420	17246	37
10	2014–15	31668	12398	–

स्त्रोत – जिला सांख्यिकी रूपरेखा 2016 झालावाड

जिले की कृषि व्यवस्था एवं आधारभूत सरंचना में कृषि फसलों मे प्रयुक्त होने वाले रासायनिक खादों का महत्वपूर्ण स्थान है इनके प्रयोग से किसानो ने

अपने फसलो को रोगो से बचाने के साथ–साथ अपने फसल उत्पादन को भी बढाया है। उपयुक्त सारणी से स्पष्ट है कि वर्ष 2005–06 में नाईट्रोजन 17155, फास्फोरस 10636 तथा पोटेशियम 291 मेट्रिक टन था जो वर्ष 2014–15 में बढकर नाइट्रोजन 31668, फास्फोरस 12398 मेट्रिक टन हो गया इनके प्रयोगो से जिले में निरन्तर कृषि फसलों के क्षेत्र एवं उत्पादन में वृद्वि हो रही है तथा जिले की कृषि व्यवस्था को व्यापारिक स्वरूप प्रदान करने में अपना योगदान दिया है।

अतः इस प्रकार कहा जा सकता है कि जिले में विगत 10 वर्षो में कृषि परिदृश्य में परिवर्तन की प्रवृति स्पष्ट होती है किन्तु इसका और विकास होना अभी बाकी है। जिले में मुख्य रूप से संतरा, सोयाबीन, सरसों आदि का रकबा बढा है इसका प्रमुख कारण उन्नत बीज, रसायनिक उर्वरक, मिट्टिया आदि है यह सभी फसले लाभदायक व्यापारिक नकदी फसले हैं जिसकी प्रवृति तेजी से वृद्वि की और बढ रही है। अतः इससे प्रभावित होकर जिले के किसान व्यापारिक कृषि करने की ओर आगे आये हैं जो जिले में व्यापारिक कृषि की आधारभूत सरंचना रखने में महत्वपूर्ण है।

अध्याय चतुर्थ

व्यापारिक कृषि विकास की संभावनाएं व प्रवृत्तियां

4.1 स्थान व काल के अनुसार परिवर्तन :–

प्रस्तुत अध्याय के अन्तर्गत व्यापारिक कृषि विकास की सम्भावनायें एवं प्रवृत्तियों का अध्ययन जिले के विभिन्न क्षेत्रों के अन्तर्गत किया गया है क्योंकि जिले का सम्पूर्ण क्षेत्र समान रूप से विकसित व अविकसित नही रहता है बल्कि इसमें भूमि, आकार, उत्पादन क्षमता, सिंचाई के साधनों के विकास आदि में असमानता होती है जिसके कारण विभिन्न क्षेत्रों के फसल क्षेत्र उत्पादन, उत्पादन विधि, फसल गहनता एवं कृषि विकास के स्तर में भिन्नताऐं उत्पन्न हो सकती है। अतः इस अध्याय के अन्तर्गत जिले के व्यापारिक कृषि करने वाले प्रमुख क्षेत्रों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है तथा यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि व्यापारिक कृषि विकास की दृष्टि से कौनसा क्षेत्र उन्नतशील है और कौनसा क्षेत्र पिछडा हुआ है और इन क्षेत्रो में समय के अनुसार क्या परिवर्तन हुए हैं।

जिले मे व्यापारिक कृषि के विकास में स्थान व काल के अनुसार क्या परिवर्तन हुए हैं इसका समुचित अध्ययन करने के लिए जिले मे फसल प्रारूप एवं उसकी प्रवृत्तियों का अध्ययन एक दशक के अन्तर्गत बोई जाने वाली प्रमुख व्यापारिक फसलों व उनके फसल क्षेत्र एवं उसके समय के अनुसार परिवर्तन की प्रवृत्तियों को स्पष्ट करने के लिये दिया गया है। इससे स्पष्ट होता है कि जिले के अन्तर्गत कौन–कौनसी व्यापारिक फसलें व कितने क्षेत्र में बोई जाती है तथा समय के अनुसार उन्हें धनात्मक प्रवृत्तियां उभरकर आई है या फसल प्रारूप में व्यापारिक फसलों का स्तर घटा है, इन सबका अध्ययन प्रस्तुत अध्याय में किया गया है।

अध्ययन क्षेत्र में वर्तमान परिस्थितियों में फसलों में निरन्तर वृद्वि हो रही है तथा कृषि परिदृश्य में परिवर्तन देखने को मिलता है जिले में खादय फसलों के साथ–साथ व्यापारिक कृषि फसलों के क्षेत्र में भी वृद्वि हो रही है। मौसम की अनियमितता एवं कृषि अनुकूलता की परिस्थितियों ने जिले के किसानों को अपनी फसलीय स्वरूप में परिवर्तन करने के लिये प्रेरित किया है। अतः इन

स्थितियों में जिले में व्यापारिक कृषि परिदृश्य में समय व स्थान के अनुसार क्या परिवर्तन हुए हैं तथा क्षेत्र विशेष परम्परागत अवस्था से किस प्रकार भिन्न है इन सभी तथ्यों को स्पष्ट करने के लिये पिछले एक दशकीय (2005—06 से 2014—15) में फसल प्रारूप का अध्ययन 10 वर्षीय भागो में बांटकर किया गया है।

तालिका संख्या 4.1

झालावाड़ जिले में व्यापारिक फसलों का वितरण

(क्षेत्र0 है0 में)

क्र.स.	वर्ष	सोयाबीन	धनियां	सरसों	संतरा	लहसुन	अफीम
1	2005—06	189406	44390	75974	6562	1685	299
2	2006—07	205629	61963	72194	6777	2402	273
3	2007—08	203288	85762	27747	11035	5603	65
4	2008—09	224695	70575	28442	11560	4505	51
5	2009—10	230560	82870	30540	7625	5760	171
6	2010—11	240086	85795	32622	8971	4567	196
7	2011—12	252058	117368	32390	9148	9748	76
8	2012—13	271071	72186	79561	9928	7919	12
9	2013—14	288591	76130	71244	10211	8908	03
10	2014—15	251582	106697	30156	11427	10242	13

स्त्रोत — जिला सांख्यिकी रूपरेखा 2016 झालावाड

झालावाड़ जिले में व्यापारिक फसलों का वितरण (क्षेत्र0 है0 में)
आरेख संख्या– 4.1

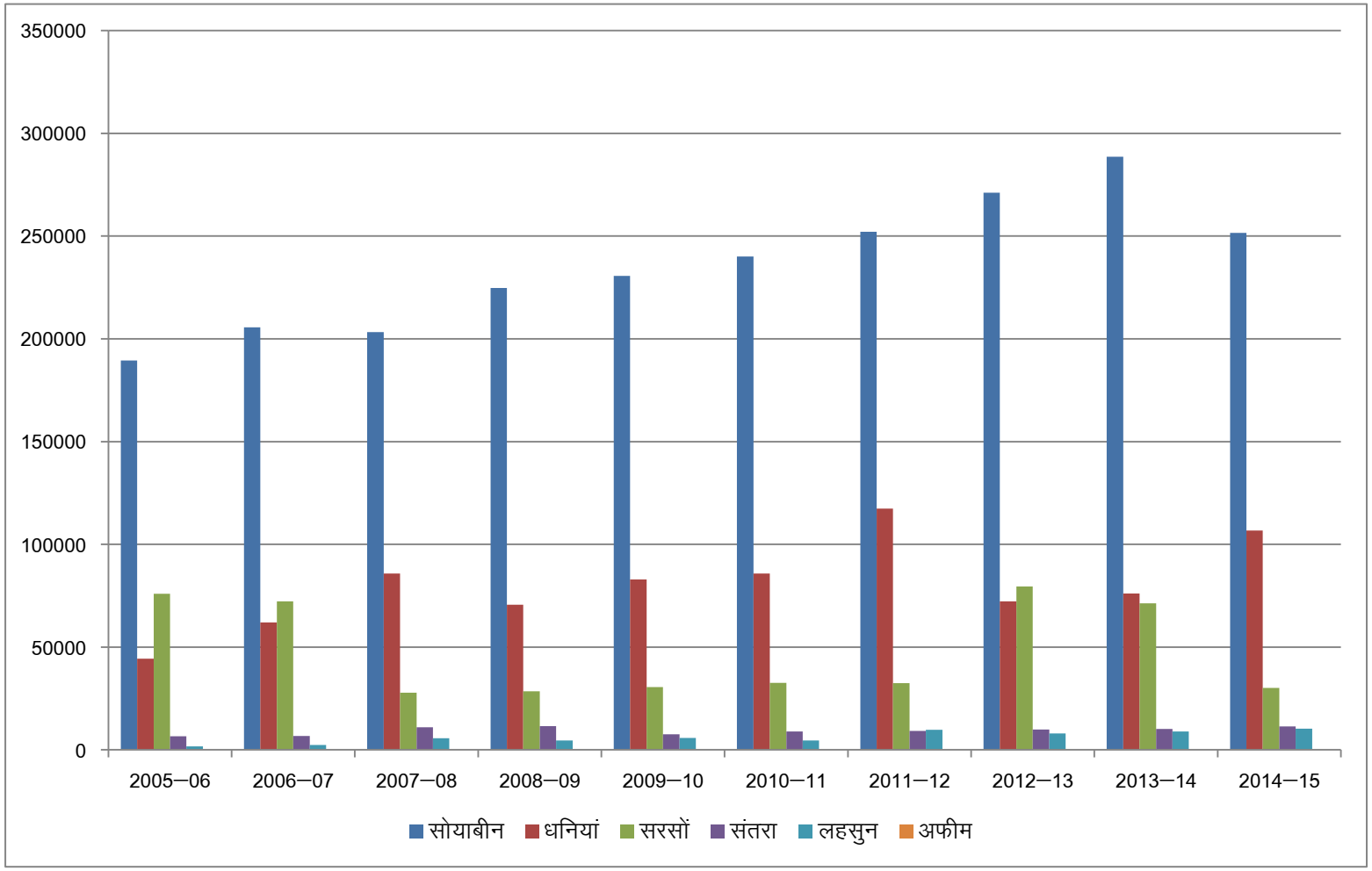

तालिका संख्या 4.2

झालावाड़ जिले में व्यापारिक फसलों का उत्पादन (मेट्रिक टन में)

क्र.स.	वर्ष	सोयाबीन	धनियां	सरसों	संतरा	लहसुन	अफीम (क्वि.में)
1	2005—06	190127	30796	113892	84518	4428	18.08
2	2006—07	210398	100823	114794	835876	6425	8.51
3	2007—08	232201	26696	44156	55897	17710	2.87
4	2008—09	336734	33435	46472	151885	15472	9.72
5	2009—10	315410	70812	49652	266372	18312	2.83
6	2010—11	384138	84465	58720	197481	20552	2.57
7	2011—12	396472	113236	64438	203521	44841	1.09
8	2012—13	374069	72072	127307	210422	33296	6.00
9	2013—14	202014	45678	56995	266509	22970	0.17
10	2014—15	226424	63985	24121	258611	8194	3.63

स्त्रोत – जिला सांख्यिकी रूपरेखा 2016 झालावाड

झालावाड़ जिले में व्यापारिक फसलों का उत्पान (मेट्रिक टन में)

आरेख संख्या– 4.2

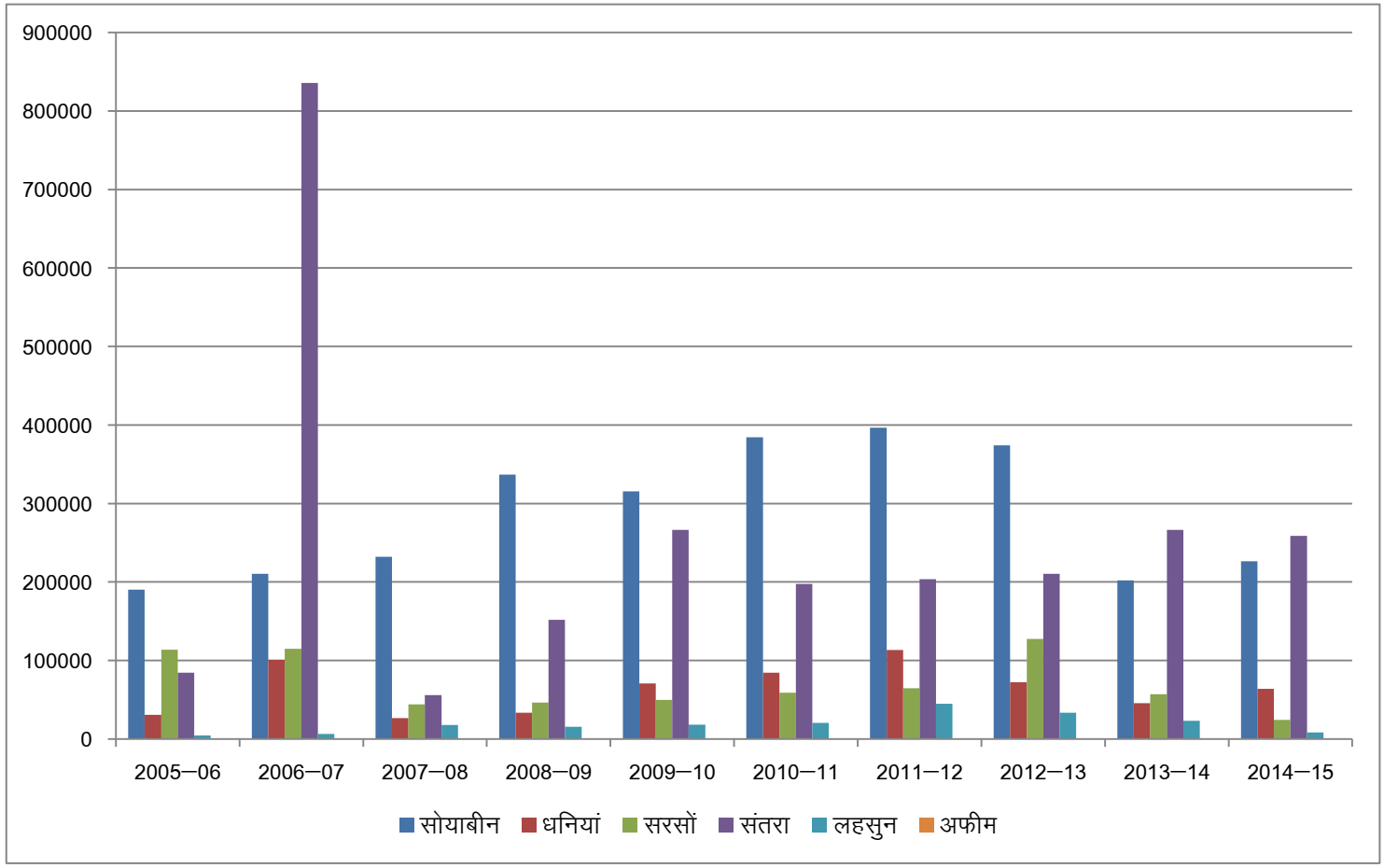

सोयाबीन :–

उपर्युक्त तालिकाओं से स्पष्ट होता है कि जिले में व्यापारिक कृषि फसल प्रारूप के अन्तर्गत मुख्य रूप से बोई जाने वाली तथा उत्पादन देने वाली फसलों में सोयाबीन का प्रमुख स्थान है जिसका क्षेत्र एवं उत्पादन अन्य सभी फसलों की तुलना में सर्वाधिक है। सोयाबीन की कृषि जिले के अधिकांश भाग मे की जाती है। वर्षा ऋतु के आगमन पर इस फसल की बुवाई की जाती है तथा इस फसल के लिये यहां की मिट्टी व जलवायु भी अधिक उत्पादन के लिये उत्तरदायी है। सोयाबीन की फसल में स्थान व काल के अनुसार परिवर्तन को देखा जाये तो यह फसल वर्ष 2005–06 में 189406 हैक्टेयर पर बोई गई थी जो वर्ष 2014–15 में बढकर 251582 हेक्टेयर हो गई जो पिछले 10 वर्षो में इसके क्षेत्रफल में 62176 हेक्टेयर की वृद्वि हुई है। इसके क्षेत्रफल में बढोतरी के प्रमुख कारणों मे जिले में सिंचाई की सुविधाओं मे वृद्वि होना है तथा कम लागत में अधिक उत्पादन का होना एवं कृषि के लिये अनुकूलतम जलवायु का विद्यमान होना प्रमुख है।

इसके क्षेत्रफल में बढोतरी के साथ–साथ इसके उत्पादन मे भी वृद्वि देखने को मिलती है वर्ष 2005–06 में कुल 190127 मेट्रिक टन उत्पादन हुआ है जो वर्ष 2014–15 में बढकर 226424 मेट्रिक टन हो गया है जो वर्ष 2005–06 की तुलना में 39297 मेट्रिक टन अधिक हुआ है। इसके क्षेत्रफल में वृद्वि की बात की जाये तो इस दशक में सोयाबीन के क्षेत्र में 62.18 अर्थात 32. 83 प्रतिशत की वृद्वि हुई है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि जिले में पहले जहां इसकी कृषि का क्षेत्र सीमित था एवं जिले के बहुत कम क्षेत्रफल पर इसकी कृषि की जाती थी समय के परिवर्तन के साथ–साथ इसकी कृषि स्वरूप में भी परिवर्तन देखने को मिलते हैं। अब यह जिले की एक प्रमुख व्यापारिक फसल के रूप में उभर कर सामने आई है जिसका क्षेत्रफल एवं उत्पादन अन्य फसलों की तुलना में सर्वोपरी है।

जिले में सोयाबीन की कृषि पिडावा, गंगधार व खानपुर तहसील के क्षेत्रों मे प्रमुख रूप से की जाती है इनके अलावा झालरापाटन तहसील के कुछ क्षेत्र तथा पचपहाड तहसील के कुछ क्षेत्र आते हैं।

धनियां :–

सोयाबीन के बाद जिले में प्रमुख रूप से बोई जाने वाली व्यापारिक फसलों धनियें की फसल का स्थान है इसका प्रमुख कारण यहां प्रति हैक्टर धनियें का उत्पादन एवं कृषि क्षेत्रफल का होना है धनियें की फसल में स्थान व काल के अनुसार परिवर्तन को देखा जाये तो यह फसल वर्ष 2005–06 में 44390 हैक्टेयर पर बोई गई थी जो वर्ष 2014–15 में बढकर 106697 हैक्टेयर हो गई जो पिछले 10 वर्षो में इसके क्षेत्रफल में 62307 हैक्टेयर की वृद्वि हुई है। इसके क्षेत्रफल में बढोतरी के प्रमुख कारणों में सिंचाई की सुविधाओं एवं कृषि कार्य में कम लागत का होना है।

इसके क्षेत्रफल में बढोतरी के साथ–साथ इसके उत्पादन में भी वृद्वि देखने को मिलती है वर्ष 2005–06 में कुल 30796 मेट्रिक टन उत्पादन हुआ जो वर्ष 2014–15 में बढकर 63985 मेट्रिक टन हो गया जो वर्ष 2005–06 की तुलना में 33189 मेट्रिक टन अधिक हुआ है। इस प्रकार जिले में धनियें के क्षेत्रफल में भी वृद्वि हुई है यह वृद्वि 62307 हैक्टेयर अर्थात 58.39 प्रतिशत की वृद्वि रही जो सोयाबीन की कृषि क्षेत्रफल से अधिक रही है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि जहां पहले इसका कृषि कार्य जिले के कुछ ही भागो में किया जाता था परन्तु अब यह जिले के अधिकांश भागो में बोई जाने वाली प्रमुख फसल है। इसका प्रमुख कारण कम लागत में अधिक उत्पादन का होना है।

धनियें की कृषि मुख्य रूप से करने वाली तहसीलों में पिडावा, खानपुर एवं पचपहाड तहसीलों का प्रमुख स्थान है यहां इसका कृषि कार्य अधिकांश क्षेत्रो में प्रमुखता से किया जाता है।

सरसोंः–

धनियें की फसल के बाद बोई जाने वाली व्यापारिक फसलों के क्षेत्रफल में सरसों का स्थान आता है इसका कृषि कार्य भी यहां व्यापक रूप से किया जाता है। सरसों फसल शीत ऋतु में बोई जाती है वर्ष 2005–06 में सरसों का कुल फसलीय क्षेत्र में 75974 हेक्टेयर भाग था जो वर्ष 2014–15 में 30156 हैक्टेयर पर इसकी कृषि की गई इसके क्षेत्रफल में अन्य फसलों की तुलना में गिरावट आई है यह गिरावट 60.30 के लगभग रही है जिले में धनियें की

फसल में मौसम के अनुसार इसके क्षेत्रफल में गिरावट व बढोतरी होती रहती है।

धनियें के क्षेत्रफल में गिरावट आने के बाद भी इसके उत्पादन में कई–कई वर्षो में वृद्वि देखने को मिलती है वर्ष 2005–06 में धनियें का उत्पादन 30796 मेट्रिक टन हुआ जो वर्ष 2014–15 में बढबर 63985 मेट्रिक टन हो गया है। इसके उत्पादन में 2005–06 की तुलना में 35189 मेट्रिक टन उत्पादन अधिक हुआ है समय के परिवर्तन के साथ–साथ इसके कृषि स्वरूप में भी परिवर्तन देखने को मिलता है यह जिले की अन्य फसलों की भांति एक व्यापारिक फसल के रूप में उभरकर सामने आई है।

जिले में सरसों की अधिकांश कृषि करने वाली तहसीलो में खानपुर तहसील का प्रमुख स्थान आता है। जिले का अधिकांश सरसों का उत्पादन इसी तहसील में किया जाता है इसके बाद जिले की अन्य तहसीलों के क्षेत्रो में भी इसकी कृषि की जाती है।

संतरा :–

जिले की व्यापारिक कृषि फसलों में संतरे की बागवानी का महत्वपूर्ण स्थान है इस ओर किसानों की रूचि निरन्तर बढ रही है तथा किसान इसकी बागवानी करने की ओर अधिक प्रेरित हुए हैं। इसका प्रमुख कारण अधिक उत्पादन के साथ–साथ बाजार मूल्य भी अधिक मिलना है वर्ष 2005–06 में जिले के कुल 6562 हैक्टर पर संतरे की बागवानी की गई। जो वर्ष 2014–15 में बढकर 11427 हैक्टर हो गई इसके कृषि क्षेत्र में 4865 हैक्टेयर की वृद्वि हुई अर्थात 42.57 प्रतिशत ज्यादा क्षेत्रफल में इसकी बागवानी की गई।

क्षेत्रफल में वृद्वि के साथ–साथ इसके उत्पादन मे भी वृद्वि वर्ष दर वर्ष होती गई वर्ष 2005–06 में संतरे का उत्पादन 84518 मेट्रिक टन था वह वर्ष 2014–15 में बढकर 258611 मेट्रिक टन हो गया जो वर्ष 2005–06 की तुलना में 174093 मेट्रिक टन अधिक हुआ है। संतरे की बागवानी में निरन्तर वृद्वि होने के कारणों में यहां की जलवायु का इसके अनुकूल होना है साथ ही कृषि सम्बन्धित विभागो द्वारा विभिन्न प्रकार की योजनाओं का होना है जिसका लाभ उठाकर जिले के किसान संतरा उत्पादन में निरन्तर वृद्वि कर रहे हैं।

संतरा उत्पादन करने वाली जिले की तहसीलों में झालरापाटन, पचपहाड तहसीलों का प्रमुख स्थान है अन्य तहसीलों में अकलेरा, मनोहरथाना, खानपुर, गंगधार तहसील का संतरा उत्पादन में स्थान आता है।

लहसुन :—

जिले में लहसुन की कृषि ने भी विगत कुछ वर्षो में व्यापारिक रूप धारण किया है जिले मे पहले किसान जहां इसको मात्र आवश्यकतानुसार ही खेती करता था परन्तु कुछ वर्षो में इसके कृषि क्षेत्रफल में निरन्तर बढोतरी हुई है तथा जिले के अधिकांश किसानों के द्वारा इसका कृषि कार्य किया जाता है। वर्ष 2005—06 में यह कुल 1685 हैक्टेयर क्षेत्रफल पर इसकी कृषि की गई, तथा इसमें वर्ष दर वर्ष इसके क्षेत्रफल में बढोतरी होती गई जो वर्ष 2014—15 में बढकर 10242 हेक्टेयर हो गई। विगत 10 वर्षो में इसके क्षेत्रफल में 8857 हैक्टेयर की धनात्मक वृद्वि हुई है अर्थात 83.54 प्रतिशत क्षेत्रफल की वृद्वि हुई है जिले में लहसुन की अधिकांश कृषि खानपुर, झालरापाटन एवं पिडावा तहसील मे की जाती है। यहां लहसुन के लिये अनुकूल जलवायु एवं सिंचाई की पर्याप्त सुविधाओं का होना इसकी कृषि को बढावा देता है।

लहसुन की कृषि क्षेत्र में वृद्वि के साथ—साथ इसके उत्पाद मे भी वर्ष दर वर्ष वृद्वि देखने को मिलती है वर्ष 2005—06 में 4428 मेट्रिक टन पर इसका कृषि कार्य किया गया है जो वर्ष 2014—15 में बढकर 8194 मेट्रिक टन हो गया है जो वर्ष 2005—06 की तुलना में उत्पादन दोगुना है। जिले की व्यापारिक कृषि परिदृश्य को बदलने में लहसुन की कृषि अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। अब यह जिले में अधिकांश किसानो के द्वारा की जाने वाली कृषि बन गई है।

अफीम :—

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि जिले मे बोई जाने वाली प्रमुख व्यापारिक कृषि फसलों में अफीम की कृषि का क्षेत्र नगण्य है इसका क्षेत्रफल एवं उत्पादन अन्य फसलों की तुलना में बहुत कम है। इसका प्रमुख कारण सरकार की नीतियों का होना है, अफीम की कृषि सम्बन्धित विभाग द्वारा जारी पट्टे के आधार पर की जाती है जिससे यह कृषि निम्न क्षेत्र पर तथा निम्न उत्पादन करती है। अफीम की कृषि जिले में वर्ष 2005—06 में कुल फसलीय

क्षेत्र के 299 हैक्टेयर पर इसका कृषि कार्य हुआ जो वर्ष 2014–15 में घटकर मात्र 13 हैक्टेयर रह गया है। इसकी कृषि के निरन्तर घटते क्षेत्रफल का प्रमुख कारण किसानों का सरकार की नीतियों पर निर्भर होना है।

क्षेत्रफल में कमी के साथ–साथ इसके उत्पादन में भी कमी देखने को मिलती है। वर्ष 2005–06 में यहां कुल उत्पादन 18.08 क्विंटल हुआ जो वर्ष 2014–15 में घटकर 3.63 क्विंटल मात्र ही रह गया जो वर्ष 2005–06 की तुलना में 14.45 क्विंटल उत्पादन कम प्राप्त हुआ है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि अफीम के कृषि परिदृश्य में इसके उत्पादन एवं क्षेत्रफल में निरन्तर कमी हो रही है। अफीम के कृषि परिदृश्य को बढ़ावा देने के लिये राज्य सरकार को कृषकों को हितार्थ ऐसे कार्यक्रम अपनाये जाये जिससे इसकी कृषि के क्षेत्रफल में बढोतरी के साथ–साथ इसके उत्पादन में भी वृद्वि हो।

इस प्रकार झालावाड जिले में स्थान व काल के अनुसार व्यापारिक कृषि प्रारूप में परिवर्तन स्पष्ट दिखाई दे रहा है जिले में अन्य फसलों को छोडकर व्यापारिक कृषि फसलों को कृषि क्षेत्रफल में निरन्तर वृद्वि हो रही है। सोयाबीन एक लाभकारी फसल होने के कारण किसानों का झुकाव इसकी और अधिक बढ रहा है। इस परिवर्तन एवं किसानों का फसलों के प्रति रूचि का प्रमुख कारण उनकी सोच में बदलाव का आना है समय के परिवर्तन के साथ–साथ वह अपनी कृषि कार्य मे भी परिवर्तन कर रहा है। आज से कुछ वर्षो पहले जहां इन फसलों का क्षेत्रफल नगण्य था आज वो जिले के अधिकांश भाग पर बोई जाती है।

जिले में कृषि क्रिया के व्यापारिक स्वरूप में बदलने के प्रमुख कारण उभरकर सामने आये हैं जो निम्न है।

- उन्नत किस्म के बीजो का प्रयोग करना।
- किसानों के द्वारा खेती करने की नवीन तकनीको पर इस्तेमाल करना।
- सिंचाई के साधनों का पर्याप्त विकास होना।
- किसानों द्वारा सम्बन्धित कृषि विभाग के विभिन्न प्रकार के कार्यक्रमों जैसे कृषक प्रशिक्षण कार्यक्रम, मृदा स्वास्थ्य, कृषक भ्रमण कार्यक्रम आदि में खेती से सम्बन्धित विभिन्न प्रकार की जानकारी प्राप्त करना।
- सरकार द्वारा देय योजनाओं का लाभ उठाना।

- उर्वरक एवं कीटनाशकों का प्रयोग।
- कृषि में मशीनीकरण का प्रयोग।

4.2 कुल फसलीय क्षेत्र में व्यापारिक फसलों का अनुपात :–

तालिका संख्या 4.3

झालावाड़ जिले में कुल फसलीय क्षेत्र में व्यापारिक फसलों का अनुपात

क्र. स.	वर्ष	कुल बोया गया क्षेत्र. (है0)	व्यापारिक फसलों का कुल क्षेत्र. (प्रति.)	अन्य फसलों का क्षेत्र(प्रति.)
1	2005–06	465164	68.34	31.66
2	2006–07	520443	67.10	32.90
3	2007–08	510502	65.33	34.67
4	2008–09	522604	65.03	34.97
5	2009–10	540810	66.09	33.91
6	2010–11	559612	66.52	33.48
7	2011–12	601081	70.01	29.99
8	2012–13	614323	71.72	28.28
9	2013–14	646729	70.37	29.63
10	2014–15	581328	70.55	29.45

झालावाड जिले में सामान्यतः सभी प्रकार की फसलों को बोया जाता है इनमें प्रमुख रूप से व्यापारिक कृषि फसलों की प्रधानता पाई जाती है जिले के किसान हर वर्ष अन्य फसलों की अपेक्षा व्यापारिक कृषि फसलों सरसों, सोयाबीन, संतरा , धनियां, लहसुन व अफीम की कृषि अधिक भाग में की जाती है।

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि जिले में सन 2005–06 में कुल बोया गया क्षेत्रफल 465164 हैक्टेयर था इसमें व्यापारिक कृषि फसलों का अनुपात 68.34 प्रतिशत था तथा इसके अलावा बचे हुये भू–भाग 31.66 पर अन्य प्रकार की फसलों की कृषि की गई। सन 2006–07 में कुल 520443 हैक्टेयर पर कृषि कार्य किया गया इसमें व्यापारिक कृषि फसलों का 67.10 प्रतिशत क्षेत्र था तथा अन्य कृषि फसलों का क्षेत्रफल 32.90 प्रतिशत रहा। सन 2007–08 में यहां कुल 510502 हैक्टेयर पर कृषि कार्य किया गया जिसमें व्यापारिक फसलों की कृषि 65.33 प्रति7शत भाग पर की गई तथा शेष 34.67 प्रतिशत भाग पर अन्य फसलों की कृषि की गई। सन 2008–09 से 2010–11 में जिले में व्यापारिक कृषि फसलों के क्षेत्रफल में ज्यादा अंतर नही देखा गया है। 2008–09 में कुल बोये गये क्षेत्र के 65.03 प्रतिशत भाग पर व्यापारिक कृषि फसलों की कृषि की गई तथा शेष 34.97 प्रतिशत पर अन्य फसलों की कृषि की गई। सन 2009–10 में कुल बोये गये क्षेत्र के 66.09 प्रतिशत पर तथा 2010–11 में कुल 66.52 प्रतिशत भाग पर व्यापारिक कृषि फसलों की खेती की गई तथा अन्य कृषि फसलों का प्रतिशत 2009–10 में 33.91 तथा 2010–11 में 33.48 प्रतिशत रहा है।

सन 2011–12 में कुल बोये गये क्षेत्र में व्यापारिक कृषि फसलों का अनुपात अधिक देखने को मिलता है। इस वर्ष कुल 601081 हेक्टेयर पर कृषि कार्य किया गया इसमें व्यापारिक कृषि फसलों का अनुपात पिछले वर्षो की तुलना में अधिक रहा है जो 70.01 प्रतिशत भाग पर इसका कृषि कार्य किया गया तथा अन्य कृषि फसलों का 29.99 प्रतिशत रहा सन 2012–13 में कुल बोये गये क्षेत्र के 71.72 प्रतिशत भाग पर व्यापारिक कृषि फसलों की खेती की गई शेष बचे 28.28 प्रतिशत भाग पर अन्य कृषि फसलों की कृषि की गई।

सन 2013–14 में कुल कृषि क्षेत्र के 70.37 प्रतिशत भाग पर व्यापारिक कृषि फसलों की कृषि की गई तथा शेष 29.63 प्रतिशत भाग पर अन्य फसलों का कृषि कार्य हुआ। वर्ष 2014–15 में यहां कुल बोये गये क्षेत्र के 70.55 प्रतिशत भाग पर व्यापारिक फसलों की कृषि की गई तथा शेष बचे हुये 29.45 प्रतिशत भाग पर अन्य फसलों की कृषि की गई।

अतः वर्णन से स्पष्ट है कि जिले में व्यापारिक कृषि फसलों का अनुपात अन्य कृषि फसलों की अपेक्षा अधिक रहा है, यहां के किसानों के द्वारा कुल

फसलीय क्षेत्र के अधिकांश भाग पर मौसमवार व्यापारिक फसलों की कृषि की जा रही है तथा अन्य फसलों की कृषि कम भाग पर की जा रही है। पिछले 10 वर्षो में व्यापारिक कृषि फसलों का क्षेत्रफल 2012–13 में 71.72 प्रतिशत सबसे अधिक रहा है तथा सबसे कम 2008–09 में 65.03 प्रतिशत रहा है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि जिले की कुल फसलीय क्षेत्र में व्यापारिक कृषि फसलों का परिदृश्य अधिक देखने को मिलता है।

4.3 सरकारी, सहकारी, गैरसरकारी संस्थाओं का योगदान

जिले में की जा रही व्यापारिक कृषि के विकास में कई संस्थाएँ अपना योगदान दे रही है। झालावाड़ जिले की ग्रामीण जनसंख्या की आजीविका का आधार कृषि है अतः कृषि के क्षेत्र में खुशहाली से ही खुशहाल झालावाड़ का सपना पूरा होगा। जिले में किसान कई प्रकार की व्यापारिक फसलों का उत्पादन कर विकास की ओर अग्रसर हो रहें है। इसके लिए फसलों के अधिक उत्पादन हेतु कई प्रकार की संस्थाए, विभाग इसमें अपना योगदान दे रहें है। जिले में संतरा उत्पादन करने वाले किसानों के लिए अधिक उत्पादन करने हेतु उद्यान विभाग द्वारा बूंद–बूंद सिंचाई कार्यक्रम फलदार पौधों की रोपाई एवं देखभाल तथा उक्त फसलों के उत्पादन की उन्नत विधियाँ एवं राष्ट्रीय उद्यानिकी मिशन के तहत कृषकों को कई प्रकार से सुविधाऐं प्रदान करता है। जिले में इनके प्रसंस्करण एवं निर्यात की विपुल संभावनाओं को दृष्टिगत रखते हुए उत्पादन वृद्धि के साथ ही इनकी गुणवत्ता में भी सुधार करना आवश्यक है ताकि झालावाड़ जिला अन्य जिलों के साथ–साथ अन्तराज्यीय प्रतिस्पर्धा में जिले के व्यापारिक कृषि करने वाले किसान खरे उतर सके तथा फसल उत्पादन में पूंजी निवेश को बढ़ावा मिल सके। उद्यानिकी फसलों का अधिकतम एवं सफल बीज उत्पादन तभी संभव है जब इनके उत्पादन को बढ़ावा देने वाली उपलब्ध तकनीकी की जानकारी किसानों को उनके खेत तक पहुचें।

जिले के किसानों के लिए राज्य सरकार एवं सहकारी विभाग फसलों के उत्पादन बढ़ाने में प्रयत्नशील है। कई प्रकार के अभियानों के दौरान सहकारिता विभाग भी किसानों के कल्याण के लिए समर्पण की भावना से कार्य करने में सक्रिय भूमिका निभा रहा है। सहकारिता जन आंदोलन है ग्रामीण क्षेत्रों में सहकारिता विभाग अपनी सहकारी समितियों के जरिये किसानों को ऋण सहायता के रूप में खेती के संसाधन दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

विभाग द्वारा प्रयास रहते है कि किसानों को फसली ऋण आसान ब्याज दरो पर सुलभ हो। इसके साथ ही विभाग सहकारी बैंकों के जरिये किसानों को नलकूप, बोरवेल, कुआँ गहरा करने एवं कुओं पर डीजल व विद्युत पम्पसेट लगाने, बूंद–बूंद सिंचाई एवं फव्वारा सिंचाई संयंत्रों के लिए ऋण दिलाने की कारगर व्यवस्था करता है। इसके अलावा भी सहकारी विभाग किसानों को डेयरी, मुर्गीपालन, मछलीपालन, सुअर पालन, बकरी पालन को अपनाने और किसानों की आय में बढ़ोतरी के लिए 5 से 7 वर्ष की अवधि के सस्ती दर पर ऋण भी उपलब्ध कराता है। विभाग की इस तरह की कई योजनाए है जिनका उपयोग किसानों के हितार्थ में किया जा रहा है।

जिले के किसानों के लिए कृषि विज्ञान केन्द्र एवं कृषि विश्वविद्यालय द्वारा भी किसानों को कृषि विशेषज्ञों से रूबरू कराने के लिए तथा मौके पर ही कृषि आदान उपलब्ध हो सके इसके लिए राज्य सरकार के कृषि विभाग द्वारा ग्राम पंचायत स्तर से लेकर राज्य स्तरीय कई प्रकार के किसानों के लाभ के लिए कई प्रकार के कार्यक्रम संचालित किये गये है। इन कार्यक्रम एवं अभियान के दौरान कृषि वैज्ञानिकों एवं कृषि विपणन कार्मिकों द्वारा फसलोत्तर प्रबन्धन की जानकारी के साथ कृषि विपणन विभाग एवं राजस्थान राज्य कृषि विपणन बोर्ड द्वारा किसानों की सहायतार्थ चलाई जा रही विभिन्न प्रकार की योजनाओं के तहत सहायता भी मौके पर उपलब्ध करा दी जाती है।

कृषि विभाग द्वारा किसानों को उन्नत बीज, उर्वरक, पौध संरक्षण रसायन, जैव उर्वरक, जिंक सल्फेट व अन्य हाईटेक आदान कृषकों तक पंहुचाने के प्रयास किये जा रहें है। कृषि विभाग द्वारा समय–समय पर किसानों के लिए कृषक मार्गदर्शिका पुस्तकों को सरल भाषा में प्रकाशित कर किसानों को उपलब्ध कराई जा रही है। इन पुस्तिकाओं में कृषि से सम्बन्धित विभागों द्वारा किये जाने वाले कार्यक्रमों की जानकारी संकलित की जाती है। इस प्रकार की पुस्तिकांए भी जिले के किसानों के लिए बहुत उपयोगी साबित होगी। इस प्रकार के विभाग द्वारा अभियानों से किसान भाई कृषि से सम्बन्धित समस्त तकनीकी जानकारी शिविर में प्राप्त कर सकते है। अभियान में कृषक मिट्टी की जांच हेतु अपने खेत की मिट्टी के नमूनें दे सकेंगे तथा पूर्व में दिये गये मिट्टी के नमूनों का मृदा स्वास्थ्य कार्ड भी प्राप्त कर सकते है। उद्यान विभाग की

योजनाओं द्वारा किसान भाई फव्वारा, मिनी स्प्रिंकलर व ड्रिप, फलदार पौधों आदि हेतु आवेदन जमा करवाकर अनुदान प्राप्त कर सकते है।

पाईप लाईन (RKVY) :–

पानी के सदुपयोग और इसको व्यर्थ नष्ट होने से बचाने के लिए सरकार ने सिंचाई पाईप लाईन पर अनुदान योजना की शुरूआत की है। किसान को इस योजना का लाभ लेने के लिए अपने क्षेत्र के कृषि पर्यवेक्षक या सहायक कृषि अधिकारी या नजदीकी कृषि कार्यालय में सम्पर्क करना चाहिए। इस योजना के तहत किसानों को लागत का 50 प्रतिशत या अधिकतम राशि रूपये 50/– प्रति मीटर एच.डी.पी.ई. पाईप या राशि रू. 35/– प्रति मीटर पी.वी.सी. पाईप या राशि रू. 20/– प्रति मीटर एच.डी.पी.ई. लेमिनेटेड ले–प्लेट ट्यूब पाईप या अधिकतम राशि रू. 15000/– अनुपातिक रूप से जो भी कम हो, का अनुदान किसानों को दिया जाता है।

कृषक प्रशिक्षण कार्यक्रम :–

किसानों के लिए कृषि विकास से जुड़ी विभिन्न प्रकार की जानकारियों के लिए विभिन्न प्रकार के भ्रमण एवं प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन समय–समय पर किया जाता है। किसान कृषि करने की उन्नत तकनीक पर आधारित इन प्रशिक्षण कार्यक्रमों में भाग ले सकते है। इसके लिए किसान अपने क्षेत्र के कृषि पर्यवेक्षक या सहायक कृषि अधिकारी या नजदीकी कृषि कार्यालय में सम्पर्क करना चाहिए। विभिन्न प्रशिक्षण कार्यक्रमों का विवरण निम्न प्रकार है:–

दो दिवसीय प्रशिक्षण :–

उन्नत कृषि ज्ञान में अभिवृद्धि के लिए 30 कृषकों के समूह में दो दिवसीय संस्थागत प्रशिक्षण दिया जाता है। प्रशिक्षण में किसानों को भोजन, आने–जाने का किराया, पुरस्कार आदि पर व्यय किये जाने का प्रावधान है।

एक दिवसीय प्रशिक्षण :–

ग्राम पंचायत स्तर पर बीज उत्पादन एवं मृदा स्वास्थ्य प्रशिक्षण, सहायक कृषि अधिकारी स्तर पर जल के समुचित उपयोग पर प्रशिक्षण एवं पंचायत समिति स्तर पर कृषि उपकरण व यंत्रों के प्रशिक्षण आयोजित किये जाते है।

ग्राम पंचायत स्तर पर आयोजित किये जाने वाले प्रशिक्षण में जल–पान की व्यवस्था तथा अन्य स्तरों पर आयोजित प्रशिक्षणों में कृषकों को आने–जाने का किराया भोजन, पुरस्कार आदि में दिया जाता है।

प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना :–

जिले के व्यापारिक फसल उत्पादक किसानों के साथ कृषि कार्य करने वाले सभी किसानों के लिए प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना की शुरूआत की गई है। इस योजना के तहत किसानों को अचानक आये जोखिम या खराब मौसम से फसल को हुए नुकसान की भरपाई के लिए 2016 से प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना की मुख्य विशेषताएं निम्न है :–

1. इस योजना के तहत वाणिज्यिक एवं उद्यानिक कृषि करने वाले जिले के किसानों को फसलों हेतु 5 प्रतिशत कृषक प्रीमियम राशि रखी गई है।
2. फसल बीमा योजना ऋणी किसानों के लिए अनिवार्य तथा गैर ऋणी किसानों के लिए स्वैच्छिक है।
3. गैर ऋणी किसान ई–मित्र के माध्यम से अधिसूचित फसलों का बीमा करवा सकते है।
4. बीमित किसान यदि प्राकृतिक आपदा के कारण बुवाई नही कर पाता है तो यह जोखिम आपदा में शामिल है। इसके लिए उसे दावा राशि मिलने के प्रावधान है।
5. ओलावृष्टि, जल भराव जैसी प्राकृतिक आपदाओं को स्थानीय आपदा माना गया है निर्धारित कमेटी द्वारा सर्वे कर दावा राशि प्रदान किए जाने का प्रावधान है।
6. फसल कटने के 14 दिन तक यदि फसल खेत में है और इस दौरान कोई आपदा जैसे चक्रवात एवं बेमौसम वर्षा से नुकसान होता है तो किसानों को दावा राशि मिल सकेगी।

सॉयल हैल्थ कार्ड योजना :–

जिले के किसानों के लिए नियमित अन्तराल पर उनके खेत की मिट्टी के उर्वरा स्तर की जानकारी देने तथा फसलों में मृदा जांच की सिफारिश अनुसार उनके संतुलित खाद एवं उर्वरक प्रबन्धन को बढ़ावा देने के उद्देश्य से सॉयल हैल्थ कार्ड योजना प्रारम्भ की गई है। कार्ड में दी गई सिफारिश के अनुसार उर्वरक प्रयोग से प्रति ईकाई लागत में कमी, उत्पादन में वृद्धि एवं मिट्टी की उर्वरा शक्ति बरकरार रखते हुए इसकी उपजाऊ क्षमता में बढ़ोतरी होती है।

- सिंचाई वाले क्षेत्रों में 2.5 हैक्टेयर तथा असिंचित क्षेत्रों से एक संयुक्त प्रतिनिधि नमूना।
- एकत्रित नमूनों में मुख्य व सूक्ष्म पोषक तत्वों की जांच।
- नमूनों की जांच :– विभागीय मृदा परीक्षण प्रयोगशाला एवं पीपीपी मोड पर संचालित मृदा परीक्षण प्रयोगशालाओं के माध्यम से कराई जा रही है।
- सॉयल हैल्थ कार्ड :– ऑनलाईन सॉफ्टवेयर के माध्यम से कम्प्यूटराईज्ड सॉयल हैल्थ कार्ड किसानों को निःशुल्क उपलब्ध कराया जा रहा है।

फलदार बागों में बूंद–बूंद सिंचाई संयंत्र पर अनुदान :–

जल के कुशलतम उपयोग उत्पादन, वृद्धि एवं श्रम व बिजली की बचत के उद्देश्य से सिंचाई की वैज्ञानिक विधि बूंद–बूंद सिंचाई स्थापना पर केन्द्रीय योजना पर

तालिका संख्या 4.4

क्र.सं.	फव्वारा संयंत्र श्रेणी	अनुदान	श्रेणी	मिनी/माइक्रो स्प्रिंकलर/ ड्रिप सिंचाई संयंत्र
1	सामान्य	50 प्रतिशत	सामान्य	50 प्रतिशत
2	लघु सीमान्त	60 प्रतिशत	लघु सीमान्त	70 प्रतिशत

फव्वारा संयंत्र के लिए कुल लागत का 50 प्रतिशत राशि देय है एवं लघु सीमान्त कृषक के लिए यह राशि कुल लागत का 60 प्रतिशत देय है।

जैविक खेती के लिए सहायता :–

जिले में परम्परागत खेती जैविक खेती को बढ़ावा देने के लिए परम्परागत कृषि विकास योजना (पीकेवीवाई) के अन्तर्गत यह कलस्टर पर आधारित कार्यक्रम है जिसमें 50 एकड़ अथवा 20 हैक्टेयर क्षेत्र का एक कलस्टर में जैविक खेती करने का कार्यक्रम लिया जाता है।

परम्परागत कृषि विकास योजना (पीकेवीवाई) के तहत प्रथम वर्ष में कम्पोनेन्ट/गतिविधिवार कृषकों को निम्न प्रकार से सहायता प्रदान की जाती है :—

तालिका संख्या 4.5

क्र. सं.	कम्पोनेन्ट गतिविधि	कृषकों को देय सहायता
1	भूमि का जैविक परिवर्तन	रूपये 1000/— प्रति एकड़ प्रति कृषक
2	फसल पद्धति एवं जैविक बीज हेतु सहायता	रूपये 500/— प्रति एकड़ प्रति कृषक
3	जैविक आदान उत्पादन इकाई की स्थापना	1500/— रूपये प्रति ईकाई की स्थापना हेतु प्रति कृषक को
4	ढेंचा/सनई प्रयोग हेतु सहायता	रूपये 1000/— प्रति एकड़ प्रति कृषक (प्रथम वर्ष)
5	वानस्पतिक काढ़ा इकाई की स्थापना	रूपये 1000/— प्रति इकाई प्रति एकड़ की दर से प्रति कृषक
6	फास्फेट युक्त जैविक खाद का प्रयोग	फास्फेट रिच जैविक खाद का प्रयोग करने हेतु 1000/— रूपये प्रति एकड़ प्रति कृषक
7	वर्मी कम्पोस्ट इकाई का निर्माण	कृषक द्वारा वर्मीकम्पोस्ट इकाई का निर्माण करने पर आकार (7 फीट लम्बाई, 3 फीट चौड़ाई व 1 फीट ऊंचाई) 5000/— रूपये प्रति इकाई
8	तरल बायो फर्टिलाईजर का उपयोग	रूपये 500/— प्रति एकड़ प्रति कृषक

परम्परागत कृषि विकास योजना (पीकेवीवाई) के तहत द्वितीय वर्ष में कम्पोनेन्ट/गतिविधिवार कृषकों को देय सुविधाएं :–

तालिका संख्या 4.6

क्र. सं.	कम्पोनेन्ट/गतिविधि	कृषकों को देय सहायता
1	भूमि का जैविक परिवर्तन	रूपये 1000/– प्रति एकड़ प्रति कृषक
2	फसल पद्धति एवं जैविक बीज हेतु सहायता	रूपये 500/– प्रति एकड़ प्रति कृषक
3	ढेंचा/सनई प्रयोग हेतु सहायता	500/– रूपये द्वितीय वर्ष एवं 500/– रूपये तृतीय वर्ष प्रति एकड़
4	तरल बायो पेस्टीसाईड के उपयोग पर सहायता	500/– रूपय प्रति एकड़ प्रति कृषक प्रति वर्ष
5	नीम के तेल पर सहायता	500/– रूपय प्रति एकड़ प्रति कृषक प्रति वर्ष
6	जैविक उत्पादों पर पैंकिंग, लेबलिंग एवं ब्राण्डिंग पर सहायता	1250/– रूपये प्रति एकड़ द्वितीय वर्ष व 1250/– रूपये प्रति एकड़ तृतीय वर्ष के लिए

पात्रता :–

1. कृषक के पास स्वयं की भूमि हो।
2. कम से कम 0.4 हैक्टेयर भूमि आवश्यक।
3. चयनित कृषक को तीन वर्ष तक विभिन्न गतिविधियों हेतु सहायता का प्रावधान।

सम्पर्क करें :—

इस योजना का लाभ उठाने के लिए जिले के किसान कृषि पर्यवेक्षक कार्यालय, सहायक कृषि अधिकारी, सहायक निदेशक कार्यालय, उप निदेशक कृषि (विस्तार) जिला परिषद में सम्पर्क कर सकते है।

4.4 विपणन प्रणाली :—

कृषि विपणन प्रणाली के अन्तर्गत किसी वस्तु के उत्पादन से लेकर उपभोक्ता सन्तुष्टि के लिये किये जाने वाली समस्त क्रियाओ को सम्मिलित किया जाता हे। इसमें उत्पादन अथवा वस्तु को ग्राहको अथवा उपभोक्ताओं के अनुरूप बनाया जाता है और उत्पादन को उपभोग के लिए समर्पित किया जाता है। ताकि जनस्वाधारण के जीवन स्तर में वृद्धि हो सके तथा उपभोक्ताओ को अधिक से अधिक सन्तुष्टि प्रदान करते हुए अधिकतम लाभो की प्राप्ति हो सके।

विपणन कार्य उत्पादन होने के पश्चात् प्रारम्भ होता है और उस समय पूर्ण हो जाता हैं जबकि वस्तु ग्राहक अथवा उपभोक्ता को सौप दी जाती है कृषि विपणन के अन्तर्गत कृषि उपज का एकत्रीकरण, उसका किस्म के आधार पर वर्गीकरण, कृषि उपज का परिष्करण, परिवहन के साधनो द्वारा कृषि उत्पादन को स्थानीय बाजारो, विनियमित मण्डियों तक पंहुचाने, कृषि उत्पादन को गोदामो में सुरक्षित रखने तथा विपणन के विभिन्न स्तरो पर वित्त व्यवस्था से सम्बन्धित क्रियाओ को सम्मिलित किया जाता हे।

जिले की कृषि विपणन का आर्थिक विकास में महत्व :—

सामान्यतया : जिले के किसान अपनी मूल उपज में से विपणन योग्य अधिक्य का विक्रय करते है विपणन योग्य आधिक्य से अभिप्राय कृषको के कुल कृषि उत्पादन के उस भाग से जिसे किसान अपनी आवश्यकताओ के लिए (पारिवारिक उपभोग, बीज, पशुओं के लिए, कृषक ऋण) से अधिक उत्पादन मानकर विक्रय के उददेश्य से बाजार या मण्डियों में ले जाता है। कृषि कार्य करने वाले किसी भी क्षेत्र के विकास के लिए कृषि विपणन का प्रमुख से प्रभावित हाती है कि उनका विपणन योग्य उत्पादन मिलना है तथाइस उत्पादन के विपणन हेतु वंहा कितनी तथा किस प्रकार की सुविधाए उपलब्ध है। अगर विपणन प्रणाली सुव्यवस्थित होती है तो बाजार एवं मण्डियों में उत्पादन की

आवक बड जाती है जिससे क्षेत्र के आर्थिक विकास में सहायता मिलती है। यदि उत्पादन में वृद्धि के साथ साथ क्षेत्र की विपणन प्रणाली में वृद्धि न हो तो ऐसी प्रवृति उस क्षेत्र के आर्थिक विकास में रूकावट बन जाती है। विपणन योग्य उत्पादन की मात्रा में जितनी अधिक वृद्धि होगी उतना ही उस क्षेत्र में विकास की गति भी तेज होती जायेगी।

झालावाड़ जिले की अर्थव्यवस्था में कृषि का महत्वपूर्ण स्थान है। जिले की आय जीवन– निर्वाह, पूंजी निर्माण कृषि सम्बन्धी व्यापार में कृषि की सशक्त भूमिका को नकारा नहीं जा सकता है। जिले की अधिंकाश जनसंख्या कृषि कार्य में लगी हुई है एवं कृषि पर निर्भर है। अधिकांश ग्रामीण क्षेत्रो में लोगो को कृषि क्षेत्र में रोजगार प्राप्त है। जिले की अर्थव्यवस्था मे कृषि का सराहनीय योगदान होने के साथ सम्पूर्ण राजस्थान में भी झालावाड जिले में हो रही प्रमुख फसलो के उत्पादन से साख बनी हुई है एवं अपनी पहचान बनाये हुए है राजस्थान का नागपुर नाम से प्रसिद्ध जिला सर्वाधिक सन्तरा का उत्पादन करता है एवं सोयाबीन का भी प्रमुख उत्पाक झालावाड जिला ही है। यहॉ का सन्तरा राजस्थान के साथ साथ देश के कई राज्यों में निर्यात किया जाता है। जिससे इस जिले की पहचान राजस्थान में ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण देश में भी है। यंहॉ कई प्रकार की व्यापारिक फसलो का उत्पादन निरन्तर किया जा रहा है।

जिले में फसलो द्वारा व्यापारिक कृषि फसलो का अधिक उत्पादन करने के बाद भी विपणन प्रणाली की उेसी कई समस्याओ से जुझना पडता है जिससे वे अपने उत्पादन का आशानुरूप लाभ प्राप्त नही कर पाते है। जिले के किसानो को अपनी उपज का विक्रय करते समय विभिन्न प्रकार की समस्याओ से गुजरना पडता है। इन सभी प्रकार की समस्याओं का निराकरण किया जान आवश्यक है –

प्रमुख समस्याए –

परिवहन की उचित व्यवस्था का न होना :–

जिले की व्यापारिक कृषि का विपणन व्यवस्था में पिछड़ने का प्रमुख कारण परिवहन की सही समय पर किसानो को उचित व्यवस्था का न होना है। अधिकांश किसानो के पास अपने उत्पादन को मण्डियों तक पंहुचाने के समय

पर परिवहन की व्यवस्था नहीं हो पाती है और हो भी जाती है तो वह अपना उत्पादन देरी से बाजार में लाने से उनको उपज का उचित मुल्य नहीं मिल पाता हे। अतः अधिकांश किसान अपने उत्पादन को ग्रामीण स्तर पर ही स्थानीय व्यापारियें एवं साहुकारो को कम मूल्य में बेचने में सुविधा का अनुभव करते है।

मण्डियो में माल बेचने हेतु लम्बी कतारो का होना –

जिले के किसान जैसे तैसे अपने उत्पादन को मण्डियों तक ले जाते है पर वहॉ भी उन्हें निराशा की हाथ लगती है उन्हें उत्पादन की बिक्री के लिए कई दिनों तक इन्तजार करना पड़ता है और कई किसानो के उत्पादन तो प्राकृतिक प्रकोप वर्षा के कारण खराब हो जाते है जिससे गुणवता में कमी हो जाती है और उनके उत्पादन का उचित मूल्य नही मिलता है और इस प्रकार किसानो की आर्थिक स्थिति पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

कृषि मूल्य की जानकारी का अभाव :–

जिले के अधिकांश किसान ग्रामीण क्षेत्र के है अतः फसल आने पर बाजार के मूल्य की जानकारी नही होती जिसका परणिाम यह होता है कि वह अपने उत्पादन को प्रचलित कीमत से कम बेचने पर ही विवश रहते है वह वही मूल्य स्वीकार कर लेते है जो उन्हें स्थानीय व्यापारी बताते है इस प्रकार कृषि मूल्यो की जानकारी के अभाव में किसान अपने उत्पादन को उचित मूल्य में नहीं बेच पाते है। किसानो को आवश्यकता इस बात की है उसकी फसल का उचित मूलय प्राप्त हो सभी किसान उत्साहपूर्वक रूप से जिले की व्यापारिक कृषि विकास में सहायक सिद्ध हो तो यह आवश्यक है कि उनकी फसल के लिए उचित विपणन व्यवस्था का निर्माण किया जावे इसके लिए सरकार को चाहिए कि वह श्रेणी विभाजन एवं मानकी करण के अनुसार व्यापारिक कृषि उत्पादन पर जोर दे, मण्डियों में पक्के माल गोदाम का निर्माण करें, आकाशवाणी के द्वारा दूरदर्शन के द्वारा तथा सरकार अपनी मशीनरी के द्वारा समय समय पर किसानो को उपज मूल्य की सही सही जानकारी उपलब्ध करवाने की व्यवस्था करें। इसके साथ साथ सरकार को चाहिए कि नियंत्रित मण्डियों के स्वरूप के साथ साथ ग्रामीण स्तर पर छोटी छोटी नियंत्रित मण्डियाँ

हो जिससे छोटे किसान भी अपनी फसल को सही दाम पर बेचकर अपनी फसल का उचित मूल्य प्राप्त कर सकें।

4.5 कृषि नवाचार

कृषि क्षेत्र के संसाधनो की कमी, बढ़ती जनसंख्या, भूमि की घटती उपलब्धता एवं उत्पादकता ने यह सोचने पर बाध्य कर दिया है कि भविष्य में किस प्रकार किसान अपनी भूमि का सर्वश्रेष्ठ उपयोग करे, जिससे प्रति इकाई भूमि से अधिक उत्पादन प्राप्त कर सकें। इसके लिए कृषि के क्षेत्र में नवाचार की दिशा में अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। बढ़ती जनसंख्या को कृषि के अतिरिक्त अन्य आवश्यकताओं की पूर्वी से जमीन की उपलब्धता एवं उत्पाकता में समय के साथ–साथ कमी होती जा रही है। जिसका प्रभाव जिले की व्यापारिक कृषि पर प्रमुख रूप से देखा जा सकता है।

कृषि नवाचार से तात्पर्य कृषि कार्य में विभिन्न वैज्ञानिक तकनीको के समग्र व्यवहार से है। कृषि कार्य करने में नई तकनीकी मशीनीकरण रसायनिक खाद, नई किस्म के उन्नत पौधो एवं कीटनाशक दवाओं का प्रयुक्त होना ही कृषि आधुनिकीकरण या कृषि नवाचार है। किसानों द्वारा उपयुक्त विधियों के प्रयोग से केवल कृषि का आधुनिकीकरण संभव नहीं है। वरन् इन सबके अतिरिक्त किसानों का नवीन दृष्टिकोण भी आधुनिकीकरण के लिए सबसे महत्वपूर्ण कारक माना जाता है।

झालावाड़ जिले में व्यापारिक कृषि फसलों का अवलोकन करे तो यह जिला अन्य जिलों से कई फसलो का उत्पादन करने में अग्रणी रहा है। यहॉ पर व्यापारिक कृषि फसलो के विकास के लिए कई प्रकार के आदानो का प्रयोग यहॉ के किसानो द्वारा किया जाता है।

जिले की व्यापारिक कृषि फसलो का उत्पादन किसान निरन्तर कर रहे है तथा वे अपनी कृषि करने की पद्धति को भी बदल रहे है। फिर भी जिले के अधिकांश किसान उचित जानकारी के अभाव में बही प्राचीन तौर तरीके से ही कृषि क्रिया को अपना रहे है। अधिकांश किसानो के पास उचित साधनो के अभाव में एवं दूसरो पर निर्भरता के कारण प्रचीन रवैया ही अपनाना पड़ता है। अधिकांश किसान निर्धन एवं अशिक्षित होने के कारण समय के साथ हो रहे बदलाव एवं कृषि क्रिया में नवीन पद्धति को अननाने के तौर तरीके नहीं सीखे

है। जिसका परिणाम यह है कि वह भागयवादी होता जा रहा है। परन्तु धीरे–धीरे समय के साथ किसानों ने अपनी पुरानी सोच को छोड़ फसलो के अधिक उत्पादन करने पर जोर दिया है। जिले के किसान निरन्तर अपनी फसलो में नये–नये तौर तरीके अपनाकर कृषि कार्य करने लगे है जिससे उनकी फसल उत्पादन की प्रक्रिया बदल रही है एवं फसलो का उत्पादन भी बदल रहा है।

आज जिले के कृषि परिदृश्य में परिवर्तन हो रहा है पहले किसान जहॉ खाधान्न फसलो का उत्पादन करता था। अब उसका रूझान व्यापारिक कृषि की ओर बड़ा है। यहॉ का किसान लहसुन, धनिया, सरसो, सोयाबीन आदि फसलो का प्रचुर उत्पादन कर रहा है एवं सन्तरे की बागवानी कर जिले का नाम देश में ही नहीं विदेश में भी हो रहा है। किसानो ने कृषि कार्य करने के प्राचीन तौर तरीको को छाडकर नवीनतम पद्धतियां अपनाई है तथा समय समय पर कृषि विभागो द्वारा देय सहायता एवं सुविधाओं का लाभ उठाकर जिले के किसान उन्नति कर रहे है।

इसका प्रमुख कारण किसानो द्वारा कृषि के पुराने तरीको को छोडकर नवीन कृषि नवाचार को अपनाना है। आज जिले के अधिकांश किसान समस्त कृषि कार्य मशीनीकरण से करने लगे है। वे खेत की जुताई से लेकर कटाई तक में मशीनीकरण का उपयोग करने लगे है जिसका प्रभाव यह हुआ है कि किसानो की फसल उत्पादन में वृद्धि हुई है और वे और अधिक व्यापारिक कृषि करने की ओर अग्रसर हुए है।

आज जिले के किसान सभी व्यापारिक फसलो में कृषि नवाचार की प्रक्रियां को अपनाकर उत्पादन में निरन्तर वृद्धि कर रहा है। खेती करने की नवीन–नवीन विधियों को अनाकर उसने कृषि नवाचार को बढ़ाया है एवं इस प्रकार की खेती को देखकर जिले के अन्य किसान भी इसकी और अग्रसर हुए है।

झालावाड़ के कृषि परिदृश्य को बदलने में कृषि विभागों द्वारा कृषको को समय समय पर दी जाने वाली विभिन्न प्रकार की सहायता, अनुदान एवं नवीन जानकारियां प्रमुख है। इसलिए व्यापारिक कृषि फसलो के उत्पादन से जुडे किसानो का अधिक उत्पादन और इसकी समृद्ध खेती की ओर रूझान बढ़ा है।

झालावाड़ की व्यापारिक कृषि फसलो का ओर अधिक उत्पादन करने के लिए अभी और नवीन जानकारियों एवं उन्नत तकनीकी की आवश्यकता है। जिसको अपनाकर वे और अधिक उत्पादन कर सकें। राजस्थान का "नागपुर " नाम से प्रसिद्ध झालावाड जिला सन्तरा उत्पादन में राज्य में अपना प्रमुख स्थान रखता है। जिले के किसान सन्तरा का अधिक उत्पादन करने के लिए निम्न बातों को अपनाकर अपनी बागानी को ओर अधिक समृद्ध बना सकते है –

कीटनाशक दवाइयों का प्रयोग :–

सन्तरे के पौधों के विकास में केवल उन्नत किस्म के पौधों का होना ही आवश्यक नहीं है। बल्कि समय समय पर कीटनाशक दवाईयों का प्रयोग भी महत्वपूर्ण है। क्योकि अच्छे पौधें केवल उन्नत किस्म के पौधें व रासायनिक खाद द्वारा ही नहीं बन जाते है वरन् उनमें लगने वाले रोगो की रक्षा करना आवश्यक है। जिले में अच्छी किस्म के पौधे उपलब्ध होने के साथ साथ उनमें समय समय पर कीटनाशक दवाइयों का भी प्रयोग किया जाता है जिससे किसानो को उत्पादन प्रक्रिया में लाभ मिलता है।

जैविक उर्वरको का प्रयोग :–

किसानो द्वारा फसल उत्पादन को अधिक बढ़ाने के लिए रासायनिक खादो के अन्धाधुन्द प्रयोग से मिटटी की उर्वरता शक्ति में धीरे–धीरें कमी आयी है। जिससे फसल उत्पादकता में भी कमी आई है। किसानो को अपनी फसलो के उत्पादन को बढ़ाने के चाहिए कि वे जैविक खेती की ओर अग्रसर होवें। जैव उर्वरक जैसे गोबर की खाद, कमपोस्ट या केचुंआ खाद आदि का प्रयोग करना भूमि के लिए लाभदायक माना गया है। इसके अतिरिक्त जीवाणु कल्चर (राइजोबियम) या एजोटोबेक्टर का उपयोग भी किसानो की फसल उत्पादन बढ़ाने मे सहायक है। जेविक खाद के साथ साथ उर्वरको के उचित प्रयोग से उच्च पैदावार प्राप्त होती है। जैवउर्वरक कम लागत के अदान है और तुलनात्मक रूप से इनसे लाभ भी अधिक प्राप्त होता है।

किसानो के द्वारा गोबर के उपले बनाकर उसे ईधन के रूप में प्रयोग किया जाता हे अगर इसी गोबर को गोबर गैस में प्रयोग में लेने के बाद यदि जैविक खाद में प्रयुक्त किया जाये तो किसानो को अधिक उत्पादन प्राप्त होगा।

फसल उत्पादन में पोषक तत्वो का महत्वपूर्ण स्थान होता है,इनकी आपूर्ती के लिए रासायनिक उर्वरक,देशी खाद,जैविक खाद,कम्पोस्ट आदि का उपयोग मुख्य रूप से किया जाता है। जिले की कृषि उत्पादकता बढ़ाने में जैविक खाद का महत्वपूर्ण स्थान हो सकता है। इसका अधिक से अधिक मात्रा में प्रयोग कर उर्वरको की खपत कम की जा सकती है तथा फसल उत्पादन में लगी लागत में भी कमी की जा सकती है।

उन्नत सिंचाई विधि का प्रयोग :–

किसानो को खेत में सिंचाई करने की परम्परागत विधियों को छोड़कर नवीन तकनीकी विधियों को अपनाना चाहिए जिससे समय की बचत के साथ साथ जल का भी उचित प्रबन्धन हो सके। उन्नत सिंचाई के साधनों से किसान समय समय श्रय पानी की बचत कर सकता है और इससे पौधों का विकास भी बेहतर होता है। इसके लिए किसानो को खेती करने के तरीको में नवाचार को अपनाने की जरूरत है इन नवाचारो के उपायो को अपनाकर किसान अपनी फसल का उत्पादन अधिक मात्रा में कर सकता हे सिंचाई करने की नवीन विधियों को अपनाना चाहिए जिसमें कतार (अलटरनेट) सिंचाई, फुहार सिंचाई (स्प्रिकंलर) टपक सिंचाई (ड्रीप) आदि सिंचाई विधियों एवं तकनीको का उपयोग करके सिचांई करनी चाहिए।

इस प्रकार जिले के किसानो को अपनी फसलो में सिचांई की नवीन विधियों को अपनाना चाहिए जिससे फसल की आवश्यकता अनुसार सिंचाई कर सके एवं पानी की बचत भी कर सकें इससे किसानो को अधिक उत्पादन प्राप्त होगा।

मृदा स्वास्थ्य प्रबन्धन :–

जिले के किसानो को अपने खेत की मृदा का उचित प्रबन्धन करना आवश्यक है क्योकि कृषि व्यवसाय में कम लागत में अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए मृदा प्रबन्धन का उतना ही महत्व है जितना मानव के स्वास्थ्य हेतु चिकित्सक जांच एवं सलाह का है।

मिटटी के रासयनिक एवं भौतिक गुण कार्बनिक तथा जैविक गतिविधियां कृषि उत्पादन को सतत बनाये रखने के लिए महत्वपूर्ण है यह मिलकर मृदा की

उर्वरता और उत्पादकता के निर्धारित करते है। जिले के किसानो को मृदा के उतम स्वास्थ्य को बरकरार रखने के लिए निम्न उपाय अपनाने चाहिए क्योकि स्वस्थ्य मृदा ही स्वस्थ उत्पादन प्रदान करती है।

- किसान मृदा की जैविक गतिविधियों को बढ़ाकर फसलो को उपलब्ध पानी एवं उर्वरको में सुधार करना चाहिए
- मिट्टी की नमी में वृद्धि करनी चाहिए।
- मिट्टी के कटाव एवं पोषक तत्वों एवं कृषि रसायनो के निक्षालन से होने वाले नुकसान को कम करना चाहिए।
- मृदा संरचना में सुधार के लिए कार्बनिक पदार्थ की मात्रा को बढ़ाना चाहिए।
- फसल चक, सम्बन्वित उर्वरक प्रबन्धन को अपनाना चाहिए।
- कार्बनिक व अकार्बनिक उर्वरको अन्य कृषि रसायनो का उचित मात्रा में,उचित विधि से उपयोग करना चाहिए जिससे मृदा स्वास्थ्य को किसी प्रकार का नुकसान न हो।

इस प्रकार किसान मृदा स्वास्थ्य सम्बन्धी नवाचार को कृषि क्रिया में अपनाकर अपने खेत की मिट्टी को फसल उत्पादन के लिए अधिक उपयोगी बना सकते है। कृषि भूमि व फसल की उत्पादकता बढाने के लिए व उत्पादन की लागत को कम करने के लिए जिले के किसान नवीन कृषि नवाचार का प्रयोग करे और सरकार द्वारा कृषि उत्पादन के समर्थन मूल्य को ध्यान में रखे। इसके अलावा किसान विभिन्न कृषि कार्यक्रमो में भागीदारी बढायें जिससे उन्हे कृषि करने की नवीनतम से नवीनतम जानकारी प्राप्त हो सके।

अध्याय पंचम

व्यापारिक कृषि विकास से जुड़ी समस्याऐं व समाधान

व्यापारिक कृषि के विकास से जुड़ी समस्याऐं व समाधान

देश की अर्थव्यवस्था की रीढ़ अब भी कृषि ही है। कृषि एक ऐसा उद्योग है जिसमें हमेशा लागत से अधिक उत्पादन होता है। प्रकृति का अनमोल उपहार है कृषि, कृषि के साथ जुड़ा हुआ है पशुपालन, मत्स्यपालन, फल सब्जी का उत्पादन, जल व भूमि संरक्षण, पर्यावरण की रक्षा और करोड़ों लोगों के रोजगार का अभूतपूर्व साधन। इसके साथ ही पोषण की उचित व्यवस्था लेकिन आज के समय बीज–खाद माफिया के कारण देश का किसान परेशान हैं और आत्महत्या करने को मजबूर हैं। बड़े किसान तो फिर भी अपना काम चला रहे हैं लेकिन छोटे व मझौले किसान तो अपनी जमीन से दूर हो चुके हैं और शहरों में मजदूरी करने को मजबूर हैं जो खेत के मालिक होते थे वे भी अब छोटी – मोटी नौकरी के लिए मजबूर हैं।

इन सभी समस्याओं के लिए कृषि से जुड़ी विभिन्न प्रकार की समस्याऐं जिम्मेदार हैं जो कृषि कार्य में लगातार बाधा डालती है एवं इसके उत्पादन को प्रभावित करती हैं।

इन सभी समस्याओं के लिए खाद, बीज, सिंचाई की सुविधा, कृषकों को उचित प्रशिक्षण का अभाव आदि सभी कारक जिम्मेदार हैं इन सभी कारकों ने किसान के हाथ की ताकत छीन ली हैं। फसलों के पौंध रोपण से लेकर उनके उत्पादन तक फसलों में कई प्रकार की बीमारियाँ एवं रोग लग जाते हैं। जिससे पौधों का सही विकास नहीं हो पाता तथा इसका सीधा असर फसलोत्पादन पर पड़ता है। कई बार फसलों में ऐसे रोग लग जाते हैं जो पौधों को ही सुखाकर खत्म कर देते हैं। इससे कृषकों को कई प्रकार की हानि उठानी पड़ती हैं।

स्वतंत्र भारत पूर्व और स्वतंत्र भारत के पश्चात् एक लम्बी अवधि व्यतित होने के बाद भी भारतीय किसानों की दशा में सिर्फ 19–20 का ही अंतर दिखाई देता है जिन अच्छे किसानों की बात की जाती हैं उनकी गिनती उंगलियों पर की जा सकती हैं। बढ़ती आबादी औद्योगीकरण एवं नगरीकरण के कारण कृषि योग्य क्षेत्रफल में निरंतर गिरावट आई हैं। देश की लगभग 70 प्रतिशत आबादी गाँवों में निवास कररती हैं और कृषि कार्य पर निर्भर हैं। ऐसे में किसानों की एवं उनकी फसलों से सम्बन्धित समस्याओं की बात सभी करते हैं और उनके लिए योजनाऐं भी बनाते हैं। किन्तु उनकी मूलभूत समस्या ज्यों की त्यों बनी रहती हैं। प्रस्तुत शोध में किसानों की व्यापारिक कृषि से जुड़ी विभिन्न प्रकार की समस्याओं को उठाते हुए उनके निराकरण की जरूरत पर जोर दिया हैं।

कृषकों से जुड़ी विभिन्न प्रकार की समस्याऐं एवं समाधान

व्यापारिक कृषि का विकास विषय के गहन अध्ययन हेतु झालावाड़ जिले के तहसीलानुसार कृषि का सर्वे कार्य निदर्शन के आधार पर किया गया है। इसके अन्तर्गत सीमांत कृषक, लघु कृषक, बड़े कृषक तथा खेतिहर श्रमिकों से प्रश्नावली, साक्षात्कार तथा मौखिक चर्चा की गई। जिसमें आधुनिक साधनों के प्रयोग तथा परम्परागत साधनों के प्रयोग से प्राप्त उत्पादन एवं उत्पादकता के अध्ययन के साथ–साथ कृषकों को होने वाली समस्याऐं खेतिहर श्रमिकों को होने वाली समस्याऐं, ग्रामीण कृषकों की समस्याऐं तथा आधुनिकीकरण में आने वाली अन्य समस्याओं का गहनता से मौलिक अध्ययन किया गया है तथा कृषकों के मुंह–जुबानी बताई गई समस्याओं का भी अध्ययन किया है तथा प्रत्यक्ष अवलोकन में आने वाली समस्याओं के अन्तर्गत, भूमि सम्बन्धी समस्याऐं, श्रम सम्बन्धी समस्याऐं, पूंजी सम्बन्धी समस्याऐं, प्रबन्ध सम्बन्धी समस्याऐं तथा अन्य समस्याओं का भी बिंदुवार उल्लेख किया गया है तथा इन समस्याओं के कारण कृषकों में उत्पादन वृद्धि की प्रेरणा का ह्रास होता है। अतः कृषकों की प्रमुख समस्याऐं निम्नानुसार हैं।

1. भूमि सम्बन्धी समस्याऐं –

(1) भूमि की उर्वरा शक्ति में गिरावट – व्यापारिक कृषि उत्पादकता में बाधक प्रथम तत्व भूमि की उर्वरा शक्ति में निरंतर गिरावट आना है। कृषकों द्वारा भूमि पर निरंतर फसलों के उत्पादन करने के कारण होने वाले भोजन तत्व की कमी को पूरा करने के लिए आवश्यक मात्रा में खाद एवं उर्वरकों का उपयोग नहीं करने से भूमि की उर्वरा शक्ति निरंतर कम होती जाती है। हवा व पानी से भूमि के कटाव, भूमि पर निरंतर पानी भरा रहना, उचित फसल चक्र का अभाव भी भूमि की उर्वरा शक्ति ह्रास में वृद्धि करते हैं।

(2) जोत उपविभाजन एवं अपखण्डन – भूमि सम्बन्धी दूसरी प्रमुख समस्याओं में प्रचलित उत्तराधिकारी कानून के कारण जोत का आकार निरंतर कम होता जा रहा हैं एवं भूमि के खण्ड एक दूसरे से कम होते जा रहे हैं। अतः जोत व्यापारिक कृषि के लिए आर्थिक दृष्टि से लाभकारी नहीं होती हैं।

(3) अनार्थिक जोते – जिले में व्यापारिक कृषि विकास का प्रमुख बाधक तत्व अनार्थिक जोत है, जिले में बढ़ती जनसंख्या, प्रति व्यक्ति आय कम होना, भूमि का आकार एवं भविष्य में अनिश्चितता व्यक्ति में भूमि के प्रति विशेष मोह उत्पन्न करता है। वह किसी भी प्रकार अपने स्वामित्व की भूमि को अपने पास बनाये रखना चाहता हैं। इसका सबसे बड़ा कारण कानून हैं,

जिसके प्रावधान अनुसार भूमि का भूमि हिनों में वितरण तथा भूमि का उस व्यक्ति के पास होना है जो उसे स्वयं जोतता है। इस प्रकार के सरकारी कानून के कारण एक कृषक खेत को बटाई पर देने में भी हिचकता है। खेत का आकार छोटा होने के कारण व्यक्ति अपनी जीविका हेतु पूर्णतः कृषि पर निर्भर नहीं रह सकता है। इस प्रकार व्यक्ति खेत को बटाई पर न देकर बिना जोत ही रखना अधिक सुरक्षित एवं लाभदायक मानता हैं। परिणामतः उपलब्ध भूमि का अनुकूलतम उपयोग भी नहीं हो पाता। यदि किसी प्रकार समझौते या अनुबन्ध द्वारा खेत को बटाई पर दिया जाता है तो बटाई पर दी गई भूमि की स्थिति भी अत्यंत दयनीय होती है। गाँवों में बटाई पर खेत प्रायः सीमान्त कृषक लेते हैं जिनके पास थोड़ी बहुत स्वयं की भूमि होती है।

ये सीमान्त कृषक अपनी जोत बढ़ाने हेतु, बटाई पर भूमि तो ले लेते हैं लेकिन उस भूमि के प्रति न्याय नहीं करते। ऐसे कृषकों के मन में सदैव यह बात बनी रहती है कि यह भूमि मेरी स्वयं की नहीं हैं अतः अपने पास के संसाधनों का उपयोग वे स्वयं की छोटी जोत पर लगाते हैं बटाई की भूमि पर नहीं। कभी–कभी तो बटाई पर ली गई भूमि के स्वामी द्वारा दिये गये रासायनिक खाद आदि को भी स्वयं की भूमि पर प्रयोग कर लेते हैं। इस प्रकार बटाई पर ली गई भूमि को समय पर खाद पानी नहीं मिलता। बटाई पर भूमि लेने वाले लोगों की एक भूमि के प्रति उदासीनता ऐसे खेत की उत्पादकता कम रखती हैं।

2. कृषि शिक्षा –

जिस देश में 1.25 अरब के लगभग आबादी निवास करती हैं और देश की 70 प्रतिशत आबादी कृषि पर आधारित हैं। उस देश में कृषि शिक्षा के विश्वविद्यालय और कॉलेज नाम मात्र के हैं उमें भी गुणवत्ता परक शिक्षा का अभाव है।

भूमण्डलीयकरण के दौर में कृषि पर आधुनिक तकनिकी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के माध्यम से जो इस देश में आती है उसे कृषि का प्रचार–प्रसार तंत्र उन किसानों तक पहुँचाने में लाचार नजर आता है। यह गंभीर एवं विचारणीय विषय है। प्रदेश अथवा जिला स्तर पर कृषि शिक्षा के जो संस्थान है उनमें शोध संस्थानों के अभाव में कृषि से सम्बन्धित शोध समाप्त प्राय से है। चाहे संस्थानों का अभाव हो अथवा गुणवत्ता परक शिक्षकों का अभाव हो, जिनके कारण हरित क्रान्ति के बाद फिर कोई उल्लेखनीय कार्य नहीं हुआ है। जिले में अधिकांश किसान आज भी घास–फूंस की झौंपड़ी कच्चे मकान एवं खपरेल वाले घरों में रहते हैं, जहाँ पर्याप्त जगह नहीं हैं। आज भी जिले के अधिकांश गाँवों में झाड़–फूंक एवं अन्य अनेक प्रकार के साधनों के माध्यम से बीमारी का इलाज करते हैं, पर्याप्त मात्रा में चिकित्सा सुविधा उपलब्ध नहीं हैं। जिले

के अधिकांश कृषक आज भी निरक्षर, अनपढ़ व अशिक्षित हैं, जिससे वे कृषि के आधुनिक उपकरणों का उपयोग करने में हिचकते हैं।

किसान ईश्वरीय कृपा पर ही आज भी निर्भर है। कृषि शिक्षा का व्यापक प्रचार–प्रसार ग्रामीण क्षेत्रों में होना चाहिए। उन लोगों का उपयोग कृषि के निचले स्तर के व्यापक प्रचार–प्रसार और उत्पादन वृद्धि में किया जाना चाहिए। इससे कृषकों को कृषि का ज्ञान मिलेगा एवं फसल का अधिक उत्पादन किस प्रकार होगा इसका भी सम्पूर्ण ज्ञान कृषि शिक्षा के माध्यम से ही मिलेगा। इससे वे अपनी फसलों के उत्पादन को बढ़ा सकेंगें।

3. बीज की समस्या :–

जिले के किसानों द्वारा की जाने वाली व्यापारिक फसलों की कृषि में एवं उसके उत्पादन में बीजों का महत्वपूर्ण स्थान है। बीज खेती में आने वाला एक महत्वपूर्ण आदान है जिसकी गुणवत्ता पर खेती की सम्पूर्ण पैदावार निर्भर करती हैं। अतः बीज की गुणवत्ता उच्च स्तर की बनी रहे इसके लिए आवश्यक है कि जिले के किसानों को बीज की समस्या को दूर करने के लिए उत्पादन तकनिक में वैज्ञानिक विधि अपनाई जानी चाहिए और किसानों को उन बिन्दुओं पर विशेष ध्यान रखना चाहिए जिनसे बीज की गुणवत्ता पर सीधा प्रभाव पढ़ता हैं।

जिले की व्यापारिक कृषि उत्पादन में बीज प्रमुख कड़ी है। उचित गुणवत्ता वाले बीज के अभाव में किसान द्वारा काम में लिये गये अन्य सभी आदान जैसे उर्वरक, पौंध संरक्षण रसायन, सिंचाई आदि पर किया गया व्यय एवं उसकी मेहनत सब व्यर्थ चले जा सकते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि उन्नत किस्मों के बीज उत्पादन, विधायन, परीक्षण, भण्डारण आदि के सन्दर्भ में बीज उत्पादकों एवं विद्यायन केन्द्रों द्वारा बीज गुणवत्ता संरक्षण के बारे में पूर्ण जागरूकता बरती जाये।

बीज की प्रमुख समस्या को हल करने के लिए एवं जिले की व्यापारिक फसलों के लिए उत्तम किस्म के बीजों को किसानों तक पहुँचाने के लिए राज्य सरकार ने ऐसी योजनाऐं चला रखी है जिनका लाभ किसान ले सकें। प्रमुख रूप से कोई भी कृषक जिसकी स्वयं की कृषि योग्य भूमि है व सिंचाई का निश्चित साधन है। निगम के बीज उत्पादन कार्यक्रम में भाग ले सकते हैं।

बीज उत्पादन कार्यक्रम अपने खेत पर लेने के लिए सर्वप्रथम कृषक को पंजीकरण कराना अनिवार्य है। जिसके लिए उसे अपने क्षेत्र के निगम कार्यालय से सम्पर्क स्थापित कर निर्धारित पंजीकरण फार्म भरकर एवं करार करके निर्धारित पंजीकरण शुल्क जमा कराना

आवश्यक है। तत्पश्चात् निगम द्वारा उपलब्ध कराये गये प्रजनक की बताई गई विधि अनुसार ही बुवाई करनी होती है। अन्य बीज का मिश्रण वर्जित है। बीज फसल उग आने के पश्चात् इसका प्रमाणीकरण संस्था प्रतिनिधि द्वारा समय–समय पर फसल निरिक्षण होना अनिवार्य है। ऐसा न होने की स्थिति में समीप के निगम कार्यालय से सम्पर्क कर सकते हैं।

कृषि हेतु अच्छी प्रजाति के बीजों की व्यवस्था सुनिश्चित की जानी चाहिए और खेत या किसान चिन्हित किए जाए, उन्हें ये बीज उपलब्ध कराये जाने चाहिए। फसल की बुवाई के समय कृषि क्षेत्र के तकनिकी विशेष द्वारा कृषक को सलाह दी जानी चाहिए तथा उन पर होने वाली बीमारियों, आवश्यक उर्वरकों, सिंचाई, निराई, गुडाई आदि कार्य आवश्यकतानुसार समय–समय पर कृषि विशेषज्ञों की सलाह एवं निर्देशन से कराना चाहिए। जिससे जिले की व्यापारिक कृषि का उत्पादन बढ़ेगा और किसान भी व्यावहारिक दृष्टि से इसके ज्ञान से प्रशिक्षित होगें।

4. भूमि प्रबन्धन –

आजादी के बाद भी किसी प्रकार की भूमि एवं फसल प्रबन्धन की बात किसी कोने में दिखाई नहीं देती और अधिकांश नीतियों और प्रबन्धन का संचालन वे लोग करते हैं जिन्हें क्षेत्र विशेष की कोई जानकारी नहीं होती। भूमि प्रबन्धन की बात की जाए तो जिले की व्यापारिक कृषि के लिए इसका महत्वपूर्ण स्थान है। यह एक नीति बनाई जानी चाहिए कि जिले में विभिन्न जिंसों की कितनी खपत है यह किस क्षेत्र में हैं इसके अतिरिक्त भविष्य के लिए कितने भण्डारण की आवश्यकता है। साथ ही हम कितना निर्यात कर सकेंगे। जिंसवार उतने उत्पादन की व्यवस्था क्षेत्रवार करनी चाहिए इसके अतिरिक्त जो भूमि शेष रहती है उस पर ऐसे उत्पादों को बढ़ावा देना चाहिए जो किसानों के लिए व्यावसायिक सिद्ध हो तथा निर्यात की संभावनाओं को पूर्ण कर सकें।

यहाँ हमें यह भी देखना होगा कि जिस फसल को हम बोना चाहते हैं उनके लिए आवश्यक जलवायु, पानी, भूमि आदि कैसा होना चाहिए। इसका परिक्षण कर सम्बन्धित किसानों को शिक्षित किया जाए ताकि वे सुझावानुसार कार्य करने के लिए सहमत हो।

5. भूमि अधिग्रहण निति –

राज्य सरकारों अथवा राज्य के अन्तर्गत गठित विभिन्न जिलास्तरीय विकास प्राधिकरणों द्वारा भूमि अधिग्रहण की निति में कृषि योग्य भूमि को ध्यान में रखते हुए परिवर्तन किया जाना परमावश्यक है। औद्योगिक विकास आधारभूत संरचना विकास व कई प्रकार की सरकारी एवं

गैर सरकारी आवासीय योजनाओं हेतु ऐसी भूमि का अधिगृहण किया जाना चाहिए जो कृषि योग्य नहीं हो। कृषि उपयोग में लाए जाने वाली भूमि का अधिगृहण और उस पर निर्माण प्रतिबंधित कर देना चाहिए।

कृषि उपयोग में लाई जाने वाली भूमि का अधिगृहण और उस पर निर्माण प्रतिबन्धित कर देना चाहिए सरकारी एवं गैर सरकारी आवासीय योजनाओं औद्योगिक एवं ढांचागत निर्माणों के लिए कृषि योग्य भूमि अत्यधिक संकुचित होती चली जाएगी जो तीव्र गति से बढ़ती हुई जनसंख्या के भरण हेतु खाद्य पदार्थ के उत्पादन में कमी होगी।

भूमि अधिगृहण कारक द्वारा जिले की व्यापारिक कृषि को भी नुकसान पहुँचा है अधिकांश किसानों की भूमियों को भूमाफियों द्वारा खरीद लिया जाता है और उनमें कई प्रकार के धन्धें एवं आवासीय योजनाऐं बना दी जाती है इससे जिले की व्यापारिक कृषि प्रभावित हुई हैं।

6. प्रबन्धन/साख सुविधा –

पंचायत अथवा ग्रामसभा स्तरपर एक कृषि केन्द्र होना चाहिए। जहाँ ग्रामीण कृषि क्षेत्र से सम्बन्धित सभी कर्मचारी आवासीय सुविधाओं के साथ कार्यालय में कार्य कर सकें। यहाँ एक सरकारी समिति भी होनी चाहिए अथवा कृषि सहकारी समिति का विक्रय केन्द्र भी होना चाहिए जिस पर कृषि मानकों के अनुसार जिले के सभी गाँवों के किसानों को बीज, उर्वरक, कीटनाशक आदि की व्यवस्था कराई जाए जो किसानों को ऋण के रूप में उपलब्ध हो साथ ही ऐसे उपकरण जिनकी किसानों को थोड़े समय के लिए आवश्यकता पड़ती है वह उपलब्ध रहने चाहिए जैसे – निराई, गुड़ाई, बुवाई तथा कीटनाशकों के छिड़काव से सम्बन्धित यंत्र अथवा कीमती यंत्र जिन्हें किसान व्यक्तिगत आय से खरीदने में असमर्थ रहता है आदि। संभव हो तो ट्रेक्टर, थ्रेशर, कंबाइन, हार्वेस्टर आदि की सुविधाऐं भी किराए पर उपलब्ध होनी चाहिए ताकि छोटा या लघु सीमान्त वर्ग के किसान बिना किसी बाधा के खेती कर सकें।

खेती में जो भी व्यापारिक फसलें बोई जाए उस फसल को सहकारी समिति के माध्यम से बीमाकृत कराया जाए और सरकार की नितियों में आवश्यकतानुसार परिवर्तन करके यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि जिस किसान की फसल को जिस तरह से भी नुकसान हुआ जैसे– अतिवृष्टि, सूखा, ओलावृष्टि, आग, चोरी, बाढ़ या अन्य कारण तो उस किसान को उसके नुकसान की भरपाई तुरंत की जानी चाहिए जिससे की किसान अपनी 6 माह से पालन–पोषण करके तैयार की गई फसल की बर्बादी से गरीबी की ओर जाने से बच सकें।

न्याय पंचायत स्तर पर 50 प्रतिशत से अधिक नुकसान होने पर उस न्याय पंचायत के किसान को बीमा का लाभ मिलता है। यह बिल्कुल अन्यायपूर्ण बात है। बीमा कराना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि बीमा कंपनी की यह समीक्षा भी होनी चाहिए कि क्षेत्र के कितने किसानों को इसका लाभ हुआ है। अधिकांश बीमा कंपनी बीमा करने के बाद इसकी खबर नहीं लेती और यदि किसान सम्पर्क भी करता है तो उसे कानूनी दांव–पेंच में फंसाकर परेशान कर देती हैं। जिससे वह इसके लाभ से वंचित रह जाता है। कृषि उपज प्रबन्धन के लिए बीमा अति महत्वपूर्ण और उपयोगी है जिससे जिले के सभी किसानों को ऋणग्रस्तता से बचाया जा सकता है।

विचार करने वाली बात यह है कि किसान की फसल 6 माह में तैयार होती है और उस फसल को तैयार करने के लिए आज भी किसान नंगे पाव सर्दी, गर्मी, बरसात में खुले आकाश के नीचे रात–दिन परिश्रम करके अपनी फसल तैयार कर लेता है। खेतों में रात–दिन कार्य करते समय दुर्भाग्यवश यदि कोई जानवर काट लेता है या कोई दुश्मन उसकी हत्या कर देता है तो ऐसी दशा में उसका कोई बीमा नहीं होता। ऐसे में उनके बच्चें सड़क पर आ जाते हैं, दिन–रात एक करके देश की सूरत बदलने वाला किसान व उसका परिवार न केवल भूखा सोने को मजबूर होता है बल्कि हमेशा के लिए निराश्रित हो जाता है। अतः कृषकों को फसल बीमा के अलावा कृषक बीमा भी कराया जाना चाहिए जिससे विपत्ति के समय सहायता मिल सके।

जिले की व्यापारिक कृषि को बढ़ावा देने के लिए किसानों को ऋण दिये जाने की व्यवस्था एवं सुविधाओं को मजबूत तथा उदार बनाने की आवश्यकता है। किसानों के लिए किसान क्रेडिट कार्ड जो व्यवस्था की गई है वह अच्छी तो है लेकिन उसका व्यावहारिक पक्ष देखा नहीं गया है। जैसे कोई समिति अपने कार्य क्षेत्र के बाहर ऋण नहीं दे सकती और उस समिति से ही धन एवं कृषि उपयोगी सामग्री प्राप्त होती है तब उसके किसान क्रेडिट कार्ड का कोई मतलब नहीं है। किसान के पास सहकारी समिति की पासबुक शुरू से ही दी जाती है जिसमें उसका विवरण अंकित होता है। उसकी ऋण सीमा भी स्वीकृत की जाती है। उस ऋण सीमा के अन्तर्गत वह नगद या वस्तु के रूप में ऋण प्राप्त कर सकता है।

किसानों को व्यापारिक कृषि के अन्तर्गत बोई जाने वाली फसलों के लिए कई प्रकार की साख सुविधा की आवश्यकता होती है। ये आवश्यकताऐं दो तरह की होती है, एक अल्पकालीन और दूसरी दीर्घकालीन। अल्पकालीन व्यवस्था के अन्तर्गत सरकार का विशेष ध्यान रहता है परन्तु दीर्घकालीन ऋणों में किसान की आवश्यकता पर विशेष अल्पकालीन ऋणों की तुलना में अधिक है। किसान की अन्य आवश्यकताओं के लिए ऋणों का कोई प्रावधान

दीर्घकालीन व्यवस्था में नहीं है। जिससे एक ही किसान को दोहरे मापदण्डों का सामना करना पड़ता हैं।

इस व्यवस्था में बेहद सुधार की आवश्यकता है। परियोजना आधारित ऋण वितरण को समाप्त कर ऋण सीमा स्वीकृत करते हुए सस्ती ब्याज दरों पर ऋण तथा किसान क्रेडिट कार्ड उपलब्ध कराए जाने चाहिए। जिससे जिले में हो रही व्यापारिक फसलों के उत्पादन को बढ़ावा मिल सके एवं कृषकों की आर्थिक स्थिति में भी सुधार हो।

7. क्रय–विक्रय व्यवस्था –

जिले की व्यापारिक कृषि को बढ़ावा देने के लिए किसानों के लिए फसलों की उपज का क्रय–विक्रय की व्यवस्था का होना नितांत आवश्यक है। जब किसान अपने कृषि उत्पाद को लाता है तो उसके मूल्य निरंतर गिरने लगते हैं और मध्यस्थ सस्ती दरों पर उसका माल क्रय कर लेते हैं। दुर्भाग्य है कि व्यापारिक कृषि घाटे का व्यवसाय बना हुआ है। दुर्भाय है कि संबंधित लोग औद्योगिक क्षेत्रों के उत्पादन की दरे लागत, मांग एवं पूर्ती को ध्यान में रखते हुए निर्धारित करते हैं किन्तु किसान की जींसों का मूल्य या तो सरकार या क्रेता द्वारा निर्धारित किया जाता है उसमें भी शीघ्र नष्ट होने वाले उत्पाद की बिक्री के समय किसान असहाय दिखाई देता है। ऐसी दशा में क्रय–विक्रय व्यवस्था को मजबूत और पारदर्शी बनाया जाना चाहिए और उसके उत्पाद का मूल्य भी मांग पूर्ती और लागत के आधार पर किसान को निर्धारित कर लेने देना चाहिए। यह सर्वविदित है कि किसानों का उत्पाद इतना अच्छा और अधिक हो जाता है कि वह सड़ने लगता है और किसान उसे फैंकने को मजबूर हो जाता है और कभी–कभी उत्पादन इतना कम होता है कि उसे मध्यस्थ सस्ती दरों पर क्रय कर उच्च दरों पर बिक्री कर बीच का मुनाफा ले लेता है और किसान ठगा सा रह जाता है।

जिले में उत्पाद मूल्य के व्यापक प्रचार–प्रसार के लिए सूचना विभाग भी जिम्मेदार है। आज भी किसान के पास ऐसा तंत्र–मंत्र नहीं है जो यह तय कर सके कि उसके उत्पाद का उचित मूल्य आज किस बाजार में क्या है और भविष्य में मूल्य घटने–बढ़ने की क्या संभावनाऐं हैं? जब वह अपने उत्पाद को मण्डी में ले जाता है तब उसे उस दिन का भाव पता चलता है। किसान अपने उत्पादन पुनः घर वापस लाने पर किराया भाड़ें का बोझ परेशानी आदि को देख मजबूर होकर क्रेता के चुंगल में फंसता है और क्रेताओं का संगठित गिरोह उसके उत्पाद को मनमाने दामों में क्रय कर लेते हैं।

इसलिए किसानों को उनके उत्पाद का उचित मूल्य मिलने के लिए उन्हीं के मध्य व्यक्तियों के माध्यम से कोई सम–सामयिक रणनिति बनाई जानी चाहिए। ताकि जिले की

व्यापारिक कृषि को उचित दाम मिल सके और आगे किसान इसके उत्पादन एवं कृषि करने को अग्रसर हो।

8. भण्डारण व्यवस्था –

किसान का ऐसा उत्पाद जो विभिन्न समितियों के माध्यम से क्रय किया जाता है उसके किसी न किसी गोदाम में रखने की व्यवस्था अथवा निर्यात की व्यवस्था की जानी चाहिए। उस क्रय किये गये उत्पाद की ग्रेडिंग व्यवस्था भी होनी चाहिए ताकि कुल उत्पाद की मात्रा पर उसके ग्रेड के अनुरूप बिक्री मूल्य मिल सके।

9. भाग्यवादी किसान –

उत्पादन सम्बन्धी व्यापारिक कृषि के सम्बन्ध में जिले के किसानों को पयाप्त अनुभव नहीं है। किन्तु अनेक बार शीत लहर, पाला व अनेक बार ओले अथवा सर्दी फसल को नष्ट कर देते हैं। उसे अपने श्रम का उचित प्रतिफल प्राप्त नहीं होता। अतः वह कृषि को व्यवसाय के रूप में नहीं बल्कि, जीवनयापन की प्रणाली के रूप में अपनाता है। स्वभावतः वह वांछनीय मात्रा में उत्पादन उपलब्ध नहीं कर सकता। जिले के किसान की इसी भाग्यवादी प्रवृति में परिवर्तन करने की एक रीति यह है कि उसे अधिकाधिक शिक्षित करने का प्रयत्न किया जाए। इसके अतिरिक्त प्राकृतिक संकटों का सामना करने के लिए वैज्ञानिक साधनों का प्रयोग करने की चेष्ठा करनी चाहिए। जिससे जिले की व्यापारिक कृषि को बढ़ावा मिल सके।

10. खाद/उर्वरक –

जिले में पशुओं की संख्या अधिक है और उनके मल तथा मूत्र से कई टन खाद प्राप्त की जा सकती है इसके अतिरिक्त कम्पोस्ट तथा अन्य बेकार वस्तुओं से भी कई टन खाद उपलब्ध हो सकती है। दुभाग्य से गोबर का अधिकांश भाग ईंधन के रूप में जला दिया जाता है क्योंकि ग्रामीण क्षेत्रों में अन्य सस्ते ईंधन का अभाव है। फलस्वरूप खेतों को पर्याप्त मात्रा में खाद नहीं मिल पाती जिससे जिले की व्यापारिक कृषि उत्पादन की स्थिति अच्छी नहीं रह पाती है।

वर्तमान में जिले में व्यापारिक कृषि के विकास में रासायनिक उर्वरकों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई हैं। पोषण की दृष्टि से उर्वरकों की प्रति हैक्टेयर खपत पहले की तुलना में अब काफी मात्रा में बढ़ी हैं। कृषक कृषि में अधिक उत्पादन पाने के लिए अधिक से अधिक उर्वरकों का प्रयोग कर रहे हैं। तथापि मृदा की सीमांत उत्पादकता जिले की व्यापारिक कृषि के लिए

अभी भी चुनौती बनी हुई है। इसके लिए जिले में व्यापारिक कृषि करने वाले किसानों को मृदा विश्लेषण के आधार वर्णित एंव उचित पौषणों के अनुप्रयोग की आवश्यकता है जिससे व्यापारिक कृषि में आ रही उत्तम खाद की जरूरत पूर्ण हो सके एवं उत्पादन में वृद्धि हो सके।

11. सिंचाई –

यह जिले की व्यापारिक कृषि ही नहीं अपितु, सम्पूर्ण भारतीय कृषि की समस्याओं में एक महत्वपूर्ण समस्या कृषि में सिंचाई की है। आज भी भारतीय किसान अपनी कृषि उत्पादन के लिए मानसून पर निर्भर है। जिले में व्यापारिक कृषि के अलावा अन्य कृषि फसलों पर वृहत और मध्यम सिंचाई योजनाओं के जरिए सिंचाई का पर्याप्त संभावनाओं का सृजन किया गया है। कृषि का मानसून की निर्भरता का प्रभाव यह होता है कि जिले की अधिकांश भाग की कृषि प्रकृति की दया पर निर्भर है। दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि जब तक सिंचाई की पूर्णतया व्यवस्था नहीं होती, तब तक भूमि में खाद देना भी संभव नहीं हैं क्योंकि खाद का उचित मात्रा में प्रयोग करने के लिए काफी जल की आवश्यकता होती है। इसके बिना कृषि फसलों के सूखने का भी भय रहता है और कई बार किसानों द्वारा की गई मेहनत पर पानी फिर जाता हैं। सिंचाई की यह कमी जिले के कई भागों में महसूस की जा सकती है। यहाँ औसत वार्षिक वर्षा अधिक होने के बाद भी जिले के कई भागों में सिंचाई के साधनों का अभाव हैं जिससे वहाँ की सम्पूर्ण कृषि व्यवस्था पूर्णतः मानसून पर ही निर्भर है। सिंचाई व्यवस्था का पूर्ण विकास जिले की व्यापारिक कृषि को बहुत आगे बढ़ा सकता है। अतः यहाँ की व्यापारिक फसलों में सिंचाई के साधन प्रमुख भूमिका निभाते हैं इसलिए सिंचाई के साधनों का विकास अत्यन्त ही महत्वपूर्ण हैं।

वर्षा के अभाव में खेतों को कृत्रिम ढंग से जल पिलाने की क्रिया को सिंचाई करना कहा जाता है। पौधें की दृष्टि एवं विकास में सिंचाई का महत्वपूर्ण योग होता है। जिससे उत्पादन में वृद्धि होती है। जिस प्रकार मानव को जल की एक निश्चित मात्रा की समय–समय पर आवश्यकता होती है उसी प्रकार किसी भी पौधें या फसल की वृद्धि के लिए भी सिंचाई आवश्यक साधन है। जल के अभाव में कोई भी पौंधा अपनी वृद्धि नहीं कर पाता हैं। उसे समय–समय पर आवश्यकतानुसार पानी (सिंचाई) की आवश्यकता होती हैं।

सिंचाई के साधनों की पर्याप्त व्यवस्था नहीं होने के कारण भी जिले में व्यापारिक कृषि का उत्पादन कम होता है। ग्रामीण क्षेत्रों में नदी, नाले, कुएँ व तालाब के माध्यम से कृषक सिंचाई करते हैं जिसका पानी प्रायः एक–दो बार फसलों को देने से सूख जाता हैं और बिजली व डीज़ल की पर्याप्त व्यवस्था नहीं होने से भी फसलों की सिंचाई सही ढंग से नहीं हो पाती

हैं। झालावाड़ जिले में जिले के किसानों को सिंचाई के समय विद्युत आपूर्ती पर्याप्त मात्रा में नहीं होने से फसलों की सिंचाई नहीं हो पाती। पाँच या छः घण्टे ही किसानों को बिजली मिलती है। जिससे फसलों को पर्याप्त सिंचाई नहीं होगी अतः उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता हैं।

12. कृषि रोग की समस्या –

जिले में उत्पादित हो रही व्यापारिक फसलों की एक महत्वपूर्ण समस्या फसलों में रोग की रही हैं। कभी–कभी फसलों की अनेक बिमारियाँ, बाढ़, ओले, पाला, शीतलहर विभिन्न कीड़ें–मकोड़े व वन्य जीव भी फसलों को हानि पहुँचाते रहते हैं। जिसमें भूमि का वास्तविक उत्पादन कम रह जाता हैं। फसल की बुवाई से लेकर उसके बड़े होने एवं कटने तक उसमें विभिन्न प्रकार के रोग लग जाते है जिससे पौधा तो प्रभावित होता ही है साथ ही उसके फलाव पर भी विपरित प्रभाव पड़ता है और वह पौधा धीरे–धीरे समीप के अन्य पौधो को भी रोगग्रस्त कर देता है इससे फसल उत्पादन पर विपरित प्रभाव देखने को मिलता है तथा वह इतना उत्पादन नही दे पाता जितनी उसकी क्षमता होती है। कृषको को अपनी फसलो को रोगो से बचाव के लिए फसल की बुवाई से पूर्व ही खंत की अच्छी तरह से गर्मी में जुताई कर देना चाहिए।

रासायनिक उर्वरको के स्थान पर वर्मी कम्पोस्ट,देशी खाद का प्रयोग करना चाहिए।बीजो को बोने से पूर्वउनका उचित ढंग से बीजोपचार करे,उसके बाद ही बीजो की बुवाई करे। खेत से कीट प्रकोपित पौधे को अन्य पौधे से अलग कर देवे एवं नजदीकी कृषि विज्ञान केन्द्र में जाकर उचित परामर्श लेकर कीटनाशक दवाईयों का प्रयोग करे। इस प्रकार के उपाय अपनाकर कृषक अपनी फसल की रक्षा कर सकते है एवं अपने उत्पादन को बढा सकते है।

अध्याय षष्ठ्म

सारांश, समीक्षा, सुझाव

सारांश :–

वैश्वीकरण व उदारीकरण के चलते बदलती आर्थिक नितियों के परिपेक्ष्य में जहां कृषि को उद्योग का दर्जा दिये जाने की पुरजोर वकालत की जा रही है वहां भारत पूरी दुनियां से अलग केसे रह सकता है। जबकि यहां की आबादी का एक बढा हिस्सा कृषि सम्बन्धी व्यवसाय से जुड़ा हुआ है, ऐसे में कृषि क्षेत्र एवं उसके उत्पादन व विकास की प्रवृत्तियों की उपेक्षा करना उचित न होगा। अतः आवश्यकता इस बात की है कि कृषि को उद्योग का दर्जा दिया जाये ताकि कृषि को एक उत्पादक क्षेत्र के रूप में पहचाना जा सके। यह तभी सम्भव है जब कृषि में परम्परागत तकनीक एवं फसलीय ढांचा को बदलकर अधिक लाभ एवं उपज प्राप्त की जा सके। इसके लिये आवश्यक है कि कृषि में परम्परागत फसलों के साथ–साथ नकद एवं व्यावसायिक फसलों का भी उत्पादन किया जाये जिससे कृषि में पूंजी निवेश बढने के साथ–साथ कृषि रोजगार मूलक होगी तथा कृषि क्षेत्र अपने आप में लाभदायक क्षेत्र के रूप में परिवर्तित हो सकेगा।

जहां तक झालावाड जिले की व्यापारिक कृषि परिदृश्य का प्रश्न है यहां पिछले कुछ दशकों में कृषि क्षेत्र के परिदृश्य में परिवर्तन देखने को मिलता है। जहां पहले जिले के कई भागो में खाद्यान्न फसलों की कृषि की जाती थी आज वहां के कृषि परिदृश्य में परिवर्तन स्वरूप व्यापारिक फसलों की कृषि की जा रही है। 2000 के दशक के पश्चात सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थाओं एवं कृषि से सम्बन्धित विभिन्न विभागो ने जिले की व्यापारिक कृषि परिदृश्य को समझकर इसके और अधिक विकास के लिये अग्रसर है। वर्तमान समय में कृषि मे नवीन तकनीकों के प्रयोग व उसमे आवश्यक परिवर्तन करने का निर्णय स्थानीय कृषि विभाग एवं कृषि विभाग से सम्बन्धित संस्थायें जिले मे हो रही व्यापारिक कृषि विकास को और आगे बढाने का प्रयास कर रही है।

सरकार की इन नितियों एवं संस्थाओं का कृषि विकास में योगदान का क्या प्रभाव पडा तथा स्थानीय व्यापारिक कृषि में किस प्रकार के परिवर्तन की परिस्थितियां विद्यमान है जिले की व्यापारिक कृषि परिदृश्य में क्या प्रवृत्तियां उभरकर सामने आई है इन समस्त बिन्दुओं का अध्ययन करने के लिये मेरे द्वारा "झालावाड जिले में व्यापारिक कृषि का स्वरूप एवं नवीन प्रवृत्तियों" का अध्ययन किया गया है।

प्रस्तुत शोध में स्थानीय सन्दर्भो के परिपेक्ष्य में मेरे द्वारा न्याय करने का पूरा प्रयास किया गया है अतः प्रस्तुत अध्ययन से जिले का राज्य एवं देश के कृषकों के हित में कोई लाभ होता है तो मैं इस प्रयास को सार्थक समझूंगा।

समीक्षा :–

झालावाड जिला कृषि प्रधान जिला है, यहां अधिकांश भाग में कृषि का कार्य किया जाता है पिछले दशकों में यहां कृषि खाद्यान्न उत्पादन तक ही सीमित थी, परन्तु पिछले कुछ वर्षो में कृषि कार्य एवं इसके स्वरूप में परिवर्तन होने लगा है पहले जहां खाद्यान्न फसलों का उत्पादन किया जाता था आज वहां व्यापारिक कृषि फसलों का उत्पादन हो रहा है इसका प्रमुख कारण जिले की जलवायु यहां उत्पादन होने वाली फसलों के अनुकूल है जो इसके उत्पादन एवं क्षेत्रफल में निरन्तर वृद्वि कर रही है।

इसके अलावा जिले के अधिकांश किसानों के द्वारा व्यापारिक कृषि फसलों को अन्य फसलों की अपेक्षा अधिक बोना है जिससे यह क्षेत्र अधिक व्यापारिक फसलोत्पादन में वृद्वि कर रहा है। प्रस्तुत शोध ग्रन्थ के अन्तर्गत व्यापारिक कृषि फसलों को स्वरूप एवं उसकी नवीन प्रवृत्तियों का अध्ययन जिले के विभिन्न क्षेत्रों के अन्तर्गत किया गया है क्योंकि जिले का सम्पूर्ण क्षेत्र विकसित व अविकसित नहीं रहता है बल्कि इससे भूमि आकार, उत्पादन क्षमता, सिंचाई के साधनों आदि में असमानता होती है जिसके कारण विभिन्न क्षेत्रो में फसल क्षेत्र उत्पादन, उत्पादन विधि, कृषि विकास के स्तर में भिन्नताऐं उत्पन्न हो सकती है। अतः प्रस्तुत शोध के अर्न्गत जिले में कौनसा स्थान व्यापारिक फसलों का अधिक उत्पादन कर रहा है का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

झालावाड जिले में विगत कुछ वर्षो में व्यापारिक कृषि फसलों के उत्पादन एवं उत्पादक क्षेत्रों में परिवर्तन परीलक्षित हो रहे हैं जैसे वर्तमान में जिले मे सोयाबीन की फसल को एक लाभकारी फसल के रूप में माना जा रहा है। अतः इसके फसल क्षेत्र में धीरे–धीरे वृद्वि होती जा रही है तथा उत्पादन भी बढ रहा है, पिछले दशकों में सोयाबीन के स्थान पर अन्य खाद्यान्न फसलों का उत्पादन किया जाता था जिसका स्थान सोयाबीन जैसी नकदी फसल ने ले लिया है क्योंकि सोयाबीन फसल की उत्पादकता एवं कीमत अन्य फसलों की

तुलना में कई गुनी अधिक है। इसके अतिरिक्त सोयाबीन की फसल जोखिम पूर्ण नही है तथा इसे पानी की भी कम आवश्यकता होती है अतः वर्षा कम होने पर भी सोयाबीन की फसल को नुकसान नही पहुंचता है इसके साथ ही सोयाबीन में तेल व प्रोटीन की मात्रा अधिक होने के कारण इसका उपयोग बढ रहा है इसका प्रयोग खादय प्रदार्थ एवं तिलहन के रूप में होता है।

इस प्रकार जिले मे विगत कुछ वर्षो में फसल प्रारूप में परिवर्तन आये हैं पहले सोयाबीन के स्थान पर अधिकांश भागो में मक्का की कृषि की जाती थी परन्तु धीरे–धीरे उसका स्थान सोयाबीन की फसल ने ले लिया है इसलिये यह कहना अनुचित न होगा कि सोयाबीन जिले की एक प्रमुख व्यापारिक फसल है जिसकी और अधिक मात्रा में उत्पादन बढने की सम्भावना है। इसके अलावा दुसरे नम्बर पर धनियें की फसल की कृषि अधिक मात्रा में की जाती है।

प्रस्तुत अध्ययन की अवधि वर्ष 2005–06 से वर्ष 2014–15 तक कुल 10 वर्षो की है इस अवधि में प्रमुख चयनित व्यापारिक कृषि फसलों के क्षेत्रफल, उत्पादन एवं उत्पादकता में होने वाले दशकीय परिवर्तनों का अध्ययन किया गया है। दशकीय परिवर्तनों के अध्ययन के साथ–साथ विभिन्न फसलों के उत्पादन का इसके क्षेत्रफल एवं उत्पादकता के साथ सम्बन्ध की विवेचना भी की गई है साथ ही फसलों के उत्पादन पर इनके क्षेत्रफल एवं उत्पादकता के प्रभाव का भी विश्लेषण किया गया है।

प्रस्तुत शोघ हेतु चयनित प्रमुख फसलों के क्षेत्रफल, उत्पादन एवं उत्पादकता में होने वाले दशकीय एवं कुल अवधि में होने वाले परिवर्तनों का अध्ययन करने पर यह ज्ञात हुआ है कि पिछले 10 वर्षो में सोयाबीन के क्षेत्रफल में जो वर्ष 2005–06 में 189406 हैक्टेयर था वह 2014–15 में बढकर 251582 हैक्टेयर हो गया है। इस प्रकार सोयाबीन का उत्पादन भी इसी अवधि में 2005–06 में 190127 मेट्रिक टन से बढकर वर्ष 2014–15 में 226424 मेट्रिक टन हो गया है। क्षेत्रफल एवं उत्पादन में इस वृद्वि के परिणाम स्वरूप इसकी वृद्वि अन्य फसलों की तुलना में सर्वाधिक रही है इस प्रकार सोयाबीन के उत्पादन में वृद्वि के कारण जिले का राजस्थान राज्य में प्रमुख स्थान है। सोयाबीन के अतिरिक्त जिले में सरसों के उत्पादन में भी वृद्वि की प्रवृत्ति पायी गई है जबकि अन्य फसलों जैसे अफीम की कृषि में ऋणात्मक वृद्वि देखने को मिलती है।

इस प्रकार यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि जिले की व्यापारिक फसलों में इन दो फसलों की प्रमुख भूमिका रही है। अन्य व्यापारिक फसलों में लहसुन, धनियां, संतरा की कृषि का प्रमुख स्थान है। इनकी कृषि मे भी जिले में दशकीय वृद्वि देखने को मिलती है संतरा का क्षेत्रफल वर्ष 2005–06 में 6562 हैक्टेयर था जो वर्ष 2014–15 में बढकर 11148 हैक्टेयर हो गया। क्षेत्रफल के साथ ही इसके उत्पादन में भी वृद्वि हुई है जो वर्ष 2005–06 में 84518 मेट्रिक टन था वो बढकर 2014–15 में 258611 मेट्रिक टन हो गया है। संतरा के अलावा लहसुन एवं धनियें की कृषि में भी परिवर्तन देखने को मिलता है धनियें का वर्ष 2005–06 में कुल 44390 हैक्टेयर कृषि क्षेत्र था जो वर्ष 2014–15 में बढकर 106697 हैक्टेयर हो गया है। इसी प्रकार लहसुन वर्ष 2005–06 में 1685 हैक्टेयर पर बोया गया था जो वर्ष 2014–15 में बढकर 10242 हैक्टेयर हो गया है। इनके क्षेत्रफल में वृद्वि के साथ–साथ इनके उत्पादन में भी वृद्वि हुई है।

इस प्रकार संक्षेप्त में यह कहा जा सकता है कि झालावाड जिले में प्रमुख कृषि फसलों में अफीम को छोडकर अन्य सभी फसलों के उत्पादन एवं क्षेत्रफल में निरन्तर वृद्वि हो रही है। प्रस्तुत शोध प्रबन्धन अध्ययन हेतु चयनित विभिन्न फसलों के उत्पादन, क्षेत्रफल एवं उत्पादकता के साथ सम्बन्धों की विवेचना की गई है।

प्रमुख व्यापारिक फसलों की क्षेत्रानुसार क्रमबद्वता वर्ष 2014–15

तालिका संख्या 6.1

क्र.स.	फसलों का नाम	फसलों का क्षेत्रफल
1	सोयाबीन	251582
2	धनियां	106697
3	सरसों	30156
4	संतरा	11427
5	लहसुन	10242
6	अफीम	14

प्रमुख व्यापारिक फसलों का क्षेत्रानुसार क्रमबद्धता वर्ष–2014–15

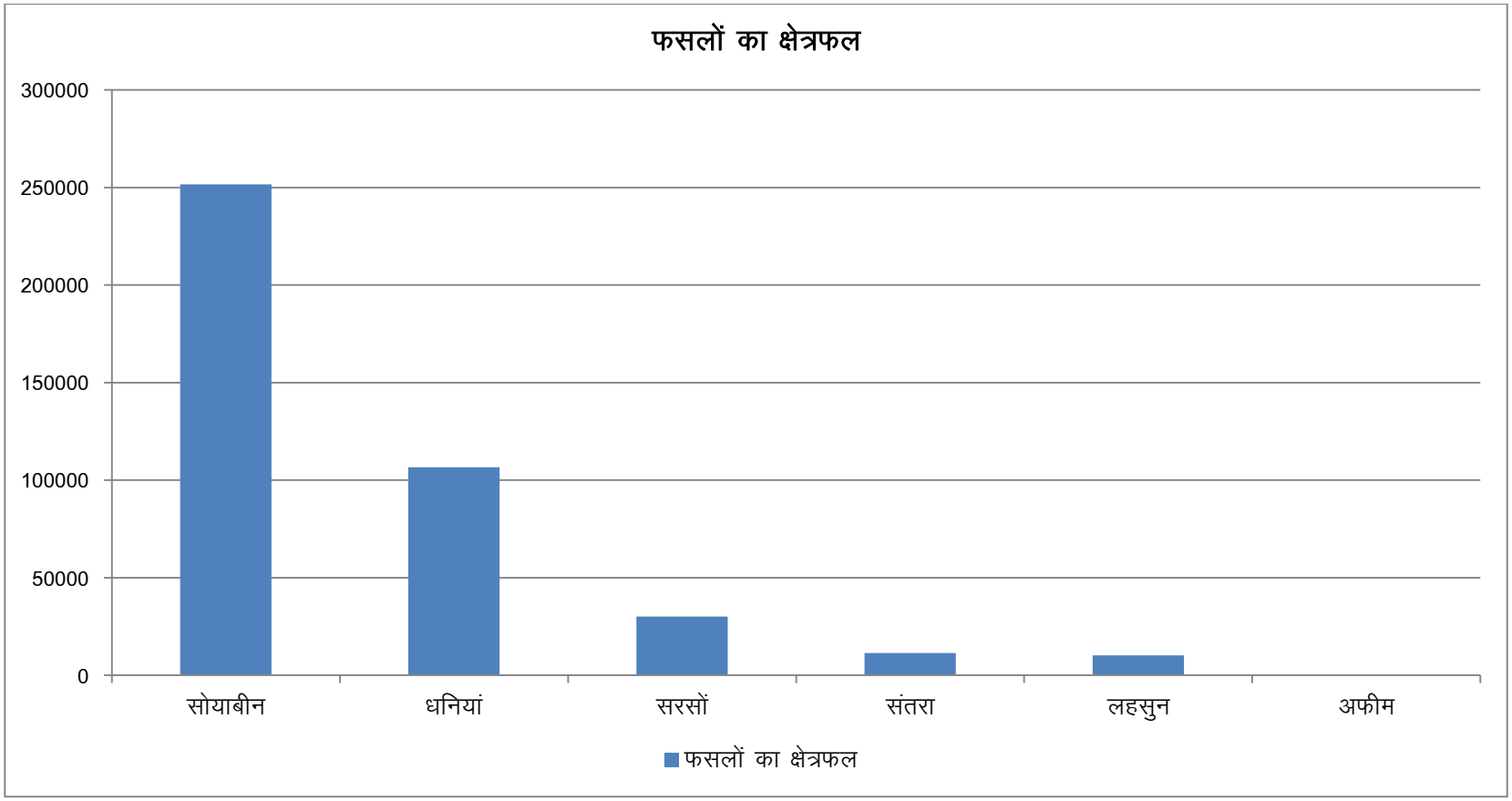

इस प्रकार तालिका संख्या 6.1 से ज्ञात होता है कि जिले में हो रही व्यापारिक कृषि फसलों मे सोयाबीन फसल का प्रमुख स्थान है, जिले में सबसे अधिक क्षेत्र में बोई जाने वाली तथा उत्पादन इसी फसल का किया जाता है। वर्ष 2014—15 के कुल फसलीय क्षेत्र के 251582 हैक्टेयर पर इसका कृषि कार्य किया गया है। सोयाबीन फसल के बाद दुसरे नम्बर की व्यापारिक फसल में धनियें का स्थान आता है जिले के अधिकांश भाग में धनियें की फसल की कृषि की जाती है। यह वर्ष 2014—15 में कुल फसलीय क्षेत्र के 106697 हेक्टेयर पर इसका कृषि कार्य किया गया है धनियें के बाद सरसों की फसल का उत्पादन किया जाता है जिले की अधिकांश सरसों का उत्पादन खानपुर तहसील में किया जाता है।

वर्ष 2014—15 में कुल फसलीय क्षेत्र के 30156 हैक्टेयर पर इसका कृषि कार्य किया गया। सरसों के बाद उत्पादित होने वाली फसलों में संतरा, लहसुन एवं अफीम है। संतरा उत्पादन में झालावाड का राज्य में ही नहीं अपितु देश में भी प्रमुख स्थान है यहां का उत्पादित संतरा राज्य एवं देश के कई राज्यों में भेजा जाता है। संतरा उत्पादन ने जिले को एक नई पहचान दी है जिले को राजस्थान में "नागपुर" के नाम से जाना जाता है। संतरा उत्पादन में पिछले कुछ वर्षो में निरन्तर वृद्वि हुई है यह वर्ष 2014—15 में कुल 11427 हैक्टेयर पर इसकी बागवानी की गई। संतरा की बागवानी के बाद जिले में लहसुन की खेती भी प्रचुर मात्रा में की जाती है तथा उत्पादन भी अधिक किया जाता है। वर्ष 2014—15 में कुल फसलीय क्षेत्र के 10242 हैक्टेयर क्षेत्रफल पर इसका कृषि कार्य किया गया।

अफीम उत्पादन में जिले में निरन्तर कमी आ रही है। इसका प्रमुख कारण सरकार की नितियों का होना है। यह जिले मे वर्ष 2014—15 में मात्र 14 हैक्टेयर क्षेत्र पर इसका कृषि कार्य हुआ है।

Jhalawar District

Area Condition According to Soyabeen Production in Tehsil

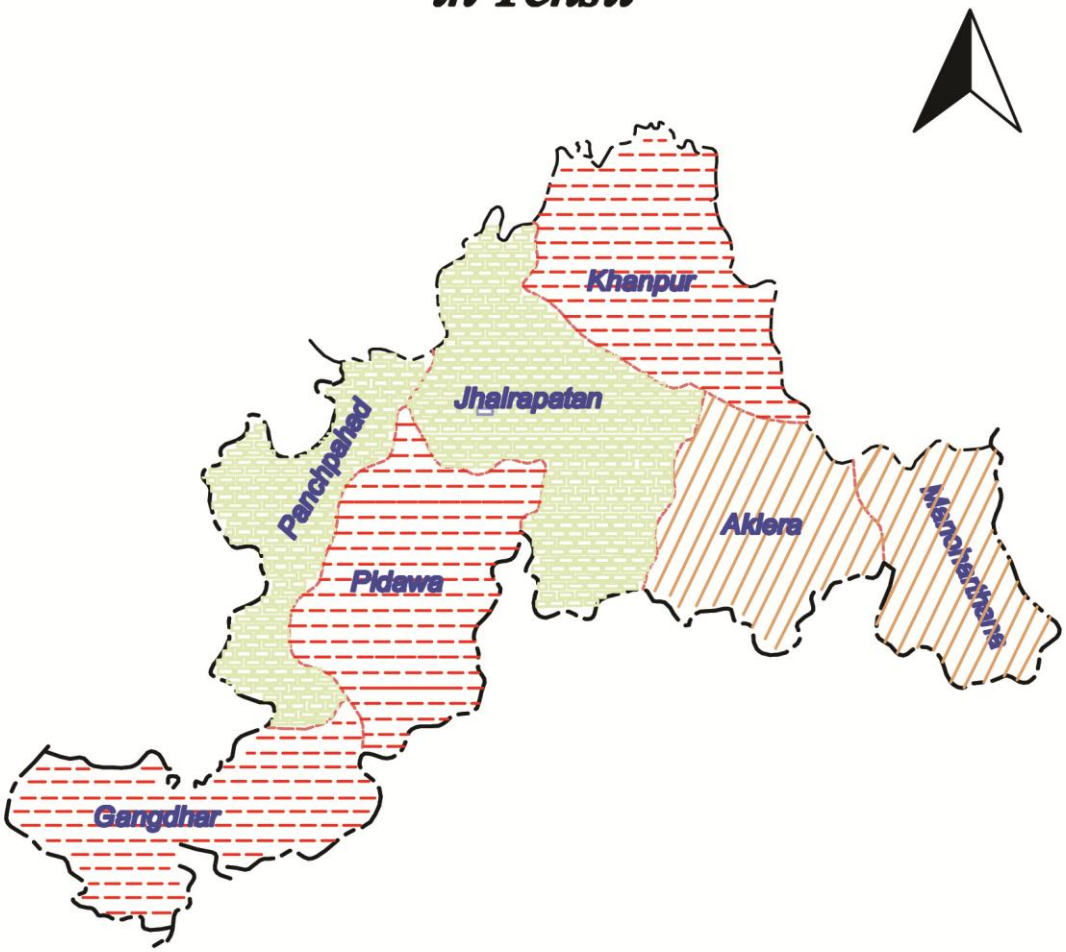

INDEX

- High Production Area
- Medium Production Area
- Low Production Area

Scale
1:1,000,000
Km 10 5 0 10 20 Km

जिले का कृषि विकास स्तर में क्षेत्रीय भिन्नता तहसील अनुसार

तालिका संख्या 6.2

क्र.स.	फसल का नाम	उच्च स्तर	मध्यम स्तर	निम्न स्तर
1	सोयाबीन	पिडावा, गंगधार, खानपुर	झा.पाटन, पचपहाड़	मनोहरथाना, अकलेरा
2	धनियां	पिडावा, खानपुर	झा.पाटन, पचपहाड़	मनोहरथाना, अकलेरा, गंगधार
3	सरसों	खानपुर	पिडावा, अकलेरा, गंगधार	मनोहरथाना, झालरापाटन, पचपहाड़
4	लहसुन	खानपुर	झा.पाटन, पिडावा	मनोहरथाना, अकलेरा, गंगधार, पचपहाड़
5	संतरा	झालरापाटन,पिडावा	पचपहाड़, अकलेरा	मनोहरथाना, खानपुर, गंगधार
6	अफीम	झालरापाटन, अकलेरा, मनोहरथाना	पिडावा, गंगधार, पचपहाड़	खानपुर

उक्त तालिका से स्पष्ट है कि जिले की प्रमुख व्यापारिक कृषि फसलों का उत्पादन करने वाली तहसीलों को फसल विशेष के अनुसार तीन स्तरों में विभाजित किया गया है उच्च स्तर, मध्यम स्तर, निम्न स्तर जिससे ज्ञात होता है कि फसल विशेष का उत्पादन कौनसी तहसील उच्च, मध्यम, निम्न स्तर पर उत्पादन करती है। व्यापारिक कृषि फसलों का उत्पादन करने वाली तहसीलों को फसल उत्पादन के अनुसार मानचित्र द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

सोयाबीन :–

सोयाबीन की कृषि सामान्यतः सम्पूर्ण जिले मे की जाती है इसका प्रमुख रूप से उच्च स्तर पर उत्पादन करने वाली तहसीलों में पिड़ावा, गंगधार, खानपुर का प्रमुख स्थान है। जिले की अधिकांश सोयाबीन का उत्पादन इन्ही तहसीलों मे किया जाता है। मध्यम स्तर पर झालरापाटन एवं पचपहाड़ तहसील सोयाबीन का उत्पादन करती है। सोयाबीन का सबसे कम निम्न स्तर पर उत्पादन करने वाली तहसीलों में मनोहरथाना तथा अकलेरा का स्थान आता है सोयाबीन उत्पादक तहसीलों को मानचित्र के अनुसार भी प्रदर्शित किया गया है।

धनियाँ :–

उपर्युक्त तालिका एवं मानचित्र से स्पष्ट है कि धनियें की कृषि जिले के सम्पूर्ण क्षेत्र पर की जाती है इसका उच्च स्तर पर उत्पादन करने वाली तहसीलों मे पिडावा एवं खानपुर का सर्वोच्च स्थान है। मध्यम स्तर पर झालरापाटन एवं पचपहाड़ तहसीलों में धनियें का उत्पादन किया जाता है। निम्न स्तर पर धनियां उत्पादित करने वाली तहसीलों में मनोहरथाना, अकलेरा, गंगधार का स्थान है।

सरसों :–

सरसों का उत्पादन उच्च स्तर पर करने वाली तहसील में खानपुर का प्रमुख स्थान है जिले की अधिकांश सरसों का उत्पादन इसी तहसील मे होता है। सरसों का मध्यम स्तर पर उत्पादन करने वाली तहसीलों में पिडावा, अकलेरा का स्थान आता है। जिले की अन्य तहसीलें मनोहरथाना, झालरापाटन, गंगधार निम्न स्तर पर सरसों का उत्पादन करती है।

Jhalawar District

Area Condition

According to Coriander Production

in Tehsil

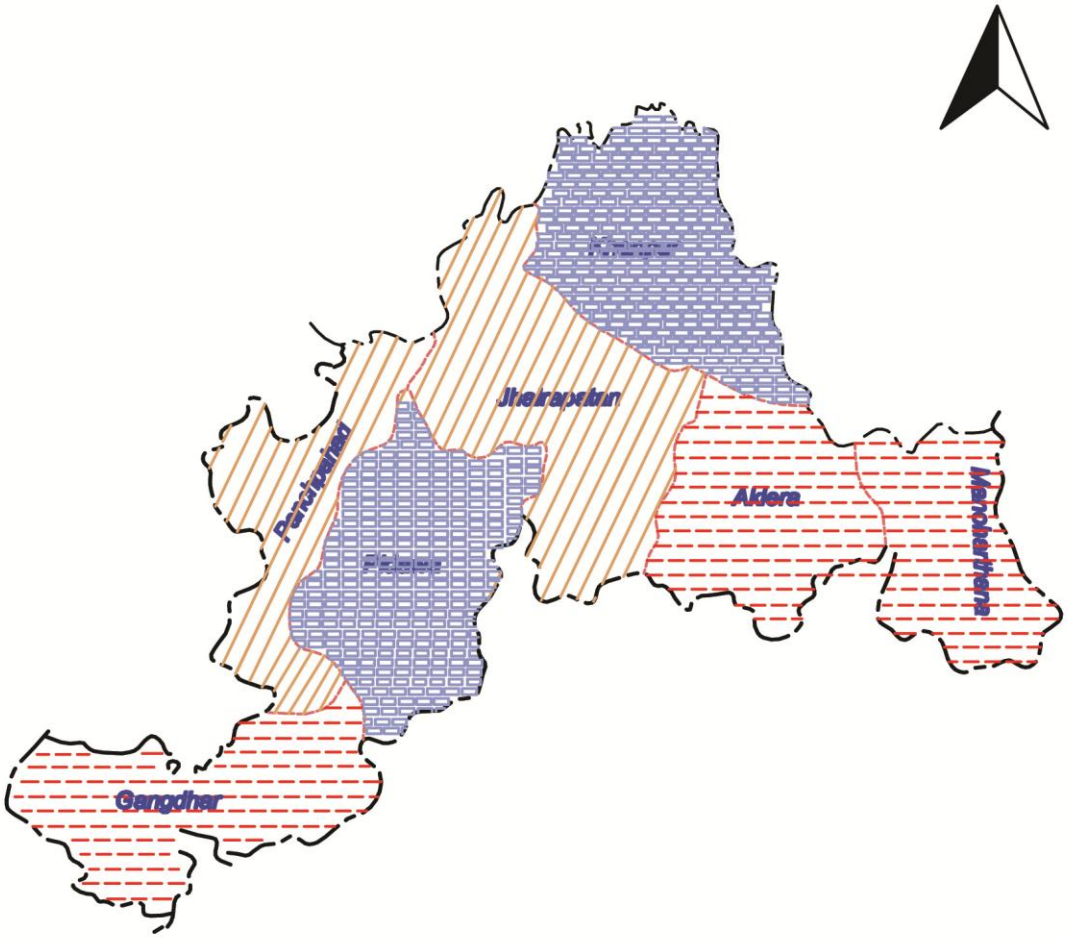

INDEX

- High Production Area
- Medium Production Area
- Low Production Area

Scale

1:1,000,000

Km 10 5 0 10 20 Km

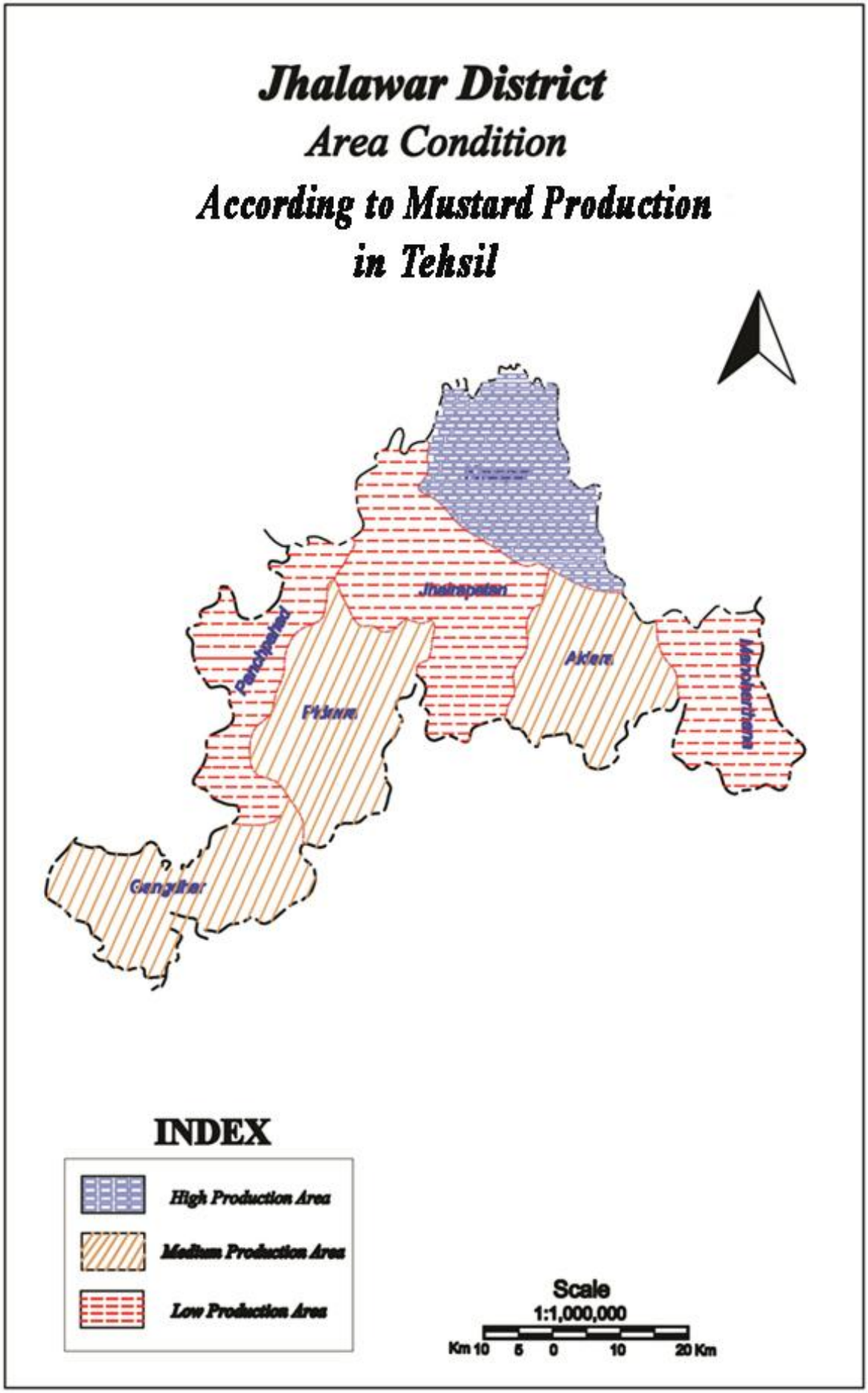
Jhalawar District
Area Condition
According to Mustard Production
in Tehsil
Jhalrapatan
Pachpahar
Aklera
Gangdhar
INDEX
High Production Area
Medium Production Area
Low Production Area
Scale
1:1,000,000
Km 10 5 0 10 20 Km

लहसुन :—

लहसुन का उत्पादन करने वाली तहसीलों में खानपुर का प्रमुख स्थान है। लहसुन उत्पादन में इस तहसील का स्थान उच्च स्तर का है मध्यम स्तर पर लहसुन का उत्पादन करने वाली तहसीलो में झालरापाटन एवं पिडावा का क्षेत्र आता है। मनोहरथाना, अकलेरा, गंगधार तहसील निम्न स्तर पर लहसुन का उत्पादन करती है।

संतरा :—

संतरा उत्पादन करने में जिले का स्थान राज्य मे सर्वोपरी है जिले मे उच्च स्तर पर संतरा उत्पादन करने वाली तहसीलों मे झालरापाटन एवं पिडावा का प्रमुख स्थान है। संतरा का मध्यम स्तर पर उत्पादन पचपहाड़ एवं अकलेरा तहसीलों मे होता है। जिले की निम्न स्तर पर संतरा उत्पादन करने वाली तहसीलों मे मनोहरथाना, खानपुर, गंगधार तहसीले आती हैं।

अफीम :—

अफीम उत्पादन करने वाली प्रमुख तहसीलों में उच्च स्तर पर झालरापाटन, अकलेरा, मनोहरथाना का स्थान आता है मध्यम स्तर पर पिडावा एवं गंगधार तहसीलें अफीम का उत्पादन करती है। निम्न स्तर पर अफीम उत्पादन करने वाली तहसील में खानपुर का स्थान आता है।

अतः कहा जा सकता है कि जिले की कृषि फसलों के प्रारूप में परिवर्तन की प्रवत्ति में उन्नत कृषि का प्रभाव फसल के स्वरूप में पडा है तथा फसलों की कृषि में नवीन प्रवत्तिया उभरकर सामने आई हैं जिले के किसान अपनी परम्परागत कृषि प्रक्रिया को छोडकर नवीन कृषि प्रणाली को अपनाते हुये बीज, उर्वरक, कृषि यंत्र आदि का उपयोग कर रहे हैं किन्तु वर्तमान में जिले में कृषि फसलों के क्षेत्रफल एवं उत्पादन में जो नवीन प्रवत्तियां उभरकर सामने आई हैं एवं फसल प्रारूप में जो भी परिवर्तन हुआ है उसमें उन्नत कृषि का भी योगदान है।

Jhalawar District

Area Condition According to Garlic Production in Tehsil

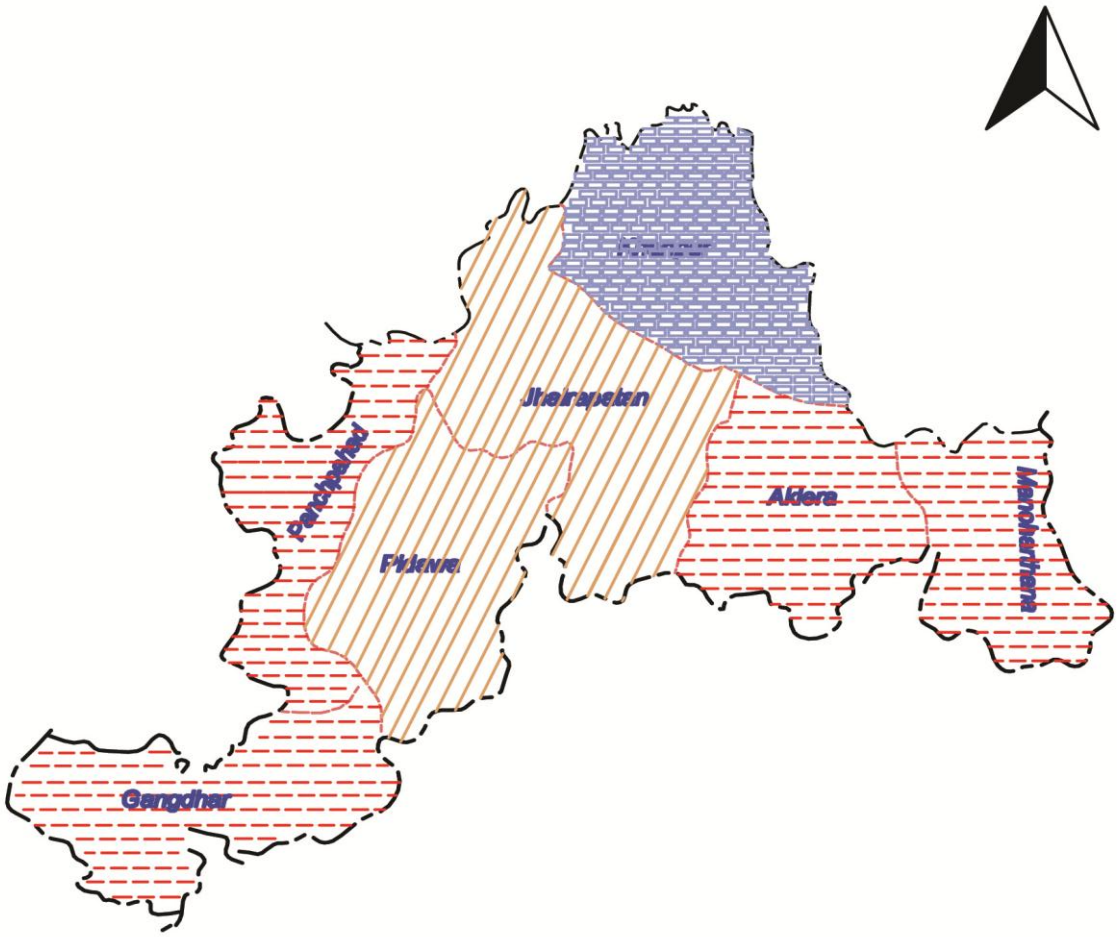

INDEX

- High Production Area
- Medium Production Area
- Low Production Area

Scale
1:1,000,000
Km 10 5 0 10 20 Km

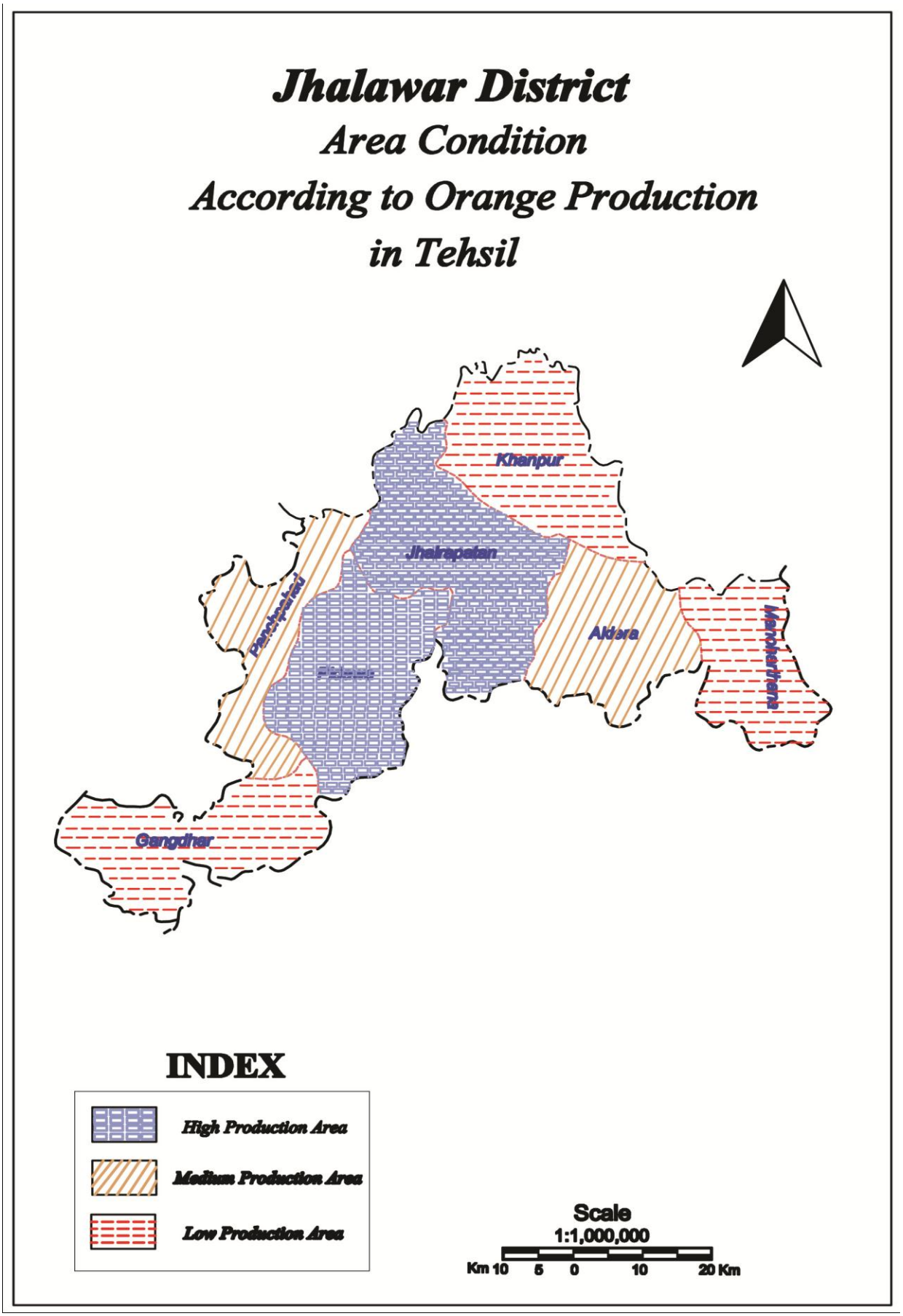
Jhalawar District
Area Condition
According to Orange Production
in Tehsil
Khanpur
Jhalrapatan
Pachpahad
Aklera
Manoharthana
Gangdhar
INDEX
High Production Area
Medium Production Area
Low Production Area
Scale
1:1,000,000
Km 10 5 0 10 20 Km

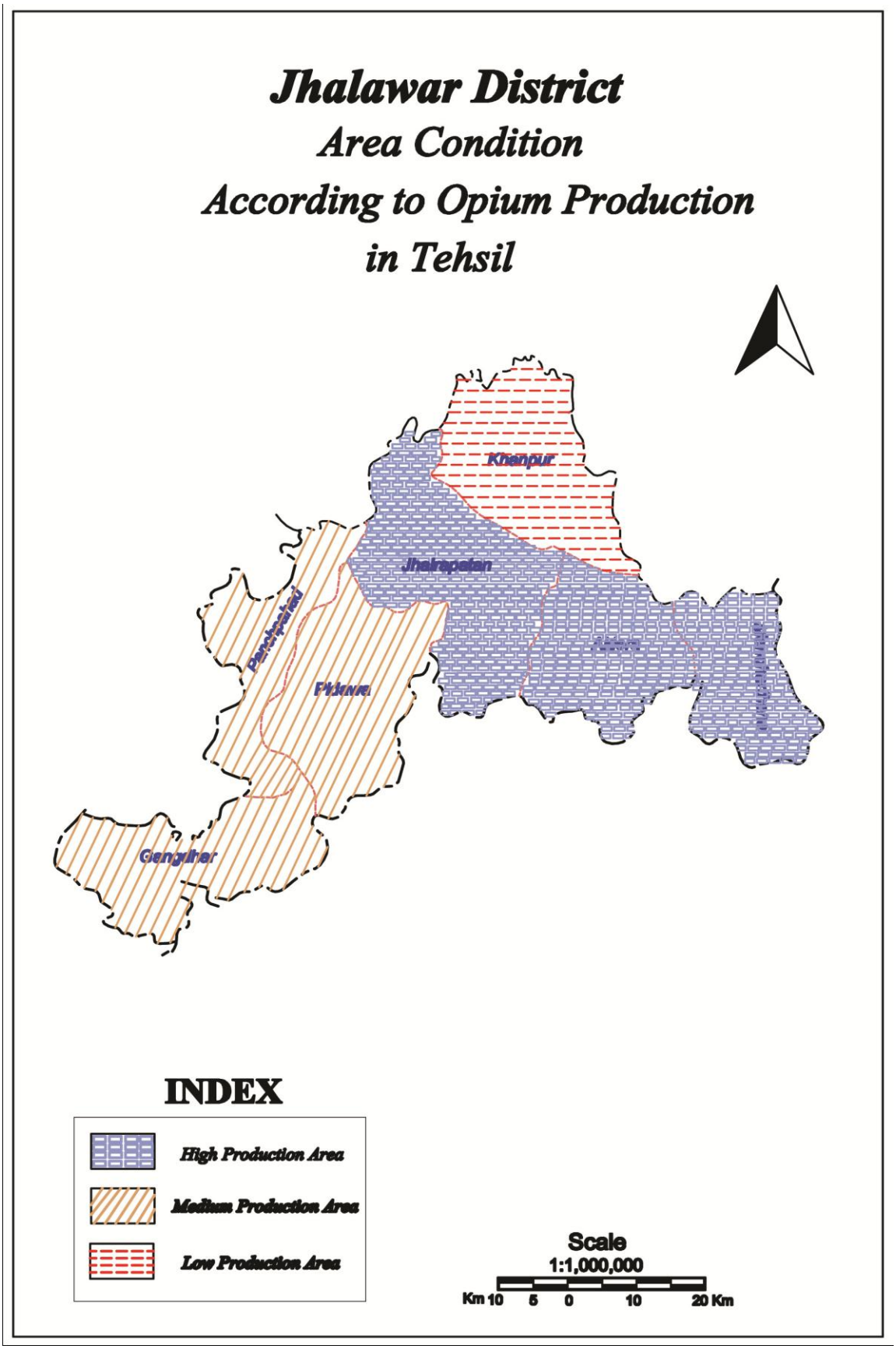
Jhalawar District
Area Condition
According to Opium Production
in Tehsil
Khanpur
Jhalrapatan
Pachpahad
Pirawa
Gangdhar
INDEX
High Production Area
Medium Production Area
Low Production Area
Scale
1:1,000,000
Km 10 5 0 10 20 Km

जिले में कृषि उत्पादन में सबसे अधिक प्रभाव रसायनिक खाद का पडा है इसके प्रयोग से कृषि फसलों के उत्पादन में निरन्तर वृद्वि हुई है इसके अलावा उन्नत किस्म के बीजों का प्रयोग, सिंचाई की सुविधा का उपलब्ध होना आदि प्रमुख कारक कृषि फसलों के क्षेत्र में वृद्वि करने में सहायक है। जिले में कृषि उपकरणों के प्रयोग मे भी कुछ मात्रा में परिवर्तन परिलक्षित होते हैं वर्तमान में ट्रेक्टर, थ्रेशर मशीन तथा सिंचाई के लिये डीजल व विद्युत पम्प आदि का प्रयोग होने लगा है जिससे जिले की व्यापारिक कृषि परिदृश्य में परिवर्तन देखने को मिलता है।

जिले में शक्ति चालित सिंचाई के साधन

तालिका संख्या 6.3

क्र.स.	वर्ष	टयूबवेल (डीजल व बिजली से चलने वाली)	पम्पिंग सेट (डीजल व बिजली से चलने वाली)
1	2005—06	3931	69178
2	2006—07	4322	71494
3	2007—08	4701	71883
4	2008—09	4851	72532
5	2009—10	4967	74672
6	2010—11	4992	76935
7	2011—12	4952	78853
8	2012—13	4906	80372
9	2013—14	5031	80856
10	2014—15	52749	224013

संक्षेप्त में यह कहा जा सकता है कि विगत कुछ वर्षो में व्यापारिक कृषि फसलों के स्वरूप में परिवर्तन की प्रवृत्ति तो स्पष्ट हो रही है किन्तु इस परिवर्तन पर भूमि के आकार, उर्वरकों का प्रयोग, सिंचाई के साधन आदि

कारकों का विशेष योगदान है। इसके अतिरिक्त जिले की व्यापारिक कृषि स्वरूप में परिवर्तन की प्रवृत्ति जिस फसल क्षेत्र पर पडी है उनमे सोयाबीन, धनियां, सरसों, संतरा, लहसुन आदि फसलों का योगदान है यह सभी व्यापारिक (नकदी) फसलें हैं जिसकी प्रवृत्ति तेजी से वृद्वि की और बढ रही है। इनकी फसल से किसानों को अन्य फसलों की तुलना में कई गुना अधिक लाभ प्राप्त होता है अतः इससे प्रभावित होकर जिले के किसान इनकी खेती कर कृषि फसलों के क्षेत्र एवं उत्पादन में वृद्वि कर रहे हैं एवं जिले के कृषि स्वरूप को व्यापारिक कृषि स्वरूप प्रदान कर रहे हैं।

सुझाव :—

प्रस्तुत शोध में व्यापक दृष्टिकोण से तर्कसंगत विचारों एवं निरीक्षण का प्रयोग करते हुये निष्कर्ष एवं सुझाव प्रस्तुत किये गये हैं क्योंकि जिस तरह परिणामों को प्राप्त करने और उनकी व्याख्या करने के लिये तर्कसंगत विचारों की आवश्यकता होती है ठीक उसी प्रकार सामान्यीकरण के लिए भी इन्ही गुणों की आवश्यकता होती है।

निष्कर्ष एवं सुझाव के अभाव में शोध कार्य अपूर्ण समझा जाता है। अतः प्रत्येक शोध कार्यो में निष्कर्ष एवं सुझावों का भाव निहित है क्योंकि निष्कर्षो के आधार पर महत्वपूर्ण परिवर्तन सम्भव होते हैं। प्रस्तुत शोध कार्य में भी गत अध्यायों में वर्णित तथ्यों के विश्लेषण के आधार पर कुछ निष्कर्षो को निकालने की चेष्टा की है।

किसान अपनी फसलों का अधिक उत्पादन करने के लिये सिंचित एवं असिंचित क्षेत्रो में खेती की तैयारी, बुवाई का समय व विधि बीजोपचार, संतुलित खाद व उर्वरक, बुवाई व रोपाई विधि, निराई—गुडाई, सिंचाई, खरपतवारों का नियंत्रण, कंटाई व बीज सरंक्षण की उचित जानकारी रखना जिले के किसानों के लिये अति महत्वपूर्ण है। इनकी जानकारी के अभाव में किसान अपनी फसल का उचित उत्पादन नही कर पाता है वे कृषि कार्य में पूंजी तो बराबर लगाते हैं लेकिन उचित जानकारी के अभाव में अच्छा उत्पादन नही ले पाते हैं।

- किसानों को अधिक उत्पादन की उन्नत फसल प्रणालियों के बारे मे जानकारी उपलब्ध कराना।

- विभिन्न फसलों के कीट रोग व बीमारियों के लक्षण तथा उपचार पद्वति की जानकारी प्रदान करना।
- मिट्टी के नमूने एवं परीक्षण, मृदा के कटाव को रोकना आदि की जानकारी प्रदान करना।
- कृषकों के लिये महत्वपूर्ण व्यावहारिक सूचनाऐं जैसे – कृषक प्रशिक्षण कार्यक्रम प्रदर्शन, कृषक भागीदारी, किसान मेला, कृषि साहित्य व कृषि में सूचना प्रोद्योगिकी का उपयोग।
- कृषि कार्यो को सफल बनाने के लिये विकसित यंत्रो के बारे में जानकारी प्रदान करना।
- किसानों को उचित कृषि सम्बन्धित विषयों पर जानकारी प्रदान करना जैसे – उत्तम फसल प्रजाति, फसल चक्र, फसल सुरक्षा एवं प्रबन्धन, फसल उत्पादन तकनीक, जल सरंक्षण आदि।

आधुनिक कृषि नवाचार प्रणाली किसानों के लिये वरदान साबित हो सकती है। जिले में अब बडी संख्या में किसानों ने आधुनिक कृषि नवाचार प्रणाली को अपनाया है। मौसम के बदलते मिजाज को देखते हुये किसानो के लिये यह आवश्यक हो गया है कि वे नवीन वैज्ञानिक कृषि नवाचार को अपनाकर ही कम समय में बेहतर पैदावार कर सकते है।

जिले में कृषि स्वरूप में परिवर्तन के सुझाव :–

कृषि योग्य भूमि में सिंचाई की सुविधा उपलब्ध करवाना :–

जिले में हो रही व्यापारिक कृषि फसलों के क्षेत्रफल एवं उत्पादन को बढावा देने के लिये यह जरूरी है कि किसानों को पर्याप्त सिंचाई की सुविधा मिले जिसे पाकर वे कृषि फसलों का अधिक से अधिक उत्पादन प्राप्त कर सके। जिले के कई स्थानों पर सिंचाई की कम सुविधा प्राप्त है जिससे किसान अपनी फसलों का उचित उत्पादन प्राप्त नही कर पाते है तथा अधिकांश कृषकों को अपना कृषि कार्य के लिये मानसून के उपर निर्भर रहना पड़ता है। अच्छा मानसून होने पर अच्छा उत्पादन होता है और खराब रहने पर कृषि उत्पादन पर विपरित प्रभाव पडता है। अतः जिले के किसानों को सरकार द्वारा उचित सिंचाई की योजनाओं का क्रियान्वयन करना चाहिये एवं नहरी विकास को सुदृढ बनाना चाहिये जिससे किसान अपनी फसलों का अधिक से अधिक उत्पादन प्राप्त कर सके।

- **भूमि सुधार/उपचार :–**

किसान अपनी फसल का अधिक उत्पादन करने के लिये सबसे पहले उनको चाहिये कि वह अपनी कृषि भूमि का उचित प्रकार से उपचार करें कृषि भूमि में भूमिगत कीड़ो एवं दीमक की रोकथाम करने के लिये फसल की बुवाई से पूर्व भूमि उपचार करना आवश्यक है। कृषि भूमि को रोग रहित करने के लिये किसान नजदीकी कृषि विज्ञान केन्द्र मे जाकर अपने खेत की मिटटी का परीक्षण करवा सकते हैं एवं कृषि वैज्ञानिकों के निर्देशानुसार वो अपने खेत में बताये गये उपायो को अपनाकर अपनी भूमि को स्वस्थ कर सकते हैं। इससे किसानो को अपनी फसलों के उत्पादन में भी वृद्वि होगी एवं फसल रोग मुक्त रहेगी।

- **उन्नत बीज, कीटनाशकों एवं उर्वरकों का प्रयोग :–**

किसानो को अपनी फसलों के उत्पादन को बढाने में उन्नत बीज, उर्वरक एवं कीटनाशकों के प्रयोग का अत्याधिक प्रभाव पडता है। किसान भाईयों को ऐसे उन्नत बीजों का चयन करना चाहिये जिससे अधिक मात्रा में उत्पादन हो सके। ऐसे बीजो का चयन करना चाहिये जो कम समय में पक कर अच्छा उत्पादन दे सके साथ ही किसान सिंचाई की सुविधाओं के अनुसार बीजो का चयन करें जहां पर कम सिंचाई की सुविधा है वहां पर उसी प्रकार के बीजों का चयन किसानों को करना चाहियें। किसानों को उन्नत बीजों की जानकारी के लिये अपने नजदीकी कृषि विज्ञान केन्द्र में सम्पर्क करना चाहिये तथा उनके निर्देशानुसार ही अपनी भूमि मे बीजो का चयन करना चाहिये।

उन्नत बीजों के साथ–साथ किसान अपनी फसल में लगने वाले खरपतवार एवं प्रमुख रोगो का उपचार करने के लिये उचित कीटनाशक उर्वरकों का उपयोग करना चाहिये किसान भाईयों को कीटनाशकों या उर्वरकों के प्रयोग में उसकी मात्रा एवं फसल की आवश्यकता का भी ध्यान रखना आवश्यक है। आवश्यकता से अधिक एवं कम मात्रा में प्रयोग किये जाने पर फसलों की उत्पादकता पर विपरित प्रभाव पडता है इसलिये किसानों को उचित निर्देशन के अभाव में कीटनाशक उर्वरकों का प्रयोग नही करना चाहिये। उचित मात्रा एवं आवश्यकता के अनुसार कीटनाशकों का प्रयोग कृषि वैज्ञानिकों से परामर्श प्राप्त कर ही करना चाहिये। इस प्रकार कहा जा सकता है कि जिले के किसानों को अपनी कृषि फसलों का अधिक उत्पादन करने के लिये उन्नत बीज, कीटनाशक उर्वरकों का प्रयोग करना चाहिये जिससे वे अपनी फसलों की सुरक्षा कर सके तथा फसल उत्पादन की मात्रा को बढा सके।

- **किसान प्रशिक्षण कार्यक्रम एवं नवीन पद्वतियो का प्रयोग :–**

जिले में व्यापारिक कृषि फसलों के उत्पादन को और अधिक उत्पादन बढाने के लिये आवश्यक है कि कृषि विभाग द्वारा समय–समय पर कृषि सम्बन्धी नवीन जानकारी किसानो को दी जानी चाहिये जिसको अपनाकर किसान अपनी फसल उत्पादन को बढा सके तथा समय के अनुसार किसानों को खेती करने की नवीन जानकारी भी दी जानी चाहिये। किसानों को कृषि करने की नवीन तकनीकों यथा – उन्नत बीज, उर्वरकों का प्रयोग, फसल चक्र, सिंचाई प्रबन्धन आदि फसल उत्पादन को बढाने वाले कारको की जानकारी दी जानी चाहिये जिसको अपनाकर जिले के किसान अपनी व्यापारिक कृषि फसलों का और अधिक उत्पादन बढा सके।

- **जैविक कृषि :–**

जैविक खेती देशी खेती करने का उन्नत तकनीकी से फसल उत्पादन लेने का तरीका है। इस प्रकार की खेती में रासायनिक खाद, कीटनाशकों का प्रयोग फसलों पर नहीं करके गोबर की खाद, कम्पोस्ट, वर्मीकम्पोस्ट का प्रयोग कर किसान अपनी फसलों को पोषक तत्व प्रदान कर सकते हैं। जिले में कृषि उत्पादन को बढाने के लिये किसानों के द्वारा जैविक खाद का प्रयोग करना चाहिये यह कृषि उत्पादन में टिकाउपन के लिये, मृदा की जैविक गुणवत्ता बनाये रखने के लिये तथा उत्पादन लागत को कम करने आदि के लिये उपयुक्त है। इस प्रकार की कृषि प्रक्रिया को अपना कर जिले के किसान व्यापारिक कृषि फसलों में आशानुरूप वृद्वि एवं उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं।

झालावाड जिले में व्यापारिक कृषि के स्वरूप में परिवर्तन के लिये किसान तथा सरकार द्वारा उपयुक्त उपाय अपनाये जाये तो जिले की व्यापारिक कृषि स्वरूप में नवीन परिवर्तन देखने को मिलेंगे तथा फसल उत्पादन में भी वृद्वि देखने को मिलेगी। पूर्व विवरणों से ज्ञात होता है कि जिले में व्यापारिक कृषि विकास की विपुल सम्भावनायें विद्यमान है जिसका उपयोग किया जाना बहुत आवश्यक है। जिले के किसानों के लिये यहां की सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थाये विभिन्न प्रकार से किसानों की सहायता कर रही है एवं जिले की व्यापारिक कृषि को विकास की ओर ले जा रही है दिनों–दिन किसान इन योजनाओं का लाभ उठाकर व्यापारिक कृषि फसलों के उत्पादन में वृद्वि के साथ–साथ किसान अपना आर्थिक विकास भी कर सकेगा।

BIBLIOGRAPHY

1. Dube, R.S., Agriculture Geography Issues and Applications, Glan Public House, Delhi, 1987

2. Fageria, M.S., Vegetable crops Breeding and Seed Production, Kalyani Publishers, Ludhiana, 2001

3. Garnier, B.J., Methods and Perspectives in Geograph, Longman, London, (1976)

4. Gosal, G.S. & B.S. Ojha, Agriculture Land use in Punjab, The Indian institute of Public. Adm. New Delhi, 1967

5. Gupta, A.K. & Varshnay, ML, Practical Manual For Agriculture Chemistry Kalyani Publishers, Jaipur, 1994

6. Gupta, G.P.,Agricultural & Econimics Aspect of Tribal Landscapes, Arihant Publishing house Jaipur, 2003

7 Hari Har Ram, Crop Breeding and Genetics, Kalyani Publishers Ludhiana, 2001

8 Heady, Earl & Dillion, J.L., Agricultural Production Functions, Kalyani Publishers Ludhiana, 1998

9 Hussain, M., Agricultural Geography, Inter-india Publications, Delhi, 1979

10 Hussain, M., Crop Combination in India, Concept, New Delhi, 1982

11 Jha, B.N., Problem of Land Utilization, A case study of Kosi Region, Classical, New Delhi, 1980

12 Kalwar S.C. and Yadav, Resources & Development'' College Book Depot, 83 Tripolia Bajar Jaipur

13 Lenka, D., Climate, weather and crops in India, Kalyani Publishers Ludhiana, 2001

14 Lenka, D, Agriculture in Orrisa, Kalyan Publisher, Ludhiana, 1998

15 Katiyar, V.S, ‘’Environmental Concerns, Depleting, Resources and Sustainable Development,’’ 1997

16 Bhatla S.S, ‘A New Measure of Crop efficiency in uttar Pradesh economic journal volume 43 No. 3, 1967

17 Thomas, T.S., Regional Pattern of Technological changes, In American Agriculture, journal of Economist No.2 Vol 4, 1958

18 Shafi M, Land Utilization in eastern Uttar Pradesh, Aligarh, 1960

19 Singh J and Dillion S.S, ‘’Agriculture Geography’’ Tata Me Graw hill publishing Company Ltd. New Delhi, 1984

20 Sharma, B.L, Agriculture Typology of Rajasthan, Pankaj Prakashan, Udaipur 1983

21 Hussain Majid , Agriculture Geography Rawat Publication Jaipur, 2004

22 Mohammad A, Dynamics of Agriculture Development in India, Concept, New Delhi, 1978

23 Mohammad N, Perspectives in Agricultural Geography, Vol 1 to 5, Concept New Delhi, 1968

24 Mohammad N, Agricultural Land Use in India, A case Study India, Publisher, New Delhi, 1978

25 Mukherji N, Agriculture Microbiology, Kalyani Publishers Ludhiana, 1998

26 Morgan, W.B., Agricultural Geography, Methuen, London, 1971

27 Shrivastava, O.S., National & Inter-state Development of Agriculture in India. Pointer Publish. Jaipur, 1995

28 Shukla, Laxmi , ''Reading in Agricultural Geography'' Scientific publishers Jodhpur, 1991

29 Singh, J, An Agriculture Atlas of India A Geographical Analysis, Vishal Pub. New Delhi, 1976

30 Singh, J, An Agricultural Geography of Hariyana, Vishal Publish, New Delhi, 1976

31 Yadav, S.S., Agricultural Ecology, Pointer Publish. Jaipur, 1993

32 Mohd. S., ''Situation of Agriculture food and nutrition in rural india'' concept publish. Comp. Delhi, 1979

33 Bal, J.S., Fruit Growing

34 Singh, A., Fruit Physiology and production.

35 Bhalla, L.R., ''Geography of Rajasthan.'' Kuldeep Publication Ajmer, 1985

36 Chouhan, T.S., Agricultural Geography (A study of Raj. State) Academic Publish. Jaipur, 1987

37 Mishra V.C., ''Geography of Rajasthan.'' National Book Trust, New Delhi.

38 Mankand N.K., Citrus Fruit of India, Publications and Information, Krishnan Marg, Delhi.

39 Saxena H.M., ''Geography of Rajasthan.''

40 Bhalla L.R., ''Geography of Rajasthan.'' Kuldeep Publication Ajmer, 1985

41 Gurjar Ramkumar & Dr. Jaat B.C., Resources and Environment Panchshil Prakashan, Jaipur.

42 Dr.Verma Arjun Kumar, New Techniques of Agriculture ATMA Jhalawar

43 Kumar Pramila, Agriculture Geography Hindi Granth Academy M.P.

44 Shah S.N., Rural Development Scheme Abhinav prakashan New Delhi.

45 Mamoriya C.B., Indian Geography Sahitya Bhawan, Agra

46 Moghe Basant, Agriculture Production in Rajasthan.Hindi Granth Academy Jaipur, 1985

47 Gupta. N.L., Agriculture Development In Rajasthan Hindi Granth Academy Jaipur, 1979

48 Jain Purshotam, Economics Geography Elements Vasundhra Prakashan U.P.

49 Fruit Agriculture, Department of Horticulture, Pant Krishi Bhawan, Jaipur

50 Agriculture Development sceme, Rajasthan krishi nedashalya jaipur Raj.

52 fruit and vegetable agriculture,Department of horticulture jhalawar

RESEARCH ARTICLE

1 Hussian M, Patterns Of Crop Concentration in U.P.,G.R.IXXXII Sept.calcutta,pp 170-185, 1970

2 Ganguli,B.N, ‘’Land Use and Agriculture Planning, Geog. Rev. of India 26 (2), 1964

3 Gerassimor, I.P., Geographical Study of Agricultural Land Use Geog, Jour. Vol. 124, pp 452-63, 1958

4 Hussian M, Agricultural Ages of the Upper Ganga-Yamuna Doab" XVI, pp 20-26, 1969

5 Nitya Nand, Crop Combination in Rajasthan, Geog. Rev.Of India, Vol 34 (1), Calcutta, pp 44-60, 1972

6 Singh, B.B., ''Land Use, Cropping Pattern and their Ranking, N.G.J.I.13(1),5, 1967

7 Shafi, M, ''Measurement of Agriculture Efficiency in U.P.'' Economic Geography, 36, pp 296, 1960

RESEARCH WORKS

I. Ph.D Thesis

1 Gupta, N.L., ''Land Utilization in Udaipur plateau, Udaipur University, Udaipur, 1966

2 Lodha, K, ''Changing pattern of agricultural land Utilization in Udaipur basin'' Sukhadia University Udaipur, 1986

3 Jain, A, Wasteland Utilization in Udaipur district, Problems and prospects Udaipur University, 1983

II M.Phil Dissertations

1 Khan, M.Z.A., ''Wasteland in Chhabra Tehsil, Kota District Raj. Sukhadia University Udaipur, 1986

2 Sati, D.N, ''Changing crop pattern in Udaipur basin'' Sukhadia University Udaipur, 1984

III Miscellaneous Literature

1 Director of Census Operations, District Census hand books- Jhalawar Raj. Jaipur 2001,2011

2 Directorate of Economics and Statistical Abstract of Rajasthan. Statistics Rajasthan Jaipur

3 Jhalawar District , Rajasthan District Gazetteers

IV Websites

1 www.nic.com

2 www.cgwb.gov.in

3 www.rajagri.com

4 www.sustainot.org

5 www.cbn.nic.in

सारांश

आदिकाल से ही मानव जीवन में कृषि का महत्व समझा जाता रहा है। प्रारम्भिक काल से ही मानव ने अपने पेट की भूख शांत करने के लिए कृषि कार्य को अपनाया है एवं खाद्यान्नों की आवश्यकता की पूर्ती की है। कृषि का अर्थ व्यापक है, इसके अन्तर्गत मानव की उन समस्त क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है जिनकी सहायता से खाद्यान्न प्राप्ति के लिए मिट्टी का उपयोग होता है। इसके अन्तर्गत भूमि की जुताई से लेकर कृत्रिम साधनों से सिंचाई, उर्वरकों की आपूर्ती मिट्टी संरक्षण हानिकारक तत्वों से पौंधों की रक्षा आदि अनेक विस्तृत कार्यक्रमों को अपनाया जाता है। जिनका उद्देश्य मिट्टी की उत्पादकता में वृद्धि करना है।

भारत की अर्थव्यवस्था में कृषि का स्थान अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है। देश के कुल निर्यात व्यापार में कृषि उत्पादित वस्तुओं का प्रतिशत काफी अधिक रहता है। भारत में आवश्यक खाद्यान्न की लगभग सभी पूर्ती कृषि के माध्यम से ही की जाती है। वर्तमान समय में एक बहुत बड़ी आबादी को कृषि के माध्यम से रोजगार प्राप्त हैं। भारतीय कृषि को 'देश की रीढ़' माना गया है। क्योंकि यही वह उपाय है जो देश की खुशहाली के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

मानव विकास की प्राथमिक अवस्था में कृषि जीवनयापन का माध्यम थी लेकिन आज कृषि केवल खाद्यान्न का ही उत्पादन नहीं करती बल्कि मानव द्वारा अपने जीवन स्तर को उच्च स्तर का बनाने के लिए भी कृषि कार्य किया जा रहा है। मानव द्वारा की जाने वाली कृषि क्रिया उसके जीवन निर्वाहन स्तर से लेकर व्यापारिक अवस्था तक कई सीढ़ीयाँ पार कर चुकी है। कृषि एक अत्यन्त व्यापक आर्थिक कार्य है तथा इसके विविध रूप है। विस्तृत अर्थों में इसके अन्तर्गत कुदाल पर आधारित जीवन निर्वाहन खेती से लेकर मशीनों द्वारा वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग करके व्यापारिक उद्देश्य से की जाने वाली कृषि आती है। व्यापारिक कृषि व्यवस्था में कृषक का मूल उद्देश्य लाभ कमाना होता है।

व्यापारिक कृषि क्षेत्र को अधिक लाभप्रद बनाने के लिए शोधकर्ता के दृष्टिकोण से निम्नलिखित कार्यक्रमों को प्रोत्साहित ही नहीं करना अपितु वास्तविकता का भी जामा पहनाना होगा।

1. मृदा सर्वेक्षण तथा मृदा संरक्षण

2. अधिकतम कृषकों को कृषि की नवीनतम तकनीक का ज्ञान कराना।

3. जल संसाधन के दुरूपयोग को रोकना।

4. कृषकों को समुचित प्रशिक्षण प्रदान करना।

5. व्यापारिक कृषि के क्षेत्र में विस्तार करना।

6. व्यापारिक कृषि का परम्परागत फसलों के साथ समायोजन।

7. जैविक उर्वरकों के प्रयोग को प्रोत्साहन।

कृषि की दृष्टि से झालावाड़ जिले का राज्य में प्रमुख स्थान है। खाद्यान्न, तिलहन व संतरा उत्पादन में झालावाड़ जिला अग्रणी है। समग्र कृषि विकास के लिए उद्यानिकी कृषि विपणन व पशुपालन के क्षेत्र में सूक्ष्म स्तर पर वर्तमान स्थिति का आंकलन कर आने वाले वर्षों के लिए जिले में कई योजनाऐं बनाई जा रही है। झालावाड़ जिले में आय के प्रमुख स्त्रोतों में कृषि उत्पादन का प्रमुख स्थान है। अतः कृषि यहाँ पर महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती है।

झालावाड़ जिले में व्यापारिक कृषि का अवलोकन करें तो हम पाते हैं कि इस जिले का भी व्यापारिक कृषि विकास बहुत अधिक हुआ है। किन्तु इसका सम्पूर्ण विकास नहीं हो पाया है। झालावाड़ जिला व्यापारिक कृषि की दृष्टि से बहुत अधिक सम्पन्न जिला है। व्यापारिक कृषि के अन्तर्गत जिले में बोई जाने वाली फसलों एवं उद्यानिकी में सन्तरे की कृषि का विशेष स्थान है। राजस्थान में सर्वाधिक सन्तरों का उत्पादन इसी जिले से होता है। यहाँ पर इसके भावी उद्यानिकी विकास की अत्यधिक सम्भावनाऐं विद्यमान है। सन्तरे के साथ–साथ अन्य व्यापारिक फसलों में सोयाबीन सरसों, अफीम, धनियाँ, लहसुन आदि फसलों का भी प्रमुख स्थान हैं। यह राजस्थान का सुदुर दक्षिण में स्थित जिला है इस जिले का एवं यहाँ उत्पन्न होने वाली व्यापारिक फसलों के विकास के लिए राज्य सरकार कृत संकल्प है। इसलिए यह आवश्यक है कि यहाँ व्यापारिक कृषि से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं को लेकर गहन क्षेत्रिय अध्ययन किये जाये और उन्हीं अध्ययनों के माध्यम से भावी व्यापारिक कृषि विकास के लिए योजनाऐं तैयार

की जाये। जिससे किसान व्यापारिक फसलों की अधिक से अधिक कृषि करने के लिए प्रेरित हो सके।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के माध्यम से शोधार्थी ने यह अनुभव किया कि इस जिले के लिए भावी व्यापारिक कृषि विकास की योजना तैयार करने के लिए जिले का वर्तमान व्यापारिक कृषि स्वरूप एवं इसके भावी विकास के लिए इसकी नवीन प्रवृत्तियों का मापन कर यह ज्ञात किया है कि जिले का कौनसा भाग व्यापारिक कृषि का उत्पादन अधिक करता है तथा किस भाग में कम उत्पादन होता है। इस जिले में व्यापारिक फसलों की कृषि एवं उत्पादन के लिए उचित वैज्ञानिक कृषि विकास योजना का निर्माण करना ही प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य है। जिससे जिले में उत्पादित हो रही प्रमुख व्यापारिक फसलें प्रकाश में आ सके।

झालावाड़ जिला व्यापारिक कृषि प्रधान जिला है प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को पूर्ण करने के लिये शोध कार्य को 6 अध्यायों में बांटा गया है तथा सभी भागो का विषयवार विवरण प्रस्तुत किया है। शोध प्रबन्ध का प्रथम अध्याय विषय से सम्बन्धित सामान्य परिचय का है तथा अध्ययन विषय का क्या महत्व है एवं आगे इस शोध के क्या लाभ हो सकते हैं। किसानों के हितार्थ सभी प्रकार के तथ्यों का समावेश इस अध्याय में किया गया है।

शोध प्रबन्ध के महत्व को भी इस अध्याय में प्रस्तुत किया है, अध्ययन विषय का जिले के किसानों के लिये क्या महत्व होगा इसका वर्णन भी प्रस्तुत अध्याय में किया गया है। अध्याय में अध्ययन विषय से सम्बन्धित साहित्य पर पूर्व में किये गये कार्यो का विवरण भी दिया गया है तथा शोध प्रबन्ध को पूर्ण करने में किस प्रकार के आंकड़ो की सहायता ली गई है तथा इसका विधि तंत्र क्या है इन सब का विवरण भी शोध प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में प्रस्तुत किया गया है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के लिए प्राथमिक व द्वितीयक प्रकार के आँकड़ों की सहायता ली गई है। प्राथमिक प्रकार के आँकड़ों का संकलन सेम्पल सर्वे द्वारा प्रस्तुत अध्ययन क्षेत्र से एकत्रित किये गये हैं तथा द्वितीयक प्रकार के आँकड़ें विभिन्न प्रकार के स्त्रोतों से लिये गये हैं।अध्ययन क्षेत्र का वर्तमान स्वरूप तैयार करने के लिए राज्य एवं जिले की विभिन्न सरकारी विभागों से विभिन्न सूचनाएँ व आँकड़ें प्राप्त किये गये हैं।

शोध प्रबन्ध का द्वितीय अध्याय जिले के भौगोलिक परिदृश्य से सम्बन्धित है इसमें जिले का सामान्य परिचय प्रस्तुत किया गया है इसके अन्तर्गत जिले की स्थिति, उच्चावच, जलवायु, अपवाह तंत्र, मृदा आदि का विवरण शोध प्रबन्ध के द्वितीय अध्याय में किया गया है।

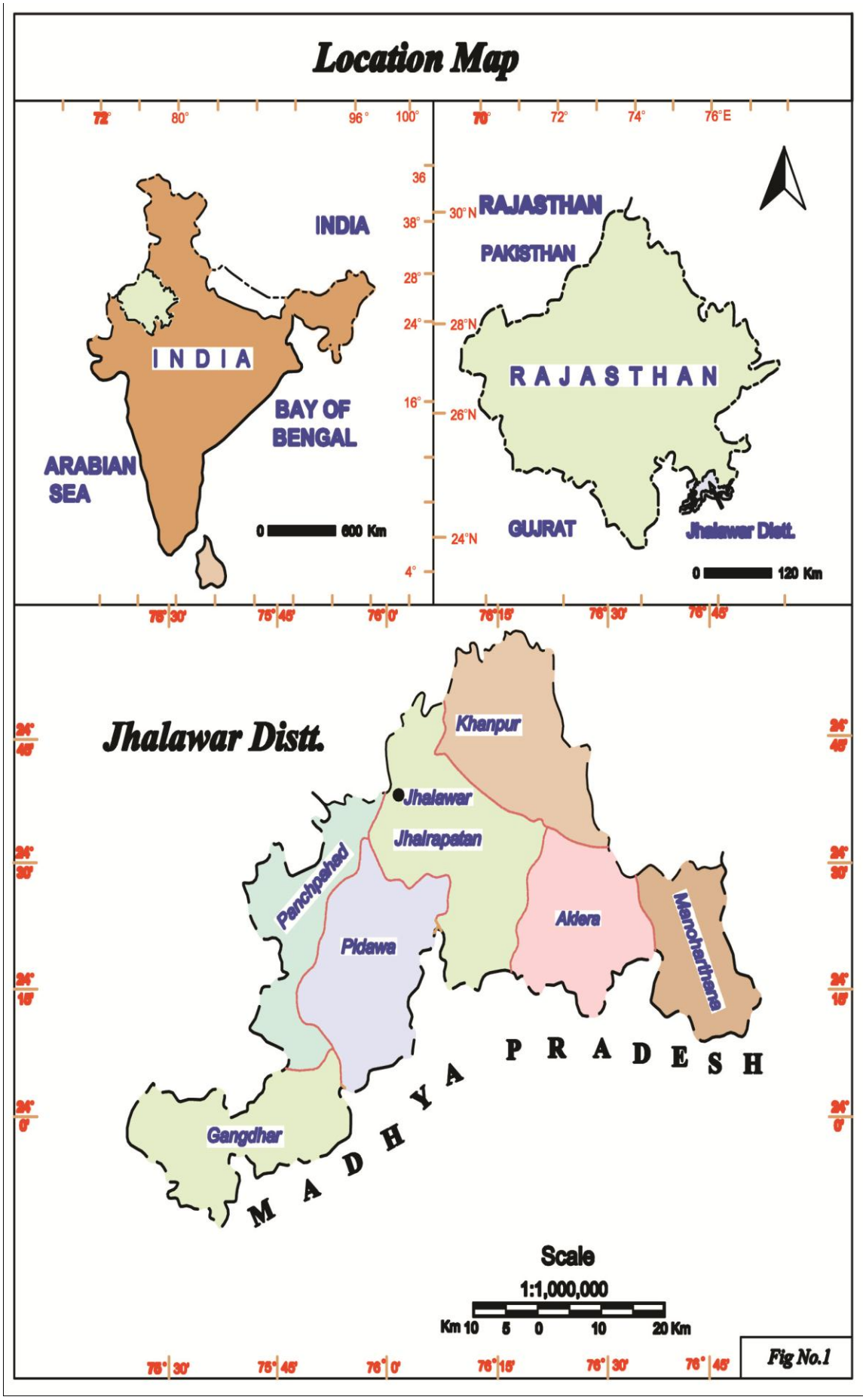
Location Map
INDIA
INDIA
BAY OF BENGAL
ARABIAN SEA
0 600 Km
RAJASTHAN
PAKISTHAN
RAJASTHAN
GUJRAT
Jhalawar Distt.
0 120 Km
Jhalawar Distt.
Khanpur
Jhalawar
Jhalrapatan
Panchpahad
Pidawa
Aldera
Manoharthana
Gangdhar
M A D H Y A P R A D E S H
Scale
1:1,000,000
Km 10 5 0 10 20 Km

Fig No.1

भौगोलिक स्थिति –

प्राकृतिक सौन्दर्य तथा खनिज सम्पदाओं से भरपूर विन्ध्यांचल पर्वत मालाओं से अवेष्ठित इस जिले का विस्तृत भू–भाग समुद्रतल से 950 फीट ऊँचाई पर स्थित है। यह जिला राजस्थान के दक्षिणी–पूर्वी छोर पर $23^0$45′20′′से $24^0$52′17′′उत्तरी अक्षांश एवं $75^0$27′35′′ से $76^0$56′48′′ पूर्वी देशान्तर तक मालवा पठार के उत्तरी भाग में स्थित है।

उपखण्ड एवं तहसीलें –

झालावाड़ जिले को 5 उपखण्डों भवानीमण्डी, अकलेरा, खानपुर, पिड़ावा एवं झालावाड़ में बांटा गया है। जिले में 7 तहसीले – खानपुर, झालरापाटन, अकलेरा, पिड़ावा, पचपहाड़, गंगधार एवं मनोहरथाना है।

धरातलीय स्वरूप–

जिले में विभिन्न प्रकार की धरातलीय संरचनाऐं पाई जाती है। झालावाड़ जिला मालवा पठार के उत्तरी छोर पर स्थित है। यहाँ छोटी–छोटी विन्ध्यन क्रम की पर्वत श्रेणियाँ एवं मैदानी क्षेत्र पाया जाता है।

जलवायु –

प्रस्तुत अध्ययन की दृष्टि से झालावाड़ को ऋतु के आधार पर तीन भागों में बांट सकते है।

शीत ऋतु – यह मौसम जिले में दिसम्बर से फरवर

ग्रीष्म ऋतु – यह मौसम मार्च से मध्य जून तक

वर्षा ऋतु – जिले में मानसून मध्य जून से प्रारम्भ

तापमान–

वार्षिक औसत तापक्रम 27^0 सेन्टीग्रेड रहता हैं। मई का महिना सबसे गर्म होता है जिसमें उच्चतम तापमान 43^0–49^0 सेन्टीग्रेड तथा न्यूनतम तापक्रम 26^0 रहता है।

इन सभी कारकों को प्रस्तुत करने के लिये विभिन्न प्रकार की सारणीयों एवं मानचित्रों की सहायता ली गई है। जिले का तहसील वार लिंगानुपात, साक्षरता एवं व्यावसायिक सरंचना का विवरण भी प्रस्तुत अध्याय में किया गया है।

प्रस्तुत शोध का तीसरा अध्याय झालावाड़ जिले में व्यापारिक कृषि फसलों के परिदृश्य से सम्बन्धित है।

संतरे की खेती :–

झालावाड जिले में संतरे की खेती व्यापक रूप से की जाती है राजस्थान के नागपुर नाम से प्रसिद्व झालावाड जिला राजस्थान का सर्वाधिक संतरे का उत्पादन करता है इसका प्रमुख कारण संतरे की कृषि के लिये जिले की अनुकूल भौगोलिक दशाओं का होना हैं।

सोयाबीन की खेती :–

झालावाड जिले की व्यापारिक कृषि फसलों में सोयाबीन फसल का महत्वपूर्ण स्थान है इस फसल की कृषि प्रायः जिले के अधिकांश किसानों के द्वारा की जाती है। सोयाबीन की कृषि जिले के किसानों द्वारा मानसून पूर्व अपने खेतो की अच्छी तरह हकाई जुताई करके की जानी चाहिये।

सरसों की खेती :–

राजस्थान के झालावाड जिले में सरसों की खेती प्रमुखता से व्यापारिक फसल के रूप में की जाती है झालावाड में कृषकों के लिये सरसों की खेती बहुत अधिक लोकप्रिय होती जा रही है जो कि इसमें कम सिंचाई व कम लागत से अन्य फसलों की तुलना में अधिक लाभ प्राप्त हो जाता है

अफीम की कृषि :–

अफीम पोस्त देने वाला एक पौधा है जो पापी कुल का है।अफीम की खेती की और लोग सबसे ज्यादा आकर्षित होते हैं अफीम की खेती एवं उत्पादन केन्द्रीय नारकोटिक्स ब्यूरो द्वारा जारी पट्टे के आधार पर की जाती है। यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण औषधीय फसल है।

लहसुन की कृषि :–

यह जिले में अन्य व्यापारिक फसलो की भांति इसकी कृषि भी किसानो के द्वारा अधिक मात्रा में की जाने लगी है। जिससे लहसुन की कृषि का व्यापारिक स्वरूप उभकर सामने आया

है। लहसुन एक औषधी युक्त नगदी फसल है जिसकी खेती झालावाड़ के सभी भागो में की जाती है

धनियें की खेती :–

झालावाड जिले में धनियें की फसल का उत्पादन विगत कुछ वर्षो में बढा है तथा इसके क्षेत्रफल में भी वृद्वि हुई है पहले जहां बहुत कम भाग पर इसकी कृषि की जाती थी आज जिले के अधिकांश क्षेत्रों पर धनियें की कृषि का कार्य व्यापक रूप से किया जाता है।

शोधार्थी द्वारा गत 10 वर्षो (2005–06 से 2014–15) के आंकड़ों की सहायता से फसल विशेष का क्षेत्रानुसार उत्पादन का विवरण प्रस्तुत किया है जिसमे पाया कि पहले और अब क्षेत्र विशेष की फसल प्रारूप में क्या परिवर्तन परिलक्षित हुए है जो व्यापारिक कृषि सरंचना को मजबूत बनाने में सहायता प्रदान करते हैं।

स्थान व काल के अनुसार परिवर्तन :–

प्रस्तुत अध्याय के अन्तर्गत व्यापारिक कृषि विकास की सम्भावनायें एवं प्रवृत्तियों का अध्ययन जिले के विभिन्न क्षेत्रों के अन्तर्गत किया गया है।जिले में व्यापारिक कृषि के विकास में स्थान व काल के अनुसार क्या परिवर्तन हुए हैं इसका समुचित अध्ययन करने के लिए जिले मे फसल प्रारूप एवं उसकी प्रवृत्तियों का अध्ययन एक दशक के अन्तर्गत बोई जाने वाली प्रमुख व्यापारिक फसलों व उनके फसल क्षेत्र एवं उसके समय के अनुसार परिवर्तन की प्रवृत्तियों को स्पष्ट करने के लिये दिया गया है।

अतः इन स्थितियों में जिले में व्यापारिक कृषि परिदृश्य में समय व स्थान के अनुसार क्या परिवर्तन हुए हैं तथा क्षेत्र विशेष परम्परागत अवस्था से किस प्रकार भिन्न है इन सभी तथ्यों को स्पष्ट करने के लिये पिछले एक दशकीय (2005–06 से 2014–15) में फसल प्रारूप का अध्ययन 10 वर्षीय भागो में बांटकर किया गया है।

जिले में की जा रही व्यापारिक कृषि के विकास में कई संस्थाए अपना योगदान दे रही है।जिले के किसानों के लिए राज्य सरकार एवं सहकारी विभाग फसलों के उत्पादन बढ़ाने में प्रयत्नशील है। कई प्रकार के अभियानों के दौरान सहकारिता विभाग भी किसानों के कल्याण के लिए समर्पण की भावना से कार्य करने में सक्रिय भूमिका निभा रहा है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का पंचम अध्याय कृषि विकास से जुड़ी विभिन्न प्रकार की समस्याओं एवं उनके समाधान के उपायो का वर्णन इस अध्याय में किया ग या है। किसानों को अपनी

कृषि क्रिया में कई प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है तथा उनसे प्रभावित होकर वो उत्पादन इतना अधिक नही कर पाता जितना वो उसकी आशा करता है।

समस्याओं के समाधान के साथ–साथ कृषि उत्पादन बढाने वाले कारकों का वर्णन भी प्रस्तुत अध्याय में किया गया है। किसानों की प्रमुख समस्याओं में बीज, उर्वरक, सिंचाई की सुविधायें, कृषक प्रशिक्षण का अभाव, अशिक्षा, साख सुविधा तथा फसलों में लगने वाले रोग आदि का विवरण प्रस्तुत अध्याय में किया गया है तथा किसानों को कृषि उत्पादन बढाने के लिये इनमे सुधारों पर भी विचार प्रस्तुत किये गये हैं।

व्यापारिक कृषि के विकास से जुड़ी समस्याऐं व समाधान

भण्डारण व्यवस्था

मण्डियो में माल बेचने हेतु लम्बी कतारो का होना –

परिवहन की उचित व्यवस्था का न होना :–

कृषि मूल्य की जानकारी का अभाव :–

खाद / उर्वरक

सिंचाई–

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का अन्तिम अध्याय सारांश, समीक्षा एवं सुझाव का है प्रस्तुत शोध प्रबन्ध पूर्ण करने में किन–किन तथ्यों का समावेश हुआ है इन सबका अध्याय वार विवरण प्रस्तुत किया है। अध्याय के अन्तर्गत व्यापारिक कृषि फसलों के विकास के लिये सुझाव प्रस्तुत किये गये हैं जो जिले की कृषि विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सके।

अतः इस प्रकार कहा जा सकता है कि झालावाड जिला कृषि विकास की दृष्टि से अत्यंत सम्पन्न जिला है तथा कृषि विकास की दृष्टि से अन्य जिलो की अपेक्षा अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यहां पर खाद्यान्न फसलों की तुलना में व्यापारिक कृषि फसलों का विकास अधिक देखने को मिलता है समय के साथ–साथ जिले में कृषि करने की प्रक्रियां में नवीन प्रवृत्तियां उभरकर सामने आई है जो कि जिले में इसके विकास से सीधी जुड़ी हुई है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के माध्यम से जिले की व्यापारिक कृषि के स्वरूप एवं नवीन प्रवृत्तियों के अध्ययन पर विस्तृत वर्णन किया गया है जिसमें जिले में व्यापारिक कृषि विकास से जुड़े विभिन्न प्रकार के तथ्यों का अध्ययन किया गया है जिसके द्वारा जिले में व्यापारिक कृषि विकास का स्तर व

स्वरूप का प्रकटीकरण हुआ है। जहां तक झालावाड जिले की व्यापारिक कृषि परिदृश्य का प्रश्न है यहां पिछले कुछ दशकों में कृषि क्षेत्र के परिदृश्य में परिवर्तन देखने को मिलता है। जहां पहले जिले के कई भागो में खाद्यान्न फसलों की कृषि की जाती थी आज वहां के कृषि परिदृश्य में परिवर्तन स्वरूप व्यापारिक फसलों की कृषि की जा रही है। 2000 के दशक के पश्चात सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थाओं एवं कृषि से सम्बन्धित विभिन्न विभागो ने जिले की व्यापारिक कृषि परिदृश्य को समझकर इसके और अधिक विकास के लिये अग्रसर है। वर्तमान समय में कृषि मे नवीन तकनीकों के प्रयोग व उसमे आवश्यक परिवर्तन करने का निर्णय स्थानीय कृषि विभाग ले रहा हैं एवं कृषि विभाग से सम्बन्धित संस्थायें जिले मे हो रही व्यापारिक कृषि विकास को और आगे बढाने का प्रयास कर रही है।

सरकार की इन नितियों एवं संस्थाओं का कृषि विकास में योगदान का क्या प्रभाव पडा तथा स्थानीय व्यापारिक कृषि में किस प्रकार के परिवर्तन की परिस्थितियां विद्यमान है जिले की व्यापारिक कृषि परिदृश्य में क्या प्रवृत्तियां उभरकर सामने आई है इन समस्त बिन्दुओं का अध्ययन करने के लिये मेरे द्वारा "झालावाड जिले में व्यापारिक कृषि का स्वरूप एवं नवीन प्रवृत्तियों" का अध्ययन किया गया है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के माध्यम से जिले में व्यापारिक कृषि विकास से जुड़ी विभिन्न प्रकार की समस्याओं के समाधान के उपाय भी प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में विवरण किया गया है जिनका प्रयोग कर जिले के किसान कृषि विकास योजना बनाने में लाभदायक कृषि उत्पादन कर सके। जिले के कृषि का सुनियोजित विकास के लिये आगे भी शोध प्रबन्ध अपनी भूमिका का निर्वहन करेगा।

P: ISSN NO.: 2321-290X
E: ISSN NO.: 2349-980X
RNI : UPBIL/2013/55327
VOL-5* ISSUE-12* August- 2018
Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika

झालावाड़ जिले में व्यापारिक कृषि का स्वरूप एवं नवीन प्रवृतियां– एक भौगोलिक अध्ययन

दीप चन्द बैरवा
शोधार्थी–भूगोल विभाग,
कोटा विश्वविद्यालय.,कोटा

हमीद अहमद
विभागाध्यक्ष–भूगोल,
राजकीय महाविद्यालय,
झालावाड़ (राज.)

रवीन्द्र मोदी
शोधार्थी–भूगोल विभाग,
कोटा विश्वविद्यालय.,कोटा

सारांश

झालावाड जिला कृषि विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यहां पर खाद्यान्न फसलों के साथ–साथ व्यापारिक कृषि का भी विकास देखने को मिलता है तथा समय के साथ इस कृषि में कई नवीन प्रवृतियां उभरकर सामने आयी है जो कि जिले में इसके विकास से सीधी जुडी हुई है।

अतः झालावाड में इस व्यापारिक कृषि के परिदृश्य पर शोध पत्र द्वारा इसके स्वरूप, अवस्था व स्तर का विस्तृत विवेचन तथा इससे जुडी समस्याओं का अध्ययन करके इस दिशा में और अधिक प्रयास किये जा सकते है। इन तथ्यों को दृष्टिगत रखते हुए शोध पत्र का सृजन किया गया है।

मुख्य शब्द : कृषि, व्यापारिक, उत्पादन, सिंचाई, मिटटी, स्वरूप स्तर, विकास आदि।

प्रस्तावना

आदिकाल से ही मानव जीवन में कृषि का महत्व समझा जाता रहा है प्रारम्भिक काल से ही मानव ने अपने पेट की भूख शान्त करने के लिए कृषि कार्य को अपनाया है एवं अपने खाद्यान्नों की आवश्यकता की पूर्ति की है। कृषि का अर्थ व्यापक है, इसके अन्तर्गत मानव की उन समस्त क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है जिनकी सहायता से खाद्यान्न की प्राप्ति के लिए मिट्टी का उपयोग होता है। इसके अन्तर्गत भूमि की जुताई से लेकर कृत्रिम साधनों से सिंचाई, उर्वरकों की आपूर्ति, मिटटी सरंक्षण, हानिकारक तत्वों पौधों की रक्षा आदि अनेक विस्तृत कार्यक्रमों को अपनाया गया है। जिनका उद्देश्य मिट्टी की उत्पादकता में वृद्धि करना है। मानव विकास की प्राथमिक अवस्था में कृषि जीवन व्यापन का माध्यम थी लेकिन आज कृषि केवल खाद्यान्न का ही उत्पादन नही करती बल्कि मानव द्वारा अपने जीवन स्तर को उच्च स्तर का बनाने के लिये कई प्रकार की व्यापारिक फसलों का उत्पादन भी किया जा रहा है। मानव कृषि के द्वारा अपनी जीविका निर्वाह करने के साथ–साथ जब आय प्रदान करने वाली फसलों का भी उत्पादन करने लगता है तो कृषि का स्वरूप परिर्वतन होने लगता है और वह व्यापारिक कृषि के नाम से जानी जाती है।

साहित्यावलोकन

प्रस्तुत अध्ययन क्षेत्र व्यापारिक फसलों की कृषि की दृष्टि से जिले का प्रमुख स्थान है, प्रस्तुत शोध पत्र को निम्न साहित्यों का अध्ययन किया गया है। कृषि भूगोल माजिद हुसैन (2004) के अन्तर्गत कृषि स्वरूप एवं समय के अनुसार अपनाई गई नवीन तकनीकों का अध्ययन किया गया है। इसके अलावा जिला सांख्यिकी रूपरेखा (2009) तथा (2016) का भी शोध पत्र को पूर्ण करने में अध्ययन किया गया है। कृषि एवं फसल प्रतिरूप (2015) कृषि निदेशालय जयपुर द्वारा प्रकाशित पुस्तक का भी अध्ययन किया गया है। कृषि विकास योजना (2016) कृषि विभाग जयपुर (राज.) का भी अध्ययन शामिल है प्रस्तुत शोध पत्र में यथा सम्भव सम्बन्धित साहित्य का गुणवत्ता से अध्ययन किया गया है तथा 2017 के बाद उपरोक्त विषय पर कोई शोध कार्य नही हुआ है।

शोध विधि

प्रस्तुत शोध पत्र में झालावाड जिले में व्यापारिक कृषि एवं नवीन प्रवृत्तियों को प्रकट किया गया है। शोध पत्र को प्राथमिक एवं द्वितीयक आंकड़ो की सहायता से अन्वेषित किया गया है। इसमें प्राथमिक आंकडे यथायोग्य विधियां साक्षात्कार, प्रश्नावली, अनुसूची आदि के द्वारा एकत्रित किये गये हैं तथा द्वितीयक आंकडे अपेक्षित विभागो मे जाकर एकत्रित किये हैं प्राप्त आंकड़ों को उपयुक्त सांख्यिकी विधियों के द्वारा विश्लेषित एवं संश्लेषित किया गया है। इसके अलावा मानचित्र निर्माण उचित मापनी पर किया गया है साथ ही मुल्यांकन को अधिक स्पष्ट बनाने के लिए आरेख व तालिकाओं की सहायता से शोध पत्र को प्रमाणिकता प्रदान की गई है।

P: ISSN NO.: 2321-290X
E: ISSN NO.: 2349-980X
RNI : UPBIL/2013/55327
VOL-5* ISSUE-12* August- 2018
Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika

अध्ययन क्षेत्र

प्राकृतिक सोन्दर्य तथा खनिज सम्पदाओं से भरपूर विन्ध्याचल पर्वतमालाओं से अयेष्टित इस जिले का विस्तृत भू–भाग समुद्रतल से 950 फीट उंचाई पर स्थित है। यह जिला राजस्थान के दक्षिणी–पूर्वी छोर पर 23° 45'20" से 24°52'17" उत्तरी अक्षांश एवं 75°27'35" से 76°56'48" पूर्वी देशान्तर तक मालवा पठार के उत्तरी भाग में स्थित है। जिले का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 6219 वर्ग कि.मी. है। सन् 2011 की जनगणना प्रतिवेदन के आधार पर जिले की कुल जनसंख्या 14,11,129 है।

शोध उद्देश्य

कृषि की दृष्टि से झालावाड़ जिले का प्रमुख स्थान है जिले में कृषि विकास हेतु सरकारी गैर सरकारी प्रयासों द्वारा कृषकों की आय में वृद्धि एवं कृषि से सम्बन्धित मिट्टी व पानी की समस्याओं से सम्बन्धित समुचित प्रबन्धन के प्रयास किये जा रहे हैं। अतः इन तथ्यों को दृष्टिगत रखते हुये प्रस्तुत शोध पत्र का सृजन किया गया है। इसकी पूर्ति के निमित निम्नलिखित उद्देश्यों को आधार बनाया गया है :–

1. झालावाड़ जिले की कृषि एवं उत्पादन का वर्तमान स्तर ज्ञात करना।
2. कृषि क्षेत्र का सामयिक, क्षेत्रीय, विश्लेषण एवं विवेचन करना।
3. कृषि पद्धति में होने वाले कालिक, स्थानिक परिवर्तनों का विश्लेषण करना।

झालावाड़ जिले में व्यापारिक कृषि फसलों का वितरण क्षेत्रफल (हैक्ट.) में 2005–06 तथा 2014–15

क्र. स.	प्रमुख फसलें	क्षेत्रफल 2005–06	क्षेत्रफल 2014–15
1	सोयाबीन	205629	251582
2	सरसों	75974	80156
3	सन्तरा	6392	11148
4	लहसुन	1685	10242
5	धनियां	44390	106697
6	अफीम	299	14

सोयाबीन

जिले में बोई जाने वाली व्यापारिक फसलों में सोयाबीन का प्रमुख स्थान है यह जिले के अधिकांश किसानों के द्वारा की जाती है। वर्ष 2005–06 में कुल 205629 हैक्टेयर पर इसकी कृषि की गई जो 2014–15 में बढकर 251582 हैक्टेयर हो गई। इसकी फसल में बढोतरी देखने को मिलती है इसका मुख्य कारण जिले में सोयाबीन की अनुकूलतम दशाओं का पाया जाना है।

सरसों

जिले के अधिकांश किसानो के द्वारा शीत ऋतु के आगमन पर बोई जाने वाली फसलों में सरसों का मुख्य स्थान है। सन 2005–06 में 75974 हैक्टेयर पर इसकी कृषि की गई जो 2014–15 में बढकर 80156 हैक्टेयर हो गई।

संतरा

जिले में संतरे की बागवानी की गति में तीव्र गति से विकास हो रहा है। सन 2005–06 में यह 6392 हैक्टेयर पर इसकी बागवानी की गई जो 2014–15 में बढकर 11188 हैक्टेयर हो गई। संतरे की बागवानी एवं उत्पादन में जिले का नाम राज्य में ही नही अपितु देश में भी है।

लहसुन

लहसुन उत्पादन की और जिले के किसान इसकी कृषि करने के लिये अधिक अग्रसर हुए हैं इसक प्रमुख कारण प्रति हैक्टेयर अधिक उपज एवं अच्छी कीमतों का होना है। सन 2005–06 में कुल 1685 हैक्टेयर पर उसकी कृषि की गई जो 2014–15 में बढकर 10242 हैक्टेयर हो गई।

धनियां

जिले में सन 2005–06 में 44390 हैक्टेयर पर इसकी कृषि की गई जो 2014–15 में बढकर 106697 हैक्टेयर हो गई। जिले के अधिकांश किसानों के द्वारा धनिये की कृषि की जाती है।

अफीम

अफीम की कृषि मुख्य रूप से सरकार द्वारा जारी पट्टे एवं अनुमति के फलस्वरूप किसानों के द्वारा की जाती है। 2005–06 में यहां कुल 299 हैक्टेयर पर इसकी कृषि की गई जो 2014–15 में घटकर 14 हैक्टेयर रह गई जिसका प्रमुख कारण सरकार द्वारा किसानों को कम संख्या में पट्टे जारी करना है।

व्यापारिक कृषि परिदृश्य

जिले में कृषि उत्पादक क्षेत्रों के साथ–साथ इसके उत्पादन मे भी वृद्धि हुई है इसमें प्रमुख रूप से लाभ देने वाली सुविधाओं में सिंचाई की सुविधायें होना, उन्नत किस्म के पौधों का उपलब्ध होना, समय पर कीटनाशक दवाईयों का प्रयोग एवं जिला एवं राज्य प्रशासन द्वारा कृषि उत्पादक क्षेत्रों एवं कृषकों को उत्पादन में वृद्धि करने एवं उन्हे कृषि करने को प्रेरित करना प्रमुख है। जिले में कृषि उत्पादन में वृद्धि के साथ–साथ यहां के कृषि परिदृश्य में भी बदलाव आया है। यहां व्यापारिक फसल उत्पादन करने वालें क्षेत्रो में पहले कृषकों द्वारा केवल खाद्यान्नों प्रदार्थो का उत्पादन किया जाता था, किन्तु अब खाद्यान्न उत्पादन के साथ–साथ प्रमुख व्यापारिक मुद्रा दायिनी फसलों की कृषि भी प्रमुखता से की जा रही है। पिछले कुछ वर्षो के अध्ययन से पाया कि जिले में व्यापारिक कृषि परिदृश्य में परिवर्तन हो रहा है। एवं इसकी कृषि की और किसानो का ध्यान आकर्षित हुआ है इसका प्रमुख कारण किसानों के द्वारा अपनी कृषि कार्य में नवीन तकनीकों का प्रयोग करना प्रमुख है एवं भविष्य में इसके और अधिक विकास की सम्भावनायें जिले में मौजूद हैं।

निष्कर्ष

व्यापारिक कृषि फसलों के विकास की दृष्टि से एवं आय के प्रमुख स्त्रोतों में कृषि उत्पादन का प्रमुख स्थान है अतः कृषि यहाँ पर महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती हैं। आगामी दशकों में जिले में कृषि क्षेत्र में व्यापारिक फसलों के उत्पादन व उत्पादकता में वृद्धि की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती हैं। कृषि मानव विकास का सूचक हैं, इसके साथ हीं जीवन स्तर में वृद्धि, आय में वृद्धि आदि पक्ष में कृषि के साथ सीधे जुड़े हुए है। इस प्रकार निष्कर्ष स्वरुप कहाँ जा सकता है कि जिले में व्यापारिक कृषि फसलों के आगे ओर अधिक विकास की सम्भावनायें यहाँ मौजुद हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *कृषक मार्गदर्शिका, कृषि सूचना एवं कृषि विभाग, राजस्थान जयपुर 2015*
2. *सक्सेना एच.एम. राजस्थान का भूगोल 2018*
3. *हुसैन माजिद, कृषि भूगोल, रावत पब्लिकेशन जयपुर – 2004*
4. *सांख्यिकी रूपरेखा निदेशालय सांख्यिकी विभाग राजस्थान जयपुर 2009 तथा 2016*
5. *कृषि विकास योजना, कृषि विभाग जयपुर राजस्थान 2016*
6. *कृषि एवं फसल प्रतिरूप, कृषि निदेशालय जयपुर 2015.*

P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-3* ISSUE-3* June- 2018
E: ISSN NO.: 2455-0817 *Remarking An Analisation*

राजस्थान के सन्दर्भ में : मृदा संरक्षण एवं वर्षा जल एकत्रीकरण महत्व

दीपचन्द बैरवा
शोध छात्र,
भूगोल विभाग,
कोटा विश्वविद्यालय,
कोटा

हमीद अहमद
विभागाध्यक्ष,
भूगोल विभाग,
राजकीय महाविद्यालय,
झालावाड़

सारांश

मृदा और जल ऐसे प्राकृतिक संसाधन है जो बहुतायत में उपलब्ध होते हुए भी विभिन्न क्षेत्रो में गुणवत्ता एवं उपयोग में विविधता रखते है। इसका संतुलित एवं संरक्षित उपयोग जहां समृद्धि का साक्ष्य हैं वही इनका दुरुपयोग एवं कुप्रबन्ध अनियन्त्रित विनाश को आमन्त्रित करता है। प्रगतिशील युग में जल की बढ़ती खपत बहुत ही स्वाभाविक प्रक्रिया है। हमारे देश की समस्याए विविध एवं जटिल है हमारे देश में प्रतिवर्ष लगभग 4000 बिलियन क्यूबिक मीटर पानी वर्षा जल से प्राप्त होता है, जिसमें से हम केवल 1122 बिलियन पानी ही उपयोग में ले पाते हैं और बाकी पानी बेकार बहकर समुद्र में चला जाता है। देश के विभिन्न क्षेत्रो में वर्षा होने की दर बहुत ही अनियन्त्रित हैं। इसके पश्चिमी भाग में जहाँ अधिकतम 100 मि.मी. वर्षा प्रति वर्ष होती है लेकिन भौगोलिक परिस्थितियो एवं जल संरक्षण संरचनाओं के अभाव में वर्षा जल का समुचित उपयोग नहीं हो पाता है।

राजस्थान के प्राकृतिक संसाधन बहुमूल्य है परन्तु अधिकतर क्षेत्र सूखाग्रस्त, पहाडी एवं मरुस्थलीय है। बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण दिनों दिन समस्याएं बढ़ती जा रही है। जिनमें पर्यावरण का बिगाड़ना, वन क्षेत्र का घटना, कृषि योग्य भूमि का क्षरण, भूमि का कटाव, भूजल का गिरता स्तर एवं खाद्यान्न उत्पादन में अस्थिरता प्रमुख हैं। राजस्थान में मृदा क्षरण की समस्या राज्य की भौगोलिक स्थिति, वानस्पतिक आवरण एवं में अत्यधिक विविधता होने के कारण बहुत गतिशील है। भारत सरकार द्वारा किये गये एक अनुसार राज्य की 342 लाख हेक्टेयर भूमि में से 199 लाख हैक्टेयर भूमि किसी न किसी समस्या से प्रभावित है इनको दूर करने के लिए जलग्रहण क्षेत्र को आधार मानकर इसमें आने वाले प्राकृतिक संसाधनो यथा जल, जंगल, जमीन, जानवर, जन का समुचित उपयोग अति आवश्यक है।

राजस्थान देश का सबसे सूखा राज्य है जहाँ प्रति वर्ष प्रति व्यक्ति पानी की उपलब्धता 1000 घन मीटर से भी कम है जनसंख्या वृद्धि के साथ साथ यह उपलब्धता और भी कम होती जायेगी। एक अनुमान के अनुसार यह सन् 2045 तक घटकर 436 घनमीटर तक ही रह जायेगी। ऐसे में वर्षा जल का संग्रहण कर जल संसाधन बढ़ाना एवं उसका समुचित उपयोग अति आवश्यक हैं। जल संसाधनो की कमी के कारण राज्य राज्य सरकार द्वारा जल निति के तहत जल संसाधन विजन 2045 तैयार किया गया है और इसमें वर्षा जल के संरक्षण और भूजल पुर्नभरण को मुख्य प्राथमिकता दी गई है जिसमें वर्ष 2045 तक राजस्थान में जल संसाधनों का समुचित प्रबन्ध कर उत्पादन बढ़ाया जा सके। जल ग्रहण क्षेत्र ही ग्रामीण विकास कार्यक्रम का आधार है जिसका केन्द्र बिन्दु ग्रामीण समाज है। जल ग्रहण कार्यक्रम ग्रामीण समाज का ग्रामीण समाज द्वारा एवं ग्रामीण समाज के लिए चलाया जाने वाला कार्यक्रम है जिसमें सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थाओं की भागीदारी सहयोगी, समन्वयक तथा उत्प्रेरक के रुप में होती है। वर्षा जल एवं मृदा का प्रबन्धन एवं समुचित उपयोग अत्यन्त आवश्यक है इसलिए राज्य में मृदा एवं जल संरक्षण के महत्व को समझना होगा एवं इस पर विशेष रुप से ध्यान देना होगा। खुड का पानी खुड़ में, खेत का पानी खेत में, गाँव का पानी गाँव में, छत का पानी कुण्ड में, आकाश का पानी पाताल में, बहते हुए पानी को चलना सिखना होगा एवं चलते हुए पानी को रोकना सिखाना है। इस विचारधारा को मूर्त रुप देना होगा तभी भविष्य की पीढ़ी के लिए स्वस्थ जल एवं मृदा को सुरक्षित रखा जा सकता है।

मुख्य शब्द : मृदा, जल, संरक्षण, भूजल, भूमि, वर्षा, पानी, वानस्पति, पर्यावरण, प्राकृतिक, भौगोलिक, सूखाग्रस्त, संसाधन, मरुस्थल, जलवायु।

P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-3* ISSUE-3* June- 2018
E: ISSN NO.: 2455-0817 Remarking An Analisation

प्रस्तावना

मृदा और जल ऐसे प्राकृतिक संसाधन है जो बहुतायत में उपलब्ध होते हुए भी विभिन्न क्षेत्रो में गुणवत्ता एवं उपयोग में विविधता रखते है। इसका संतुलित एवं संरक्षित उपयोग जहां समृद्धि का साक्ष्य हैं वही इनका दुरुपयोग एवं कुप्रबन्ध अनियन्त्रित विनाश को आमन्त्रित करता है। प्रगतिषील युग में जल की बढ़ती खपत बहुत ही स्वाभाविक प्रक्रिया है। हमारे देश की समस्याए विविध एवं जटिल है हमारे देश में प्रतिवर्ष लगभग 4000 बिलियन क्यूबिक मीटर पानी वर्षा जल से प्राप्त होता है, जिसमें से हम केवल 1122 बिलियन पानी ही उपयोग में ले पाते हैं और बाकी पानी बेकार बहकर समुद्र में चला जाता है। देश के विभिन्न क्षेत्रो में वर्षा होने की दर बहुत ही अनियन्त्रित हैं। इसके पश्चिमी भाग में जहाँ अधिकतम 100 मि.मी. वर्षा प्रति वर्ष होती है लेकिन भौगोलिक परिस्थितियों एवं जल संरक्षण संरचनाओं के अभाव में वर्षा जल का समुचित उपयोग नहीं हो पाता है।

राजस्थान के प्राकृतिक संसाधन बहुमूल्य है परन्तु अधिकतर क्षेत्र सूखाग्रस्त, पहाड़ी एवं मरुस्थलीय है। बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण दिनों दिन समस्याएं बढ़ती जा रही है। जिनमें पर्यावरण का बिगड़ना, वन क्षेत्र का घटना, कृषि योग्य भूमि का क्षरण, भूमि का कटाव, भूजल का गिरता स्तर एवं खाद्यान्न उत्पादन में अस्थिरता प्रमुख हैं। राजस्थान में मृदा क्षरण की समस्या राज्य की भौगोलिक स्थिति, वानस्पतिक आवरण एवं में अत्यधिक विविधता होने के कारण बहुत गतिशील है। भारत सरकार द्वारा किये गये एक अनुसार राज्य की 342 लाख हेक्टेयर भूमि में से 199 लाख हैक्टेयर भूमि किसी न किसी समस्या से प्रभावित है इनको दूर करने के लिए जलग्रहण क्षेत्र को आधार मानकर इसमें आने वाले प्राकृतिक संसाधनो यथा जल, जंगल, जमीन, जानवर, जन का समुचित उपयोग अति आवश्यक है।

राजस्थान देश का सबसे सूखा राज्य है जहाँ प्रति वर्ष प्रति व्यक्ति पानी की उपलब्धता 1000 घन मीटर से भी कम है जनसंख्या वृद्धि के साथ साथ यह उपलब्धता और भी कम होती जायेगी। एक अनुमान के अनुसार यह सन् 1945 तक घटकर 436 घनमीटर तक ही रह जायेगी। ऐसे में वर्षा जल का संग्रहण कर जल संसाधन बढ़ाना एवं उसका समुचित उपयोग अति आवश्यक हैं। जल संसाधनो की कमी के कारण राज्य राज्य सरकार द्वारा जल निति के तहत जल संसाधन विजन 2045 तैयार किया गया है और इसमें वर्षा जल के संरक्षण और भूजल पुर्नभरण को मुख्य प्राथमिकता दी गई है जिसमें वर्ष 2045 तक राजस्थान में जल संसाधनों का समुचित प्रबन्ध कर उत्पादन बढ़ाया जा सके।

जल ग्रहण क्षेत्र ही ग्रामीण विकास कार्यक्रम का आधार है जिसका केन्द्र बिन्दु ग्रामीण समाज है। जल ग्रहण कार्यक्रम ग्रामीण समाज का ग्रामीण समाज द्वारा एवं ग्रामीण समाज के लिए चलाया जाने वाला कार्यक्रम है जिसमें सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थाओं की भागीदारी सहयोगी, समन्वयक तथा उत्प्रेरक के रुप में होती है।

साहित्यावलोकन

राजस्थान में मृदा संरक्षण एवं जल एकत्रिकरण महत्व शीर्षक के माध्यम से राजस्थान के मृदा एवं जल संरक्षण के लिए प्रस्तुत शोध पत्र में समाधान प्रस्तुत किये गये है एवं भविष्य में इनको कैसे सुरक्षित रखा जा सकता हैं। इनका भी विवरण शोध पत्र में किया गया है। प्रस्तुत शोध पत्र को तैयार करने में कृषि सूचना एवं कृषि विभाग राजस्थान जयपुर द्वारा प्रकाशित कृषक मार्गदर्षिका 2013, उन्नत कृषि तकनीक कृषि प्रौद्योगिकी एवं प्रबंध 2015 डॉ. अर्जुन कुमार वर्मा सहित कई साहित्यिक पुस्तकों का विवेचन किया गया है। इसमें राजस्थान के जल एवं मृदा संरक्षण के लिये परम्परागत विधियों को बताया गया है। प्रस्तुत शोध पत्र के माध्यम से यह भी बताया गया कि राजस्थान की कृषि में जल एवं मृदा का कितना महत्वपुर्ण स्थान है। इनके संरक्षण के माध्यम से ही राजस्थान में कृषि परिदृश्य में परिवर्तन किया जा सकता है। मानव एवं पशुओं के लिये जल एवं मृदा को सुरक्षित रखा जा सकता है। राजस्थान का अधिकांष भाग मरुस्थलीय होने के कारण मृदा एवं जल संरक्षण करना नितांत आवश्यक है ताकि भविष्य की आने वाली पीढ़ी के लिये इसको सुरक्षित रखा जा सके। यथासम्भव सम्बन्धित साहित्य का गुणवत्ता से अध्ययन करने के बाद 2016 के पश्चात् उपरोक्त विषय पर शोध कार्य नहीं हुआ।

शोध विधि

प्रस्तुत शोध पत्र में मृदा संरक्षण एवं वर्षा जल एकत्रीकरण के महत्व को प्रकट किया गया है। मानव की आवश्यकताओं में सबसे महत्वपूर्ण जल है एवं इसके साथ साथ कृषि कार्य करने में मृदा का स्वस्थ होना अति आवश्यक है खाद्यान्नो का उत्पादन मृदा के उपर ही निर्भर करता है अतः मृदा का संरक्षण करना भी अति महत्वपूर्ण है। राजस्थान के सन्दर्भ में मृदा एवं वर्षा जल संरक्षण के महत्व का प्रारुप प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तुत शोध पत्र के लिए प्राथमिक एवं द्वितीयक प्रकार के आंकड़ों की सहायता ली गई है। प्रस्तावित शोध पत्र में विभिन्न स्त्रोतों से एकत्रित आंकड़ो का अध्ययन, संकलन संपादन मानचित्रण किया गया है। प्राथमिक आंकड़ें सेम्पल सर्वे द्वारा क्षेत्र के अध्ययन से एकत्रित किये गये है द्वितीयक आंकड़ों को विभिन्न सरकारी गैर सरकारी संस्थाओ में प्रकाशित पत्र–पत्रिकाओं की सहायता ली गई है। जिससे अध्ययन किये गये क्षेत्र में मृदा एवं जल संरक्षण करना है। क्योकि ''जल ही जीवन है'' और ''बिन पानी सब सून''।

अध्ययन क्षेत्र

प्रस्तुत शोध पत्र का अध्ययन क्षेत्र राजस्थान राज्य है। भौगोलिक दृष्टि से राजस्थान का विस्तार $23^0$3 'उत्तरी अंक्षाश से 30^0 12' उत्तरी अक्षांश तथा 69^0 30' पूर्वी देशान्तर $70^0$17' पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है। भारत के उत्तर पश्चिम में स्थित राजस्थान प्रदेश पतंगाकार आकृति में है तथा क्षेत्रफल की दृष्टि से देश का सबसे बड़ा राज्य है। राजस्थान का कुल क्षेत्रफल 342239 वर्ग कि.मी. जो भारत के कुल भू–भाग का 10.41 प्रतिशत है। उत्तर से दक्षिण तक राज्य की लम्बाई 826 कि.मी. व पूर्व से पश्चिम तक चौड़ाई 869 कि.मी. तक

फैला है। राजस्थान की स्थलीय सीमा 5920 कि.मी. है। राज्य का धरातलीय स्वरुप उबड़–खाबड़ एवं पथरीला है। यहाँ का अधिकांश भाग मरुस्थलीय है। जलवायु की दृष्टि से राज्य का अधिकांश भाग उपोष्ण या शीतोष्ण कटिबन्ध क्षेत्र में स्थित है। इसका पश्चिमी भाग शुष्क जलवायु का, मध्य पश्चिमी भाग एवं मध्य पूर्वी भाग अर्द्ध शुष्क जलवायु एवं पूर्वी दक्षिणी, पूर्वीभाग में नम जलवायु पाई जाती है। यहाँ की कुल जनसंख्या 2011 की जनगणना के अनुसार 68621012 है। राज्य के कुल क्षेत्रफल के 61 प्रतिशत भाग पर मरुस्थल, 9.3 प्रतिशत भाग पर पर्वत, 23.3 प्रतिशत भाग मैदानी तथा 9.6 प्रतिशत भाग पर पठारी प्रदेश का स्थान है।

भारत की अवस्थिति मानचित्र

राजस्थान मृदा मानचित्र

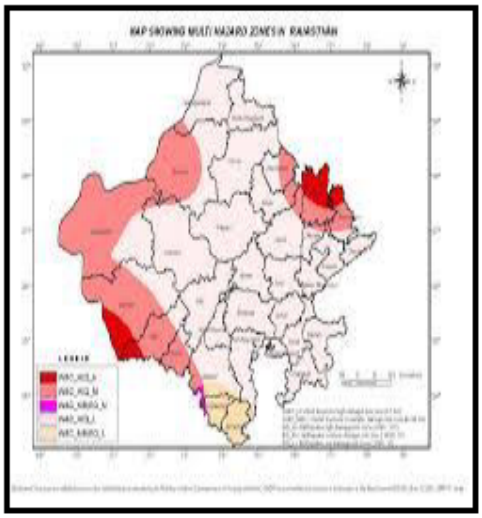

शोध उद्देश्य

1. राज्य में जल एवं मृदा संरक्षण की आवश्यकता को बताना ।
2. मृदा एवं जल संरक्षण के उपायों को बताना जिन्हें अपनाकर इस समस्या को दूर किया जा सके।
3. जल एवं मृदा संरक्षण की विधियों को बताना जिन्हें अपनाकर जल एवं मृदा का सदुपयोग किया जा सके।

कृषि भूमि पर मृदा एवं जल संरक्षण कार्य :

प्रकृति द्वारा मानव जाति को प्रदान किये गये साधनो में मृदा एवं जल महत्वपूर्ण है क्योकि पेड़–पौधें इसी में उगते है, जिससे मानव व पशु जीवन का पोषण होता है। पेड़–पौधे अपना जीवन चक्र मृदा में ही पूरा करते है जीवन चक्र में मृदा के साथ–साथ जल की भी आवश्यकता पड़ती है। अतः इनको सुरक्षित रखने के लिए मृदा एवं जल का संरक्षण करना आवश्यक है।

कृषि भूमि में मृदा एवं जल संरक्षण के लिए निम्नलिखित उपाय किये जाने चाहिए

समोच्च खेती

किसान भाई जहां भूमि ढालू प्रकार की है वहा पर इस कृषि को अपनाकर मृदा एवं जल का संरक्षण कर सकते है। समोच्च खेती ढालू भूमियों पर खेती करने की एक ऐसी विधि है जिसमें भूमि की जुताई, भूमि की तैयारी, बुवाई इत्यादि सभी कार्य ढाल के विपरित दिशा में समोच्च रेखा पर की जाती है। इस विधि में अनेक डोलियों एवं कुंडो का निर्माण होता है, जो मृदा के कटाव को रोकती है तथा मृदा एवं जल का संरक्षण करती है।

वनस्पतिक अवरोध

राज्य में वानस्पतिक अवरोध अपनाकर मृदा अपरदन की समस्या से निजात पाया जा सकता है तथा मिट्टी की नमी भी बनी रहती है। वानस्पतिक अवरोध मृदा अपरदन के नियंत्रण एवं प्राकृतिक नमी का संरक्षण करने में उपयोगी सिद्ध हुऐ है। यह वर्षो तक मृदा को सुरक्षित रखते है। इस प्रकार के वानस्पतिक अवरोध के लिए शुष्क क्षेत्रो में मुंज घास, सेवन घास, केर तथा अन्य स्थानिय वनस्पति को उपयोग लाया जा सकता है। अर्द्ध शुष्क क्षेत्रो के लिए खस घास, मेंहन्दी, रामबास, मुंज आदि को काम में लिया जा सकता है। इनके साथ ही मिट्टी की मेंड़ो का निर्माण भी कर सकते है जो मृदा ह्रास को रोकने में सहायक हो सकेगी।

पट्टीदार खेती

पट्टीदार खेती ढालू भूमि पर वर्षा जल से होने वाले कटाव का नियंत्रण करती है। इस पद्धति से अपरदन का अनुमोदन करने वाली फसलो (मक्का, ज्वार, बाजरा, कपास) के साथ मृदा अपरदन अवरोधक फसले उसी खेत में क्रम से एक के बाद दूसरी पट्टी में उगाया जाता है। मृदा अपरदन का अवरोधन करने वाली फसले अपवाह के वेग को कम करती है व मिट्टी को बाहर जाने से रोकती है। इस प्रकार की कृषि को अपनाकर मृदा अपरदन को रोका जा सकता है।

बन्धो का निर्माण

राज्य के मृदा ह्रास वाले क्षेत्रो में बान्धों का निर्माण कर मृदा अपरदन को रोका जा सकता है। बान्धों

का निर्माण कार्य कटक रेखा या जल ग्रहण क्षेत्र के उपर से यानि सबसे ऊँचाई वाले बिन्दु से प्रारम्भ करना चाहिए और घाटी के निचे तक करे। इस प्रक्रिया के दौरान वर्षा आने की स्थिति में भी बनाये गये बान्धों को अंकित करें और उस क्षेत्र में उगी घास, खरपतवार आदि साफ कर देते है। इस क्षेत्र के उपरी सतह की मिट्टी को हटा देते है ताकि यहाँ बनने वाले बान्धों की पकड़ भूमि के साथ अच्छी हो सके। बान्ध के किनारे से 3 मीटर दूर ढाल के उपर की ओर 2.5 मीटर चौड़ी और 0.3 मीटर गहरी आयताकार खाइयों से खुदी हुइ मिट्टी से बान्ध का निर्माण करते है। बान्ध बनाने के लिए इन खाइयों को हमेषा बान्ध के उपर की ओर के ढाल पर खोदी जाती है ताकि ये कर्षण क्रियाओं के दौरान आसानी से जोती जा सकें तथा वर्षा काल मे उपर की ओर आने वाली मृदा से धीरे–धीरे भर जाये और एक खेत के समान हो जायें। मिट्टी हेतु खोदी जाने वाली खाइयों की चौड़ाई आवश्यकतानुसार कम या चौड़ी कर सकते है। इस प्रकार की क्रिया कर किसान अपने खेत में होने वाले मृदा अपरदन को रोक सकते है एवं एक अच्छे खेत का निर्माण कर सकते है।

समौच्च बान्ध

इस प्रकार के बान्ध का निर्माण समौच्च रेखा पर या समौच्च रेखा से थोड़ा अतिक्रम करते हुए किया जाता है। उन्हें समोच्च बान्ध कहते है। यह उपाय उन स्थानों के लिए किया जाता है, जहाँ वर्षा अनिश्चित एवं कम होती है। इस विधि का मुख्य लाभ यह है कि इसमें लम्बा ढाल कही चौड़े कम ढाल वाले भागो में विभक्त हो जाता है, जिससे खेत के हर भाग में वर्षा के जल को मृदा में शोषित होने के लिए अधिक समय मिल जाता है। समौच्च बान्ध अन्य संरक्षण विधियों के साथ मृदा अपरदन नियंत्रण का सर्वाधिक प्रभावी उपाया है। यह विधि सभी प्रकार की मृदाओं के लिए उपयुक्त है।

पत्थर की दीवार वाली वेदिकाएं

इस प्रकार की विधि का प्रयोग राज्य के पहाड़ी क्षेत्रो ओर विशेष रूप से घाटी क्षेत्र व प्राकृतिक जल निकास मार्गो में भी खेती की जाती है। इस प्रकार के क्षेत्रो में अपरदन रोकने तथा स्व स्थायी जल संरक्षण हेतु पत्थर की दीवार वाली वेदिकाओं का निर्माण किया जाता है। इस प्रकार की वेदिकाओं की निर्माण से ढालू क्षेत्रो में उपज में बढ़ोत्तरी होती है तथा अपरदन रोकने के लिए विशेष रूप से प्रभावी होती है। इस क्रिया को अपनाकर मृदा अपरदन को रोका जा सकता है।

राजस्थान के परम्परागत वर्षा जल संग्रहण स्त्रोत :

राजस्थान में जल के संग्रहण, संरक्षण एवं संचयन के लिए पारम्परिक नाड़ी, जोहड़, तालाब, कुण्डी, एनिकट, टांका, झीले आदि प्रमुख है। कुएँ एवं बावड़ी भूमीगत जल प्राप्त करने के स्त्रोत है इनका प्रयोग कर लोग वर्ष से प्राप्त जल को इन स्त्रोतों में इकट्टा कर सकते है तथा अपने दैनिक जीवन में इसको कई दिनों तक उपयोग में ला सकते है जिससे पानी की समस्या से ग्रसित क्षेत्रो में काफी हद तक जल की समस्या से निजात पाया जा सकता है। राज्य के अलग अलग क्षेत्रो में अलग–अलग प्रकार के स्त्रोतो को अपनाकर वर्षा जल संगहण किया जा सकता है।

नाडी

नाड़ी, जोहड़, तालाब, झील यह सब एक ही परिवार के सदस्य है, परन्तु प्रत्येक का अपना महत्व है। इस परिवार की सबसे छोटी सदस्या नाड़ी है। इसका प्रयोग उन क्षेत्रो में किया जा सकता है जहाँ की आवक कम हो तथा जल को रोकने के लिए जगह भी छोटी हो। रेत के छोटे टीले या जल संग्रहण क्षेत्र से बहुत कम मात्रा में बहकर आने वाले जल को इकट्टा किया जाता है। इसे बनाने की समग्री भी कच्ची होती है। इसका अधिकांष प्रयोग पश्चिमी राजस्थान के लगभग प्रत्येक गाँव में नाड़ी का जल 2 माह से 8–9 माह तक रह जाता है राजस्थान के जेसलमेर और बाड़मेर के क्षेत्रो में तो जल की कुल आवश्यकता का 37 प्रतिशत नाड़ियों द्वारा ही पूरा किया जाता है। इस प्रकार राज्य में वर्षा से प्राप्त जल को कई क्षेत्रों में नाड़ी विधि अपनाकर जल को सुरक्षित किया जा सकता है एवं पानी की समस्या से काफी हद तक निजात पाया जा सकता है।

जोहड़

जोहड़ को स्थानीय भाषा में जोहड़ी, तलाई या ताल भी कहाँ जाता है। ये नाड़ी से कुछ हद तक बड़े होते हैं। तलाई में जल नाड़ी से कुछ ज्यादा देर तक ठहर जाता है और जल की मात्रा भी ज्यादा होती हैं। इसकी पाल का काम पत्थर का होता है। नाड़ी की तरह जोहड़ या तलाई भी कई वर्षो पुरानी भी मिल जाती हैं। जोहड़ या तलाई में जल 7–8 माह तक रुक जाता है। जोहड़ को सामूहिक रुप से पशुओं के पानी एवं घास हेतु काम में लेने पर स्थानीय भाषा में इसे **'टोबा'** कहा जाता है। वर्षा जल संरक्षण करने की यह उत्तम विधि है जिसे अपनाकर राज्य में जल को संरक्षित किया जा सकता है।

तालाब

राजस्थान के पारम्परिक जल स्त्रोतों में तालाब का प्रमुख स्थान है, यह छोटे तालाब से लेकर विषाल आकार का भी होता है। जहाँ पर वर्षा का जल आकर इकट्टा होता है यहाँ तालाब का निर्माण किया जाता है। इसमें जल की आवक ज्यादा होती है और उसे रोक लेने की जगह भी ज्यादा होती है। इसमें जल की सुरक्षा के लिए पाल बनाई जाती है। पाल को पक्का बनाया जाता है पानी अधिक होने पर यह पाल से उपर होकर निकल जाता है और पाल को नुकसान नहीं होता। इस प्रकार सभी तरफ से आने वाले पानी को रोकने के लिए तालाब की रचना की जाती है। जिसमें वर्षा का जल संचित होता है और मानव व पशुओं के उपयोग में तालाब काम में आते है। वर्षा जल संरक्षण स्त्रोत में राज्य में तालाब की महत्वपूर्ण भूमिका है।

कुई

कुई पारम्परिक जल स्त्रोत का साधन है इसका जल मीठा एवं स्वादिष्ठ होता है। वर्षा जल एकत्रीकरण का यह प्रमुख स्त्रोत है। इसका प्रयोग प्रायः राज्य के सभी भागो में किया जाता हैं पीने के पानी के साथ–साथ पशुओ एवं कृषि सिंचाई में किया जाता है। धरातल पर जल वर्षा से ही आता है वर्षा का पानी धरातल से नीचे रिसकर पृथ्वी के गर्भ में पहुँचकर वही पर एकत्रित हो जाता है जिसे पाताल जल भी कहते है। इस प्रकार कई का निर्माण कर वर्षा से प्राप्त जल का संरक्षण किया जा सकता है।

कुण्डी

कुण्डी को स्थानीय भाषा में कुण्ड या टांका भी कहा जाता है। कुण्डी द्वारा वर्षा जल को एकत्रित कर भण्डारित करने की राजस्थान की प्रमुख परम्परा है। इसमें जल को खुला नही रखा जाता बल्कि ढका जाता है या जगह थोड़ी सी हो तो उसे गारे चूने से लिपकर पक्का बनाकर आंगन का रुप दे दिया जाता है। इस आँगन की ढाल एक तरफ से दूसरी तरफ हो सकती है। पानी को इकट्ठा करने के लिए ढाल के छोर से केन्द्र में एक–एक कुण्ड खोदा जाता है, जिसके भीतर को ऊपर से भी छत बनाकर ढक दिया जाता है। इसमें एक ढक्कन पानी निकालने के हेतु रख दिया जाता है। प्रदेश के कई जगहों पर कुण्डियां निजी एवं सार्वजनिक बनाई जाती है सार्वजनिक प्रायः पंचायत भूमि में दो गाँवो के बीच बनाई जाती है। इस प्रकार इसका प्रयोग कर वर्षा जल को संरक्षित किया जा सकता है एवं विभिन्न प्रकार के कार्यो में उपयोग में लाया जा सकता है।

एनिकट

वर्षा जल संरक्षण के लिए बनाई जाने वाली यह एक पक्की संरचना है जिसमें वर्षा का जल भण्डारण कर जल का उपयोग सिंचाई, मनुष्यो एवं पशुओं के पीने के जल आपूर्ती के लिए किया जाता है। इस प्रकार की संरचनाए न केवल प्रवाह के वेग को कम करती है बल्कि मिट्टी के कटाव को भी रोकती है तथा नीचे स्थित कुँओं में पानी का स्तर बढ़ाने में भी मद्दगार साबित होता है। राजस्थान में जल संरक्षण के लिए किए जाने वाले कार्यो में एनिकट प्रमुख निर्माण कार्य है। इसका निर्माण बहते पानी को रोकने के लिए किया जाता है। स्थान का चयन इस प्रकार किया जाता है कि कम से कम लागत में अधिक से अधिक पानी एकत्रित किया जा सके। संकरी तथा गहरी घाटियाँ इसके लिए उपयुक्त रहती है। इस प्रकार ग्राम पंचायत स्तर से लेकर प्रांतीय स्तर पर जल एवं मृदा संरक्षण के कार्य किये जा रहे है अतः इन साधनो का प्रयोग कर आगे भावी समय के लिए पानी एवं मृदा को सुरक्षित रखा जा सकता है।

निष्कर्ष

वर्षा जल एवं मृदा का प्रबन्धन एवं समुचित उपयोग अत्यन्त आवश्यक है इसलिए राज्य में मृदा एवं जल संरक्षण के महत्व को समझना होगा एवं इस पर विशेष रुप से ध्यान देना होगा। खुद का पानी खुद में, खेत का पानी खेत में, गाँव का पानी गाँव में, छत का पानी कुण्ड में, आकाश का पानी पाताल में, बहते हुए पानी को चलना सिखाना होगा एवं चलते हुए पानी को रोकना सिखाना है। इस विचारधारा को मूर्त रुप देना होगा तभी भविष्य की पीढ़ी के लिए स्वस्थ जल एवं मृदा को सुरक्षित रखा जा सकता है।

संदर्भ ग्रथ सूची

1. *सक्सेना एच.एम., राजस्थान का भूगोल, 2018.*
2. *मल्ला एल. आर., राजस्थान का भूगोल, कुलदीप पब्लिकेशन, अजमेर, 1985.*
3. *गुर्जर रामकुमार एण्ड जाट बी.सी., पर्यावरण भूगोल, 1985.*
4. *बसंत मोघे, राजस्थान में कृषि उत्पादन, राजस्थान हिन्दी ग्रथ अकादमी, जयपुर, 1985..*
5. *डॉ. कौषिक एस.डी. एण्ड डॉ. गौतम अलका, संसाधन भूगोल.*
6. *सांख्यिकीय रुपरेखा, निदेशालय सांख्यिकीय विभाग, राजस्थान, जयपुर 2016.*
7. *डॉ. वर्मा कुमार अर्जुन, उन्नत कृषि तकनीक, कृषि प्रौद्योगिकीय एवं प्रबंध अभिकरण, झालावाड़, राजस्थान 2015.*
8. *कृषक मार्गदर्शिका, कृषि सूचना एवं कृषि विभाग, राजस्थान, जयपुर 2013.*